शैक्षिक अनुसंधान का विधिशास्त्र

शैक्षिक अनुसन्धान का विधिशास्त्र

(Methodology Of Educational Research)

लेखक

सच्चिदानन्द डौंडियाल
एम० ए०, पीएच० डी० (शिक्षा)
प्रोफेसर, विद्याभवन टीचर्स कॉलेज,
उदयपुर- (राजस्थान)

एवं

अरविन्द फाटक
एम० एस-सी०-पीएच०.डी० (शिक्षा)
रीडर, विद्याभवन टीचर्स कॉलेज,
उदयपुर (राजस्थान)

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पीछे १९६९ में पाँच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रंथ-अकादमियों की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रंथ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रंथों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत तक तीन सौ से भी अधिक ग्रंथ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गयी है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चंदनमल बैद
अध्यक्ष

स. ही. वात्स्यायन
निदेशक

हिन्दी "पूर्व परीक्षण" और Pretest की हिन्दी भी प्राक्परीक्षण की गई है। अब बताइए कि जिन्होंने ये दो अंग्रेज़ी शब्द नहीं सुने हैं उन्हें इन हिन्दी शब्दों के पढ़ने से अर्थों में क्या अन्तर प्रतीत होगा। Pretest का एक अर्थ है कि प्रयोग (Experiment) प्रारम्भ करने से पूर्व परीक्षण और Tryout का अर्थ है कि किसी उपकरण के निर्माण के अन्तिम सोपान के रूप में उसको प्रशासित कर यह परखना कि कौन-कौन सी त्रुटियां हैं। अब यदि *Tryout* के लिए "परखना" (या जांच) का उपयोग किया जाता है तो नव छात्र भ्रमित नहीं होंगे। हास्यास्पद बात तो यह है कि शब्दावली में Subjective की हिन्दी 'विषयनिष्ठ' दी है और Objective की हिन्दी भी "विषयनिष्ठ" लिखी है तथा Objectivity की हिन्दी "विषयनिष्ठता" लिखी है। Subjective और Objective दोनों ही शब्द एक-दूसरे के विलोम हैं। अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि शब्दावली में अच्छे अनुवाद नहीं हैं। कई अंग्रेज़ी शब्दों का अच्छा अनुवाद हुआ है परन्तु छात्रों और पाठकों, जिन्हें अंग्रेज़ी का ज्ञान नहीं है, के सुबोध के लिए आवश्यक यह है कि शब्दावली परिष्कृत और परिवर्द्धित की जाए।

—*सच्चिदानन्द डौंडियाल*

विषय-सूची

सिद्धान्तों को त्यागता है। संशयात्मक बुद्धि होने के कारण ऐसे परिवर्तनों का स्वागत करने के लिए वह सदा तत्पर रहता है। संशय के कारण ही उसमें आलोचनात्मक चिन्तन होता है। इसीलिए वह प्रगतिशील है। वस्तुतः संशय वह स्वयं उत्पन्न करता है और बढ़ाता है। डीवी[1] ने कहा है, बिना संशय के कोई गम्भीर चिन्तन हो नहीं सकता। अतः संशय के अभाव में विज्ञान का कोई अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

अवैज्ञानिक व्यक्ति का व्यक्तित्व इससे बिल्कुल भिन्न होता है। उसमें अनेक अपरीक्षित एवं अप्रमाणित (अनवेरीफाइड) धारणाएं और विश्वास होते हैं जिन्हें सत्य मानकर वह चलता है। अपनी इन मान्यताओं और विश्वासों को वह दृढ़ता से पकड़े रहता है। इसीलिए वह दुराग्रह करता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि उसे यह चेतना भी नहीं होती कि उसका चिन्तन इन अपरीक्षित सिद्धान्तों एवं निष्कर्षों के कारण कलुषित होता है और वह दुराग्रह करता है। उन्नीसवीं शताब्दी में शिक्षाशास्त्री यह विश्वास करते थे कि दण्ड के कारण सीखने की प्रेरणा अधिक होती है। अनेक सामान्य व्यक्ति अभी भी ऐसा विश्वास करते हैं। परन्तु अब प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि पुरस्कार दण्ड की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी हो सकता है। ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे पता लगा है कि दण्ड के प्रति घृणा भी उत्पन्न कर सकता है और नकारात्मक मनोवृत्ति भी विकसित कर सकता है। पिछले निर्वाचन में अनेक लोगों में यह विश्वास जम गया था कि देश में समाजवाद न आने का एक मुख्य कारण प्रिवीपर्स समाप्त न होना है। सामान्य व्यक्ति के सामने जब कभी विज्ञान की समस्याएं आती हैं तो वह अपने पूर्वाग्रहों और विश्वासों के अनुकूल तथ्यों को स्वीकार करता है। इन विश्वासों या धारणाओं के विपरीत तथ्यों का या तो वह प्रत्यक्षीकरण (पर्सेप्शन) करने में असफल होता है या अप्रामाणिक समझ कर अस्वीकार करता है। उसका तथ्य एकत्रीकरण एकांगी, अपूर्ण एवं अभिनतियुक्त (बाइस्ड) होता है। दूसरे शब्दों में परिवर्तनों का वह प्रतिरोध करता है। यही कारण है कि जनसाधारण के विश्वासों के विपरीत हुए अनुसन्धान-परिणामों का कड़ा विरोध हुआ है। पृथ्वी को गोल प्रमाणित करने की घोषणा करने वाले गैलेलियो को बन्दीगृह की यातना सहनी पड़ी।

(२) विज्ञान और सामान्य बुद्धि में दूसरा आधारभूत अन्तर यह है कि सामान्य बुद्धि तो जो कुछ सरलता से स्पष्ट अनुभव में आता है उसे स्वीकार कर लेती है परन्तु विज्ञान की दृष्टि उन कारकों (फैक्टर्स) की ओर भी लगी रहती है जो इस प्रकार स्पष्ट न हों। उदाहरण के लिए सभी को अनुभव होता है कि समय बीतने के साथ-साथ स्मृति धूमिल होती जाती है। परन्तु वैज्ञानिक स्मृति के धूमिल होने

---

1. Dewey, J.: *How we think*, Boston: Health, 1933.

के इतने स्पष्ट कारण (समय) के अतिरिक्त अन्य सामान्य अनुभव में न आने वाले कारणों के पता लगाने की ओर अपनी दृष्टि डालता है। इस दृष्टिकोण के कारण मनोवैज्ञानिकों के द्वारा किए गए अनुसन्धानात्मक प्रयोगों के रोचक परिणाम आए हैं। गुथ्री[1] के प्रयोग के परिणामों के अनुसार समय का स्मृति के धूमिल होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि किसी प्रत्यक्षीकृत वस्तु के बाद किसी अन्य उद्दीपक (स्टाइमन्स) का हस्तक्षेप (अर्थात् प्रत्यक्षीकरण) न हो तो वह वस्तु सदा और पूर्ण याद रहेगी। विस्मृति का एक मुख्य कारण पृष्ठोन्मुख अवरोधात्मक क्रिया (रिट्रोएक्टिव इनहिबिशन) है। किसी सामग्री के याद करने के बाद कई घटनाओं और संवेगों की अनुभूतियों के कारण विस्मृति होने लगती है। प्रयोगों से पता लगा है कि याद करने के बाद अगला समय जब सोने में बीतता है तो उठने पर याद अधिक रहता है। इसके विपरीत याद करने के बाद यदि समय अन्य कामों में बीतता है तो विस्मृति अधिक होती है।

(३) सामान्य बुद्धि और विज्ञान में तीसरा मौलिक अन्तर यह है कि सामान्य व्यक्ति केवल असाधारण घटना के कारणों को जानने के लिए उत्सुक होता है परन्तु वैज्ञानिक प्रत्येक घटना, चाहे वह सामान्य से सामान्य क्यों न हो, के कारणों को जानने के लिए उत्सुक रहता है। विज्ञान का लक्ष्य घटनाओं को नियंत्रित तथा निर्धारित करने वाले प्रकृति के नियमों का पता लगाना होने के कारण वह सामान्य व्यक्ति को साधारण से साधारण प्रतीत होने वाली घटनाओं का भी गम्भीरता से अध्ययन करता है। इसी कारण बाल मनोवैज्ञानिकों ने शिशुओं के द्वारा वस्तु पकड़ने की योग्यता के विकास का अध्ययन किया है जिसके कारण जीव विज्ञान के इस नियम की पुष्टि हुई कि विकास के प्रारम्भ में क्रिया शरीर के सब अंगों में सब दिशाओं की ओर होती है और अन्त में विशिष्ट (किसी अंग विशेष तथा दिशा विशेष तक सीमित) होती है। सीखने के मनोवैज्ञानिकों ने पशु पक्षियों के सामान्य से सामान्य व्यवहार के गहन और विस्तृत अध्ययन के परिणामस्वरूप सीखने के नियमों और जटिल सिद्धान्तवादों का निर्माण किया है। उदाहरण के लिए स्किनर ने कबूतर के चोंच मारने के व्यवहार, चूहे के डण्डे को दबाने के व्यवहार आदि से संबंधित प्रयोग किए और क्रियाप्रसूत (ऑपेरेण्ट) अनुबन्धन का सिद्धांतवाद विकसित किया।[2] कार्यक्रमित अनुदेशन (प्रोग्रैम्ड इन्स्ट्रक्शन) का व्यापक विकास और प्रसार इस सिद्धान्तवाद की देन है। एक सेब को पेड़ से टूट कर नीचे की ओर गिरने की सामान्य घटना के प्रति आकर्षित होने के कारण ही न्यूटन अपने अनुसंधान द्वारा

1. Guthvie, E. R. : The psychology of Learning (revised) Newyork, Harper, 1952.

2. Skinner, B. F : The Behavior of organisms Newyork, Appleton century.

प्रकृति के गुरुत्वाकर्षण के नियम का पता लगा सका। नव अनुसंधानकर्ता को प्रारम्भ में समस्या के ढूढ़ने में कठिनाई होती है। उसे लगता है कि सभी महत्वपूर्ण समस्याओं का अध्ययन किया जा चुका है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में समस्याओं का वह प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाता।

(४) विज्ञान और सामान्य बुद्धि के मध्य चौथा भेद तथ्यों की व्याख्या से संबंधित है। विज्ञान का संबंध तथ्यों की केवल उन व्याख्याओं से है जिनका प्रेक्षण अथवा परीक्षण किया जा सकता है। विज्ञान का क्षेत्र केवल प्रेक्षणीय तथ्यों तक सीमित है। दार्शनिक और दैवी व्याख्या विज्ञान का विषय नहीं है। उदाहरण के लिए यह कहना कि यह तालाब एक महात्मा के शाप के कारण सूख गया, अथवा उस व्यक्ति का प्रारब्ध खोटा होने के कारण उसे तानाशाह अध्यापकों की कक्षाओं में अधिक पढ़ना पड़ा जिसके कारण वह समाज विरोधी हो गया है, अथवा बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कारण हमारे देश के कुछ कदम समाजवाद की ओर बढ़े हैं—दार्शनिक व्याख्या है क्योंकि इनका परीक्षण नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में अवैज्ञानिक व्याख्याएं हैं। इस प्रकार की व्याख्याएं सामान्य व्यक्ति के चिन्तन को प्रभावित करती हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वैज्ञानिक इन्हें निरर्थक समझता है और इनसे घृणा करता है। इसका इतना ही अर्थ है कि वह इन्हें अप्रेक्षणीय और अपरीक्षणीय समझने के कारण इनसे असम्बन्धित रहता है, तटस्थ रहता है। वह ऐसी व्याख्या को स्वीकार करता है जो क्रमबद्ध हो तथा जिसकी पुष्टि प्रेक्षित एवं परीक्षित तथ्यों द्वारा की जा चुकी हो। एक और भेद यह है कि वैज्ञानिक में तथ्यों की व्याख्या की इच्छा होती है परन्तु सामान्य व्यक्ति में साधारणतया यह इच्छा नहीं होती। यदि इच्छा होती है तो वह साधारणतया दार्शनिक व्याख्या से सन्तुष्ट हो जाता है। अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण अनेक आदिवासी समाजों ने पता लगाया कि घसीटने के बदले पहियों के उपयोग से भारी वस्तु को ले जाना सरल है। परन्तु घर्षणात्मक शक्ति तथा कारकों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न उन्होंने बिल्कुल नहीं किया। खाद से कृषि उपज की होने वाले लाभ को अनेक लोग जानते हैं परन्तु इस लाभ के कारणों को वे नहीं जानते।[1] इस अज्ञान के कारण वे यह भी नहीं जानते कि किन परिस्थितियों में और किस सीमा तक यह लाभ होता है और कब नहीं होता।

(५) वैज्ञानिक की खोज नियन्त्रित होती है। सामान्य व्यक्ति अपनी खोज को नियन्त्रित करने का बहुत कम प्रयत्न करता है। विज्ञान और सामान्य बुद्धि में यह पाँचवां भेद है। नियंत्रित करने का अर्थ है कि जिस परिवर्ती (वेरीएबल) का किसी

1. Nagel, E.: The Structure of Science: Problems in the Logic of Scientific Explanation, Routledge & Kegan paul London, 1961, p. 3.

परिणाम के सम्भावित कारण की प्राक्कल्पना (हिपोथिसिस) कर अध्ययन किया जा रहा है उसके अतिरिक्त अन्य सभी परिवर्तियों को अलग कर देना ताकि यह पता लग सके कि उस प्राक्कल्पित परिवर्ती का कोई प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं, और यदि पड़ता है तो कितना। वैज्ञानिक इस प्रकार का नियंत्रण इसलिए करता है ताकि उसे असंदिग्ध रूप से कारणों का पता लग सके और उनके प्रभावों का मापन कर सके। वह ऐसी विधियों का निर्माण करता है जिनसे अशुद्धियों का पता लगाया जा सके और उनका निवारण किया जा सके। परन्तु सामान्य व्यक्ति प्रेक्षित तथ्यों की अपनी व्याख्या को नियंत्रित करने के लिए किसी साधन या यंत्र का उपयोग नहीं करता है। उसकी प्रवृत्ति उन व्याख्याओं को मान लेने की होती है जो उसके पूर्वाग्रहों तथा विश्वासों के अनुकूल हैं।

वस्तुतः बिल्कुल शुद्ध परिणामों के प्रयास में वैज्ञानिक अपने खोज की सम्पूर्ण प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। दूसरे शब्दों में उसकी खोज व्यवस्थित और अनुसंधान शास्त्र के नियमों द्वारा संचालित होती है। वह दत्त संकलन (डेटा कलेक्शन) के लिए सत्यापित, परीक्षित और मानकीकृत (स्टेण्डर्डाइज्ड) यन्त्रों का उपयोग करता है। एकत्रित दत्त सामग्री का विश्लेषण भी वैज्ञानिक प्रविधियों या यन्त्रों के द्वारा करता है। विश्वसनीय परिणामों की उपलब्धि के लिए वह अपने पर नियंत्रण रखता है। किसी पूर्वधारणा के व्याख्या पर प्रभाव को न पड़ने देने के प्रति वह सजग और सतर्क रहता है। संक्षेप में, वह वैज्ञानिक विधि का उपयोग करता है और वैज्ञानिक चिन्तन करता है। इस विधि का वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है। स्पष्ट है सामान्य बुद्धि द्वारा लिए गए निष्कर्ष इस प्रकार के व्यवस्थित एवं नियंत्रित खोज और विश्वसनीय साधनों के उपयोग के परिणाम नहीं होते। वैज्ञानिक खोज के समान उसकी खोज व्यवस्थित और नियंत्रित नहीं होती।

विज्ञान क्या है ?

"विज्ञान" के अर्थ के संबंध में अनेक भ्रांतियां हैं भिन्नभिन्न अर्थों में इस शब्द का उपयोग प्रचलित है। एक अर्थ में विज्ञान शब्द का उपयोग भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, भूगर्भशास्त्र जैसे विषयों के एक सामूहिक नाम के रूप में किया जाता है। इसके विपरीत इतिहास, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विषयों का सामूहिक नाम मानविकी (ह्यूमेनिटीज) लिया जाता है और साहित्य, संगीत आदि को कला की संज्ञा दी जाती है।

दूसरे अर्थ में "विज्ञान" को इंजीनियरी और तकनीकीशास्त्र का पर्यायवाची मान लिया जाता है। स्वचालित यंत्रों का आविष्कार, यानों का निर्माण, बांधों की रचना आदि क्रियाओं को विज्ञान समझा जाता है। विज्ञान का कार्य मनुष्य के जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिए आविष्कार करना समझा जाता है।

तीसरे अर्थ में विज्ञान को कुछ विशिष्ट वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग से

छोरों के मध्य दो प्रकार के मत और प्रतीत होते हैं। एक मत के अनुसार विज्ञान ज्ञान की वर्तमान अवस्था है तथा वह क्रिया है जो इसे बढ़ाती है। विज्ञान वह है जिसके कारण मनुष्य का ज्ञान व्यवस्थित होता है। इस तृतीय अर्थ के अनुसार विज्ञान ज्ञान का वह वर्तमान क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत नियम, प्राक्कल्पनाएं और सिद्धान्तवाद आते हैं और जो बढ़ता है। चतुर्थ अर्थ के अनुसार विज्ञान क्रिया अधिक है। विज्ञान मुख्य रूप से वह है जो वैज्ञानिक करता है। ज्ञान की वर्तमान अवस्था का महत्व केवल नवीन ज्ञान प्राप्ति का आधार अनुसन्धान होने के कारण है। वर्तमान ज्ञान से प्रारम्भ कर नवीन सिद्धान्तों और प्रणालियों का अन्वेषण सम्भव है। अतः केवल प्राथमिक आधार के रूप में उसका महत्व है। विज्ञान के इस अर्थ को ह्यूरिस्टिक दृष्टिकोण कहा गया है। ह्यूरिज्म का अभिप्राय है स्व-अन्वेषण। अर्थात् किसी अन्य व्यक्ति के बताने की अपेक्षा खोज कर पता लगा लेना। उदाहरण के लिए अध्यापन की ह्यूरिस्टिक विधि का अर्थ है कि इस प्रकार पढ़ाना जिससे छात्र स्वयं चिन्तन कर पाठ्य वस्तु खोज लें अथवा अन्वेषण कर स्वयं जान लें। अतः इस चतुर्थ अर्थ के अनुसार विज्ञान का आग्रह स्व-अन्वेषण पर है। विज्ञान संप्रत्ययों, नियमों, प्राक्कल्पनाओं और सिद्धान्तों की परस्पर सम्बद्ध उस संरचना को महत्व देता है जिसके कारण नव अनुसधान कार्य होता है।

विचारकों ने, मोटे तौर पर, विज्ञान के भिन्न-भिन्न अर्थों के दो भेद किए हैं—एक स्थिर मत और दूसरा गतिशील (डाइनेमिक) मत। उपर्युक्त प्रथम और तृतीय अर्थ स्थिर मत कहे जा सकते हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ अर्थ गतिशील मत।

विज्ञान के लक्ष्य : ✓

ऊपर के विवरण से विज्ञान के लक्ष्यों पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ा है, परन्तु इनका स्पष्ट वर्णन आवश्यक है ताकि वैज्ञानिक अनुसन्धानों के लक्ष्यों का अवबोध हो सके। विज्ञान के चार लक्ष्य बताए गए हैं। वे हैं—अवबोध (अन्डरस्टैंडिंग) व्याख्या नियन्त्रण (प्रेडिक्शन) और प्रागुक्ति (प्रेडिक्शन)। वस्तुतः विज्ञान का प्राथमिक और चरम लक्ष्य एक ही है और वह है अवबोध। शेष तीन लक्ष्य अवबोध की प्राप्ति में सहायक हैं। पहले हम प्रत्येक लक्ष्य पर थोड़ा सा विचार करेंगे।

(१) अवबोध—

हममें उचित अवबोध या समझ कब विकसित होती है? जब हमें तथ्यों की, घटनाओं की और उनके सम्बन्धों की सही जानकारी होती है। प्रकृति में तथ्य और घटनाएं एक दूसरे से पृथक् घटित नहीं होते। निश्चित व्यवस्था और क्रम के अनुसार वे घटित होते हैं अर्थात् वे नियमों द्वारा संचालित होते हैं। वैज्ञानिक इन्हीं नियमों का पता लगाने का प्रयत्न करता है। नियम, तथ्य, घटनाएं आदि परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होते हैं और किसी सिद्धान्तवाद के अन्तर्गत रहते हैं। वैज्ञानिक का लक्ष्य

सिद्धान्तवाद है। सिद्धान्तवाद के प्रकाश में आने से तथ्यों के घटित होने के बारे में बोध अधिक विकसित होता है। विभिन्न तथ्यों के सम्बन्ध में बोध होने से नए संशय उत्पन्न होते हैं। ये नए संशय नव अनुसन्धान को जन्म देते हैं। ये नव अनुसंधान नवीन तथ्य, नवीन सिद्धान्तवाद को प्रकाशित करते हैं जिससे अवबोध बढ़ता है। नवीन तथ्यों एवं सिद्धांतवादों की जानकारी से नवीन संशय उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अवबोध सतत् विकसित होने वाला प्रक्रम (प्रॉसेस) है। सामान्य व्यक्ति में अवबोध थोड़ा विकसित होने पर निश्चिन्तता आ जाती है। परन्तु वैज्ञानिक में अवबोध विकसित होने पर मस्तिष्क में नए प्रश्न खड़े होते हैं। नए संशयों का जन्म होता है। इसी कारण विज्ञान सतत् विकसित होने वाला प्रक्रम है। अतः गतिशील है।

(२) व्याख्या—

अनुसंधान के द्वारा वैज्ञानिक तथ्यों के घटित होने के कारकों का पता लगाते हैं। अर्थात् वे तथ्यों की व्याख्या करते हैं। तथ्यों का प्रेक्षण कर वर्णन करते हैं। वर्णन भी तथ्यों की एक प्रकार की व्याख्या ही है। एक ही तथ्य को समझने के लिए अनेक प्रकार के अनुसंधान हो सकते हैं। अनुसंधान विधियों की भिन्नता के कारण उसी तथ्य की भिन्न-भिन्न व्याख्याएं अनुसन्धानों के परिणाम हो सकते हैं। ये भिन्न-भिन्न व्याख्याएं उस तथ्य के भिन्न-भिन्न पहलुओं को प्रकाश में ला सकती है जिससे कुल अवबोध में वृद्धि हो सकती है। आलोचनाओं और प्रत्यालोचनाओं के परिणाम-स्वरूप अधिक परिष्कृत नव अनुसन्धान उसी तथ्य पर किया जा सकता है। विज्ञान के विकसित होने का यह प्रक्रम है। विज्ञान की यह गतिपरक प्रकृति है। उदाहरण के लिए सीखने के प्रक्रम की व्याख्या सीखने के कितने सिद्धान्तवादों द्वारा हुई है। एक ही प्रक्रम और अनेक सिद्धान्तवाद। परन्तु प्रारम्भ में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले इन सभी सिद्धान्तवादों का महत्व अब मनोवैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्री समझने लगे हैं। सम्बद्धवाद (कनेक्शनिज्म) अवधानात्मक क्षेत्रीय सिद्धान्तवाद (कॉगनेटिव फील्ड थ्योरीज) और अनुबन्धन (कंडीशनिंग) एक ही तथ्य की व्याख्याएं हैं। सीखने के अनुबन्धनात्मक सिद्धान्तवाद के अन्तर्गत अनेक भिन्न-भिन्न सिद्धान्तवाद हैं जिनका महत्व सभी अनुभव करते हैं, जैसे क्लासिकल अनुबन्धन, संनिधि अनुबन्धन एवं क्रियाप्रसूत अनुबन्धन (ऑपरेंट कंडीशनिंग) आदि।

(३) नियन्त्रण—

नियन्त्रण का अर्थ है किसी तथ्य को घटित करने वाले निर्धारक दशाओं में वाञ्छनीय परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त करना ताकि वैज्ञानिक जब चाहे तब इस प्रकार के परिवर्तन के द्वारा उस तथ्य को घटित करवा सके। यह विज्ञान का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षाशास्त्री यह जानना चाहते हैं कि किस उद्दीपक के द्वारा किन विशिष्ट दशाओं में बालक से कौनसा वाञ्छनीय व्यवहार कराया जा सकता है। यह शिक्षाविज्ञान और मनोविज्ञान का लक्ष्य है। इस दिशा की

और कुछ प्रगति इन दोनों विज्ञानों ने की है। परन्तु अभी वे लक्ष्य से बहुत दूर हैं। जिस दिन वे इस लक्ष्य के निकट पहुँच जाएंगे उस दिन से ही वे भौतिक विज्ञानों के समान ही परिपक्व विज्ञानों की श्रेणी में गिने जाएंगे। मनोविज्ञान जब परिपक्वता को प्राप्त होगा तब संस्कृति के स्वरूप पर उसका नियन्त्रण होगा। इन विज्ञानों की वर्तमान प्रगति के आधार पर कुछ नियन्त्रण मनुष्य के हाथ में आ गए हैं जैसे अभिक्षमता (एप्टीट्यूड) की परीक्षाओं के उपयोग के द्वारा छात्रों का भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमों के लिए चयन कर उनकी शैक्षिक सफलता को वाञ्छनीय रूप से प्रभावित करना।

नियन्त्रण का अर्थ केवल व्यावहारिक जीवन की दशाओं में परिवर्तन तक ही सीमित नहीं है। अमूर्त (एब्स्ट्रेक्ट) स्तर पर भी वैज्ञानिक नियन्त्रण करता है। उदाहरण के लिए आइन्स्टीन के सापेक्षवाद का जगत्प्रसिद्ध तथा अत्यन्त जटिल सिद्धांत अधिकांश रूप में अमूर्त नियन्त्रण का परिणाम है। हल का सीखने का गणितीय निगमनात्मक सिद्धान्तवाद मुख्य रूप से अमूर्त नियन्त्रण की देन है।

(४) प्रागुक्ति—

वैज्ञानिक केवल व्याख्या करने और अवबोध होने मात्र से सन्तुष्ट नहीं होता। वह व्याख्या और अवबोध की पुष्टि चाहता है। वह अपनी खोज आगे आने वाले समय में उपयोग कर देखना चाहता है कि वह कहाँ तक सत्य है। अतः वह भविष्यवाणी करता है कि नवीन स्थितियों में अमुक नियम अमुक प्रकार लागू होगा अथवा अमुक तथ्य अमुक प्रकार घटित होगा। भविष्य में अपनी खोज के परिणामों का परीक्षण और सत्यापन करने के लिए उसकी प्रागुक्ति होती है। वह देखना चाहता है कि जो नियन्त्रण तथ्यों के घटन पर उसे प्राप्त हुआ है वह नवीन स्थिति में भी उसे प्राप्त होगा या नहीं।

शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार के प्रयत्न किए गए हैं कि उससे बुद्धि परीक्षा और रुचि परीक्षण के परिणामों को देखकर उपलब्धि की प्रागुक्ति की जा सके। इन तीनों की मानकीकृत परीक्षाओं के उपयोग के द्वारा इस प्रकार की प्रागुक्तियां कुछ सीमा तक सफल हुई हैं जिससे छात्रों के शैक्षिक निर्देशन और व्यावसायिक निर्देशन में पर्याप्त सफलता मिली है।

वास्तव में प्रागुक्ति अवबोध होने पर सम्भव है। बिना तथ्यों के अन्तर्सम्बन्धों के अवबोध के उनके भविष्य में घटन की प्रागुक्ति कैसे सम्भव है? प्रागुक्ति द्वारा हुए अवबोध का परीक्षण तथा सत्यापन होता है जिसके परिणामस्वरूप अवबोध विकसित और सुस्पष्ट होता है। अतः अवबोध विज्ञान का चरम लक्ष्य है। यह प्राथमिक लक्ष्य भी है क्योंकि अवबोध के लिए ही अनुसन्धान की क्रिया प्रारम्भ होती है। अवबोध व्याख्या, नियन्त्रण तथा प्रागुक्ति सिद्धान्तवाद की विशेषताएं हैं। अतः सिद्धान्तवाद विज्ञान का लक्ष्य है। अच्छे सिद्धान्तवाद में ये लक्षण विद्यमान रहते हैं। और अन्तर्सम्बन्धित तथा व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत रहते हैं। इनके अतिरिक्त सिद्धान्तवाद

में आकुलताएं भी रहती हैं जो नए अनुसन्धान को उत्तेजित करती हैं। वैज्ञानिक का सिद्धान्तवाद अनुसन्धान को जन्म देता है। अनुसन्धान और सिद्धान्तवाद दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं। अतः इस अध्याय के अंतिम भाग में इस सम्बन्ध का वर्णन है।

वैज्ञानिक विधि :

सामान्य व्यक्तियों द्वारा "विज्ञान" को भौतिक विज्ञान के विषयों का पर्याय समझने के कारण तथा भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति होने के कारण यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई है कि वैज्ञानिक विधि का अर्थ भौतिक विज्ञानों की विधि से है। दूसरी भ्रान्ति यह है कि वैज्ञानिक विधि केवल एक ही है। इस भ्रान्ति का एक कारण है वैज्ञानिक विधि का एक वचन में सामान्यतः प्रयोग होना। इस भ्रान्ति का प्रभाव वैज्ञानिकों पर भी पड़ा है और उन्होंने आलोचना की है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान की कोई एक निश्चित विधि नहीं है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्किनर ने लिखा है कि : "परन्तु सांख्यकीशास्त्र और वैज्ञानिक विधि की आकारीकृत रचनाओं को विज्ञान का व्यवहृत रूप समझना भूल है।" ……… ……यदि प्रयोगशाला के विज्ञानवेत्ता को अपनी वैज्ञानिक विधि का विश्लेषण करने से यह पता लगे कि उसके व्यवहार की कैसी पुनर्रचना होती गई और वह चकरा जाए तथा भौचक्का हो जाए तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।"[1]

यह बिल्कुल सत्य है कि विज्ञान की कोई एक निश्चित विधि सब समस्याओं के हल के लिए उपयोग में नहीं लाई जा सकती। वास्तव में तो किन्हीं भी दो समस्याओं के समाधान के लिए एक ही विधि लागू नहीं की जा सकती है। इसका एक कारण यह है कि कोई भी दो समस्याएं बिल्कुल एक समान नहीं होती। यह बात भौतिक विज्ञानों में तो सत्य है ही सामाजिक विज्ञानों में तो अधिक सत्य है। दूसरा कारण यह है कि वैज्ञानिक का मन उन्मुक्त होता है। पूर्वाग्रहों और विश्वासों से बंधा नहीं रहता। वैज्ञानिक संशयात्मक है। तथ्यान्वेषण एकमात्र लक्ष्य होने के कारण वह परिवर्तन के लिए सदा तत्पर रहता है। अनुसन्धान के प्रत्येक पग पर समस्या के हल की आवश्यकता के अनुसार अपने तरीकों और प्रविधियों में वह परिवर्तन करता रहता है। प्रकृति रहस्यमयी होने के कारण प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता को

---

1. Skinner, B. F. : "A case History in Scientific Method," American psychologist, XI (1956), p. p. 221-23

इस उद्धरण का मूल अंग्रेजी रूप निम्नलिखित है :

"But it is a mistake to identify scientific practice with the formalised constructions of statistics and scientific method......It is no wonder that the laboratory scientist is puzzled and often dismayed when he discovers how his behavior has been reconstructed in the formal analysis of the scientific method"

समस्या के उचित हल की मांग के अनुसार अपने तरीकों और प्रविधियों में परिवर्तन करना पड़ता है। नव वैज्ञानिक अथवा नव अनुसन्धानकर्ता सामान्यतः भूल से यह समझ लेता है कि उसे निश्चित प्रविधियों का उपयोग करना है। अनुसन्धान विधि को समस्या से अनुकूलित करने की आवश्यकता को वह पहचान नहीं पाता और अपनी विधि को परिवर्तित नहीं करता। फिर बाद में उसे पता लगता है कि अनुपयुक्त विधियों के कारण परिणाम विश्वसनीय नहीं आए हैं अथवा उसके निष्कर्ष यथार्थ और शुद्ध नहीं हैं। प्रत्येक अनुसन्धान की समस्या अद्वितीय है। अतः किन्हीं दो अनुसन्धानों की विधियां अपनी-अपनी समस्याओं की प्रकृतियों के अनुकूल होने के कारण एक दूसरे के समान कैसे हो सकती हैं?

तो क्या एक सामान्य वैज्ञानिक-विधि की चर्चा अनुसन्धान-विधि शास्त्रियों और सांख्यकीशास्त्रियों की कल्पना मात्र है? यदि सभी वैज्ञानिक-अनुसन्धानों की तुलना करें तो उन सब में अनेक समानताएं स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।[1] ये वे समानताएं हैं जिनसे इन अनुसन्धानों की वैज्ञानिक प्रकृति का बोध होता है। यदि ऐसा न होता तो विज्ञान की कोई प्रकृति ही नहीं होती। परन्तु प्रकृति है और उसके स्पष्ट लक्षण हैं—यह हम पहले ही देख चुके हैं। इन लक्षणों के कारण ही वैज्ञानिक-अनुसन्धानों के परिणाम शुद्ध, यथार्थ और विश्वसनीय होते हैं। अतः विज्ञान की एक सामान्य विधि है जो "उच्च सम्प्रत्ययात्मक स्तर पर है"[2] जो सब वैज्ञानिक अनुसन्धानों में विद्यमान है और जो इन अनुसन्धानों के प्रक्रमों को सचालित करती है। "वैज्ञानिक विधि का व्यवहृत रूप है युक्तियों (तर्कों) की वह सतत् समीक्षा जो उन परखे हुए नियमों के आधार पर की जाती है जिनके द्वारा उन प्रविधियों की विश्वसनीयता की जांच करते हैं जिनसे साक्ष्यदत्त प्राप्त किया जाता है तथा जिनके द्वारा उन साक्ष्यों की समाध्य शक्ति का आंकन किया जाता है जिन पर निष्कर्ष आधारित होते हैं।"[3] विज्ञान की एक सामान्य विधि भी है और अनेक विशिष्ट विधियां भी हैं। ये विशिष्ट

1. Brown, C. W. and Ghiselli, E. E. - Scientific method in psychology, Megraw Hill Book co., Newyork, 1955, p. 5.
2. "highly conceptual level;" वही पृ० ५.
3. Nagel, E.: The Structure of Science, problems in the Logic of scientific Explanation, Routledge & keganpaul London, 1961, p. 13.

   यह उद्धरण निम्नलिखित मूल अंग्रेज़ी रूप का अनुवाद है:

   "The practice of scientific method is the persistent critique of arguments, in the light of tried canons for judging the reliability of the procedures by which evidential data are obtained, and for assessing the *probative force of the evidence on which conclusions* are based."

विधियाँ इस सामान्य विधि के ही परिवर्तित रूप हैं। ये परिवर्तन समस्या विशिष्ट के अध्ययन के लिए किए गए हैं।[1] परिवर्तन की आवश्यकता तीन कारणों से होती है। वे हैं समस्या विशिष्ट की प्रकृति, समस्या जिस विषय से सम्बधित हैं उसकी प्रकृति, और खोज की अवस्था।[2]

वैज्ञानिक विधि के तीन स्तर माने जा सकते हैं। एक सामान्य स्तर जो सब वैज्ञानिक अनुसन्धानों की विशेषता है। दूसरा कुछ कम सामान्य स्तर जो अनुसन्धान के वर्ग विशेष के अन्तर्गत सब अनुसन्धानों की विशेषता है। ये वर्ग हैं:—सर्वेक्षण अनुसन्धान, प्रायोगिक अनुसन्धान, केस-अध्ययन आदि। उदाहरण के लिए सब सर्वेक्षण अनुसन्धानों में कुछ सामान्य विशेषताएं हैं जो सब प्रायोगिक अनुसन्धानों से भिन्न हैं। तीसरा स्तर विशिष्ट स्तर है जो समस्या विशेष या अनुसन्धान विशेष की विशेषता मात्र है। जैसे केस-अध्ययन हर व्यक्ति का भिन्न होगा क्योंकि हर व्यक्तित्व का भिन्न है। इस अध्ययन में पहले स्तर पर अर्थात् सामान्य वैज्ञानिक विधि पर विचार करेंगे। द्वितीय स्तर अर्थात् सर्वेक्षण, प्रायोगिक, केस-अध्ययन आदि विधियों का वर्णन इस पुस्तक के चौथे अध्याय में किया गया है। तृतीय स्तर तो अद्वितीय है। यह तो द्वितीय स्तर का, समस्या विशेष की आवश्यकतानुसार, परिवर्तित रूप मात्र है। उदाहरण के लिए सभी सर्वेक्षण की विधियां अनेक दृष्टियों से समान होंगी परन्तु एक सर्वेक्षण विशेष में समस्या की आवश्यकतानुसार परिवर्तन होंगे ही। अतः तृतीय स्तर के विवेचन का प्रश्न ही नहीं उठता।

सामान्य वैज्ञानिक-विधि के लक्षण :

विज्ञान की प्रकृति के विवेचन से वैज्ञानिक-विधि के लक्षणों पर प्रकाश पड़ता है। अतः इन लक्षणों को बिन्दुरूप में नीचे प्रस्तुत किया गया है:—

(१) वैज्ञानिक खोज का मार्गदर्शन तथ्यों की प्रकृति करती है। जैसे-जैसे तथ्यों का पता लगता जाता है विज्ञानवेत्ता अपनी खोज में आवश्यक परिवर्तन करता जाता है। उसका लक्ष्य होता है तथ्यों को जिस प्रकार तथा जिस रूप में वे हैं उसी प्रकार तथा उसी रूप में उनको जानना। यह ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु वैज्ञानिक इन्द्रियों पर विश्वास नहीं करता क्योंकि इन्द्रियों की सूक्ष्मता की एक सीमा है। अतः तथ्यान्वेषण के लिए वह गहन चिन्तन करता है।

(२) वैज्ञानिक-विधि समस्या समाधान की विधि है। प्रत्येक अनुसन्धान का प्रारम्भ समस्या की अनुभूति होने पर ही होता है। परन्तु ऐसी समस्या का स्पष्टीकरण जिसके समाधान पर अनेक दूसरी समस्याएं हल हो जाएं, एक विलक्षण प्रतिभा द्वारा ही सम्भव है। वैज्ञानिक विधि केवल उन्हीं क्रियाओं तथा उन्हीं तथ्यों की खोज तक अपने को सीमित रखती है जिनसे समस्या का हल हो जाए। समस्या

1. & 2. Brown. C. W. and Ghiselli, E. E. : Scientific Method in psychologa, Mc GrawHill Book co, Newyork, 1955, p. 5.

हल न करने वाले तथ्यों और क्रियाओं से वह असम्बन्धित रहती है।

(३) वैज्ञानिक-विधि के अन्तर्गत प्राक्कल्पनाओं का निर्माण होता है। प्राक्कल्पनाएं समस्या के सम्भावित हल हैं। अच्छी प्राक्कल्पनाओं का निर्माण अनुभव का कार्य है। अनुसन्धान की प्रत्येक अवस्था में प्राक्कल्पनाओं का निर्माण महत्वपूर्ण है क्योंकि सामान्य नियमों या सिद्धान्तों को सदा पूर्ण सत्य के रूप में मानकर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। कितनी प्राक्कल्पनाएं अनुसन्धानकर्ता को सूझेंगी ? यह उसकी कल्पना शक्ति पर निर्भर करता है। प्राक्कल्पना का निर्माण एक ऐसे निश्चित रूप में किया जाना चाहिए जिसका परीक्षण तर्क विज्ञान द्वारा हो सके।

(४) वैज्ञानिक विधि तर्कपूर्ण है। वास्तव में वैज्ञानिक-विधि का सम्पूर्ण ढांचा तर्कों के रूप में है। तर्क तो वे नियम हैं जिनके आधार पर वैज्ञानिक अपनी विधि के प्रत्येक पद का तथा उपयोग में लाई जाने वाली तथा लाई गई प्रत्येक प्रविधि (प्रोसेड्यूर) के औचित्य का और उपयुक्तता का परीक्षण करता है। वह अपने निष्कर्ष की सत्यता का भी परीक्षण तर्क की कसौटी पर करता है। संक्षेप में विज्ञान पुष्ट प्रमाणों पर ही खड़ा रहता है।

(५) वैज्ञानिक-विधि संशयात्मक है। अर्थात् इसका प्रत्येक पग संशय से उठता है। जहाँ कहीं भी थोड़े से अपर्याप्त प्रमाण दिखाई देते हैं वहीं विज्ञान संशय करने लगता है। संशय के दो कारण हैं। एक तो यह कि अपर्याप्त प्रमाणों पर आधारित हमारे विश्वास सत्य नहीं हो सकते। यदि हमारा विश्वास दृढ़ अधिक है तो यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि वह सत्य भी उतना ही अधिक है। दूसरा कारण यह है कि कोई भी तथ्य जो प्रकाश में आया है चिरन्तन प्रमाणों पर आधारित नहीं है। अतः कोई भी तथ्य संशय से पूर्ण रूप से परे नहीं है। इसी कारण सिद्धान्तवाद सतत् परिवर्तित और परिष्कृत किए जाते रहे हैं। सिद्धान्तवादों का परीक्षण तथा सत्यापन कभी भी पूर्ण तथा शुद्ध नहीं होता। वह केवल सत्य के अधिक निकट से जाने वाला हो सकता है।

(६) वैज्ञानिक-विधि आत्मशुद्धिकारक है वैज्ञानिक-विधि में पग पग पर अपने को परखने की योजना रहती है। यह परखने की व्यवस्था इस प्रकार होती है कि विज्ञानवेत्ता की प्रत्येक क्रिया नियन्त्रित होती रहे तथा सत्यापित होती रहे। यह नियन्त्रण और सत्यापन तबतक चलता रहता है जबतक कि वैज्ञानिक तुलनात्मक रूप में अधिक विश्वसनीय परिणामों पर न पहुँच जाए। नियन्त्रण और सत्यापन का उद्देश्य उसके चिन्तन और आचरण को वस्तुनिष्ठ बनाना है ताकि वह अपने को विस्मृत कर अनुसंधान कर सके।

विज्ञान कभी दावा नहीं करता कि जो कुछ खोज कर वह प्रकाश में लाता है वह संशय रहित परम सत्य है। न वह कभी यह कहता है कि जो वह कहता है

अन्तिम शब्द है और स्वीकार किया जाना चाहिए। इसके विपरीत वह माने प्रत्येक अनुसंधान के परिणाम को परखने की विधियों का निर्माण कर पुनरावृत्ति प्रतिचयन (रिपीटेड सेम्पलिंग) द्वारा उन परिणामों का पुनः पुनः परीक्षण करता रहता है। इन परीक्षणों के परिणामों के आधार पर या तो पुराने निष्कर्ष अमान्य कर दिए जाते है, या उनकी पुष्टि की जाती है अथवा नवीन प्रमाणों के अनुसार उनके परिवर्तित रूप को स्वीकार किया जाता है। दूसरे शब्दों में, विज्ञान की प्रत्येक खोज सापेक्षिक (रिलेटिव) सत्य है परम सत्य नहीं। प्रमाण उपलब्ध होने पर विज्ञान अपने सिद्धान्तवाद को अविलम्ब तिलाजलि दे देता है।

(७) वैज्ञानिक विधि अमूर्तीकरण तथा सिद्धान्तवाद की ओर अग्रसर होती है। तथ्यों के प्रकाश मे आने पर उनके निर्माणक कारकों का अनुसन्धान होता है। ये कारक नियमों से नियंत्रित हैं। नियम अमूर्त है। विभिन्न तथ्यों के प्रकाश में आने पर अनेक कारकों और अनेक नियमो का पता लगता है। इन नियमों के सम्बन्धो का पता लगता है। इस प्रकार एक जटिल व्यवस्था और सिद्धान्तवाद का ज्ञान होता है। *सिद्धान्तवाद वैज्ञानिक-विधि का मुख्य लक्ष्य है।*

वैज्ञानिक-विधि के सोपान

निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक विधि समस्या हल करने की सर्वोत्तम विधि है। *इसका उपयोग केवल उन समस्याओं तक ही सीमित नहीं है* जिनका हल प्रयोगशाला के उपयोग के द्वारा सम्भव है। सभी समस्याओं के हल में कम या अधिक मात्रा मे वैज्ञानिक-विधि के सोपान विद्यमान रहते हैं। वास्तव में वैज्ञानिक विधि गम्भीर चिन्तन (रेफ्लेक्टिव थिंकिंग) का ही व्यवस्थित और विकसित रूप है। डीवी ने सबसे पहले गम्भीर चिन्तन के प्रक्रम का व्यवस्थित विश्लेषण किया। उनका विश्लेषण वस्तुतः वैज्ञानिक-विधि के सोपानों का वर्णन करता है। इसी कारण अनुसन्धानशास्त्रियों ने उनके विश्लेषण को परिष्कृत कर वैज्ञानिक-विधि के सोपान बनाए हैं। आगे की पंक्तियों में डीवी के विश्लेषण को आधार मानकर तथा उसे कुछ परिवर्तित कर वैज्ञानिक-विधि के सोपानों का विवेचन किया गया है—

(१) कठिनाई की अनुभूति—समस्या की चेतना

पर्यावरण मे प्रेक्षण करते समय किसी बात को समझने की उत्सुकता होती है। समझने में जब कठिनाई उत्पन्न होती है तो मस्तिष्क चकराता है, परेशानी होती है। यह समस्या के चेतना की अवस्था है। डीवी ने कहा है कि यदि कठिनाई की अनुभूति नहीं होती, परेशानी नहीं होती तो गम्भीर चिंतन प्रारम्भ नहीं होता। अच्छी समस्या की चेतना अनुभव पर तथा अनुसन्धेयता की उत्कट प्रेरणा और मनोवृत्ति पर निर्भर करती है। परन्तु समस्या की चेतना होने पर प्रारम्भ मे समस्या अस्पष्ट रहती है। यह प्रथम अवस्था है।

(२) समस्या का स्पष्ट वर्णन :

समस्या के प्रत्येक पहलू पर गहन चिन्तन करने से समस्या स्पष्ट होने लगती है। समस्या के भली प्रकार स्पष्ट होने पर ही उसके हल के लिए उचित खोज सम्भव है। अतः वैज्ञानिक अपने अनुभवों के आधार पर मनन कर समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का प्रेक्षण करता है और समस्या की परिभाषा करता है। यह वैज्ञानिक विधि के अन्तर्गत दूसरी अवस्था है।

(३) प्राक्कल्पनाओं का विकास :

समस्या पर पर्याप्त समय तक तथा गहन मनन करने पर या मनन करते हुए विज्ञानवेत्ता प्राक्कल्पना का निर्माण कर सकता है। प्राक्कल्पनाएं समस्या की सम्भावित हल हैं अथवा परीक्षण-हेतु प्रस्तावित तथ्य कथन है। प्राक्कल्पनाओं के द्वारा प्रेक्षित अथवा अप्रेक्षित दो या अधिक तथ्यों के सम्भावित सम्बन्धों का वर्णन किया जाता है। कतिपय अनुसंधानों में प्राक्कल्पनाओं का निर्माण अत्यावश्यक रहता है जैसे प्रयोगात्मक अनुसंधानों में जबकि कुछ अनुसन्धानों में आवश्यक नहीं रहता, जैसे सर्वेक्षण अनुसन्धानों में। परन्तु वास्तव में यदि अनुसन्धानकर्ता प्राक्कल्पनाओं का निर्माण कर सर्वेक्षण आदि अनुसन्धान करे तो अशुद्धि की सम्भावनाएं कम हो जाएं। अच्छी प्राक्कल्पनाओं का निर्माण अन्तर्दृष्टि और अनुभव पर निर्भर करता है। किसी अनुसन्धान विशेष में अनेक प्राक्कल्पनाएं हो सकती हैं। सर्वेक्षण अनुसन्धानों के लिए बनी हुई प्रश्नावलियों में लगभग प्रत्येक प्रश्न वास्तव में एक प्राक्कल्पना की परीक्षा के लिए होता है। परन्तु नव अनुसन्धानकर्ता इस बात को समझ कर प्रश्नावलियां साधारणतया नहीं बनाता है।

(४) तर्कना का विकास :

यह डीवी के विचार विश्लेषण का चौथा सोपान है। कार्लिन्जर ने ठीक ही लिखा है कि इस सोपान की बहुधा उपेक्षा की गई है। उन्होंने इसके महत्व का विशेष वर्णन किया है।[1] निगमनात्मक तर्कना के द्वारा अनुसन्धानकर्ता अपनी प्राक्कल्पनाओं से निष्कर्ष निकालता है जिसके परिणामस्वरूप समस्या का स्वरूप ही बदल सकता है।[2] उदाहरण के लिए यदि किसी अनुसन्धानकर्ता में एक बालक को तत्कालीन परिस्थिति में कोई कारण न होने पर भी अपराध करता हुआ (जैसे विद्यालय की प्रयोगशाला की खिड़की के शीशों पर पत्थर फेंकता हुआ) देखने पर बाल अपराध के अध्ययन की उत्सुकता उत्पन्न हो सकती है। प्रारम्भ में उसे आश्चर्य हो सकता है या समझ में नहीं आ सकता कि वह बालक "अकारण" अपराध क्यों करता रहता है। समझाने का तथा सुविधाएं प्रदान करने का कोई प्रभाव उस पर क्यों नहीं पड़ता?

1. & 2. Kerlinger, F. N. : Foundations of Behavioral Research, Holt Rinehart & winston, Inc., Newyork, 1964, p. 14.

यह वैज्ञानिक-विधि का प्रथम सोपान है। फिर सम्बन्धित साहित्य पढ़ने पर तथा मनन करने पर वह एक प्राक्कल्पना का निर्माण कर सकता है:—"बाल अपराध दोषपूर्ण व्यक्तित्व का परिणाम है।" आगे वह तर्क करेगा कि "निम्न आर्थिक स्तर के परिवारों में अपराधी बालक अधिक होंगे क्योंकि इन परिवारों में वयस्क अपराधों की संख्या अधिक होती है। वयस्क अपराधों के कारण बालक के व्यक्तित्व का विकास दोषपूर्ण होगा।" वह आगे तर्क करेगा कि "जिन परिवारों में माता या पिता को मानसिक रोग है उनके बालकों के व्यक्तित्वों का विकास भी दोषपूर्ण होगा।" इस प्रकार तर्कना और निगमन की क्रिया चलती रहती है जो उच्च स्तर के खोज के लिए आवश्यक है। इस तर्कना और निगमन के द्वारा वह इस निष्कर्ष पर भी पहुँच सकता है कि दत्त संकलन के उपलब्ध यन्त्र और प्रविधियाँ अनुपयुक्त हैं।

(५) मापन के यन्त्रों तथा प्रविधियों का विकास :[1]

दत्त संकलन के लिए इनका होना आवश्यक है। जिस स्तर या गुण के ये होंगे उतने ही शुद्ध तथा विश्वसनीय दत्तों का एकत्रीकरण होगा। शुद्ध परिणाम दत्त की शुद्धता तथा व्यापकता पर अवलम्बित हैं। दत्त वस्तुनिष्ठ होने चाहिएँ तथा प्राक्कल्पनाओं के लिए एकत्रित होने चाहिएँ। नव अनुसन्धानकर्ता प्रायः यह नहीं जान पाता कि उसके द्वारा बनाई गई प्रश्नावली प्राक्कल्पनाओं का अथवा अनुसन्धान का वस्तुनिष्ठ एवं वास्तविक परीक्षण नहीं करती। यह जानने के लिए गहन मनन की आवश्यकता होती है।

(६) दत्त संकलन :[2]

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि दत्त संकलन जिस स्तर का होगा उससे श्रेष्ठ स्तर के अनुसन्धान-परिणाम नहीं निकल सकते।

(७) दत्त विश्लेषण और अर्थापन :[3]

विश्लेषण के लिए आवश्यक प्रविधियों का उपयोग अनुसन्धानकर्ता करता है। अर्थापन प्रकाश में आए नवीन तथ्यों के सम्बन्धों आदि का विवरण या सामान्यीकरण है।

(८) प्राक्कल्पना के परीक्षण से संबंधित निष्कर्ष :[4]

यह नव सामान्यीकरण या दो तथ्यों के सम्बन्धों के वर्णन के द्वारा प्राक्कल्पना की संपुष्टि की या उसे अमान्य कर देने की अवस्था है। यह निष्कर्ष निकालने के रूप में होती है।

1, 2, 3 और 4 : इन सोपानों का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक के अनेक अध्यायों में किया गया है। अर्थापन अंग्रेजी शब्द interpretation का हिन्दी रूप है।

अनुसन्धान की परिभाषा :

विज्ञान की प्रकृति और वैज्ञानिक-विधि के प्रत्यय के विवेचन से अनुसन्धान की वैज्ञानिकता का महत्व भी स्पष्ट है। अवैज्ञानिक-अनुसन्धान केवल अनुसन्धानकर्ता के समय, शक्ति और धन का अपव्यय मात्र है। कारण यह कि नियंत्रण, व्यवस्थितता और आत्मशुद्धि कारक प्रयासों के अभाव में परिणाम अविश्वसनीय होंगे और तथ्य नहीं होंगे। वास्तव में अवैज्ञानिक अनुसन्धान अनुसन्धान नहीं है क्योंकि अनुसन्धान तो हुआ नहीं। जिन तथ्यों का पता लगाना चाहते थे, लगा नहीं। इसी कारण "अनुसन्धान" शब्द का प्रयोग साधारणतया वैज्ञानिक अनुसंधान के अर्थ में ही किया जाता है और अनुसन्धानवेत्ताओं ने "अनुसन्धान" की परिभाषा वैज्ञानिक अनुसन्धान की परिभाषा के रूप में की है। उदाहरण के लिए बेस्ट के अनुसार "विश्लेषण की वैज्ञानिक विधि को अधिक आकारिक, व्यवस्थित और गहन रूप में चलाने का प्रक्रम अनुसंधान है।"[1] बेस्ट ने लिखा है कि एक व्यक्ति बिना अनुसन्धान किए वैज्ञानिक हो सकता है परन्तु कोई भी व्यक्ति बिना वैज्ञानिक बने अनुसन्धान नहीं कर सकता।

शैक्षिक अनुसन्धान की परिभाषा करते हुए ट्रैवर्स ने लिखा है कि "शैक्षिक अनुसन्धान एक क्रिया का द्योतक है जो उन घटनाओं के बारे में संगठित वैज्ञानिक ज्ञान के विकास की ओर निर्देशित है जिनका सम्बन्ध शिक्षकों से है।"[2]

"कोई भी व्यवस्थित अध्ययन, जिसका विधान शिक्षा को एक विज्ञान के रूप में विकसित करने के लिए किया गया हो, शैक्षिक अनुसन्धान कहा जा सकता है।"[3] (मौले)

ये परिभाषाएं वैज्ञानिक अनुसन्धान के सभी महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख नहीं करती हैं। अतः अपूर्ण हैं। कुछ अन्य परिभाषाएं[4] भी की गई हैं परन्तु वे भी अपूर्ण हैं और अधिक लम्बी हैं। परिभाषा संक्षिप्त होनी चाहिए। अतः लेखक द्वारा एक परिभाषा निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की गई है :—

अनुसन्धान वह आकारिक, व्यवस्थित, नियंत्रित तथा आत्मशुद्धिकारक खोज

1. Best, J.W. · Research in Education, Englewood cliffs : Prentice-Hall, 1959, p. 6
2. Traverse, R. M. W . An Introduction to Educational Research, Second Edition, The Macmillan Co , NewYork, 1964, p. 5.
3. Mouley, G. J · The Science of Educational Research, Eurasia Publishing House, New Delhi-I, 1963, p 4.
4. इन परिभाषाओं के लिए निम्नलिखित पुस्तक के पृष्ट २० से २३ तक देखिए : Whitney, F. L : The Elements of Research, Asia Publishing House, NewYork, 1961.

है जिसके लिए गम्भीर चिन्तन किया जाता है तथा जो तथ्यों का पता लगाती है।[1]

इस परिभाषा के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। इस परिभाषा में छः मुख्य बिन्दु हैं जो निम्न प्रकार है—

(१) आकारित :

अनुसन्धान का निश्चित स्वरूप या आकार होता है। यह आकार या तो सर्वेक्षण-विधि के रूप में होता है या प्रायोगिक-विधि के रूप में अथवा केस अध्ययन के रूप मे, या किन्हीं दो या दो से अधिक विधियों के सम्मिश्रण के रूप में अथवा अन्य किसी विधि के रूप में। यह आवश्यक नहीं कि अनुसन्धान शास्त्रियों के द्वारा बताई विधियों में से किसी विधि का उपयोग हो। अनुसन्धानकर्ता किसी नवीन परिष्कृत विधि का विकास भी कर सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि मानकीकृत परीक्षाओं, यन्त्रों या अन्य उपकरणों के उपयोग के रूप में ही अनुसन्धान हो। ये उपकरण मूर्त हैं। अमूर्त प्रविधियों का उपयोग भी हो सकता है। आगमनात्मक और निगमनात्मक तर्कना के द्वारा अथवा तर्क विज्ञान के उपयोग के द्वारा भी अनुसन्धान हो सकता है। आईन्स्टीन द्वारा अणुबम की व्युत्पत्ति और हल[2] द्वारा गणितीय निगमनात्मक सिद्धान्तवाद[3] का अनुसन्धान प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण के रूप में नहीं हुआ। न ही वे वाह्य उपकरणों के उपयोग के परिणाम थे। डीवी द्वारा "गम्भीर चिन्तन" के प्रश्न का अनुसन्धान भी इसी प्रकार का था। अतः अनुसन्धान का कोई भी रूप हो सकता है चाहे यह रूप केवल चिन्तनात्मक हो अथवा चिन्तनात्मक और बाह्य दोनों हो। परन्तु निश्चित रूप या आकार अवश्य होता है। ये आकार अनुसन्धान की विधियां हैं।

(२) व्यवस्थित :

प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रत्येक क्रिया एक सुनियोजित क्रम से होती है। उदाहरण के लिए, किसी शैक्षिक अनुसन्धान में साक्षात्कार अनुसन्धान किस अवस्था में किया जाना अधिक उपयुक्त होगा? अथवा, प्रश्नावली का उपयोग साक्षात्कार से पूर्व महत्वपूर्ण है या बाद में? प्रश्नावली का निर्माण भी एक सुनियोजित क्रम से होगा अथवा कुछ सर्वमान्य पदों का अनुसरण करने से होगा। इन प्रश्नों तथा बिन्दुओं पर विचार कर अनुसन्धान कार्य व्यवस्थित रूप में किया जाता है।

(३) नियंत्रित :

नियन्त्रित खोज के अर्थ तथा महत्व का पर्याप्त विवेचन पहले किया जा चुका है।

---

1. इस परिभाषा का अंग्रेज़ी रूप निम्नलिखित है।

Research is the formalised, systematic, controlled and selfcorrective inquiry which involves reflective thinking and which finds out facts.

2. Hull

3. Mathematico-deductive theory.

(४) आत्मशुद्धिकारक :

इस बिन्दु पर विचार-विमर्श वैज्ञानिक विधि के अन्तर्गत हो चुका है। जो अनुसन्धान अपनी अशुद्धियों को स्वयं दूर नहीं कर सकता उसके परिणाम विश्वसनीय नहीं हो सकते। ऐसी खोज वस्तुनिष्ठ नहीं है।

(५) गम्भीर चिन्तन :

हीवी द्वारा बताया हुआ गम्भीर चिन्तन वस्तुतः उच्च अनुसन्धान-कार्य में प्रारम्भ से अंत तक होने वाला चिन्तन है। इसमें निगमनात्मक तथा आगमनात्मक तर्कना की प्रक्रिया होती रहती है। इस चिन्तन का विवेचन "वैज्ञानिक विधि" के अन्तर्गत हो चुका है।

(६) तथ्यों का पता लगाती है :

यह अनुसन्धान का लक्ष्य है। विज्ञान के अनुसार तथ्यों के अर्थ पर यहाँ विचार करना आवश्यक है ताकि परिभाषा की व्यापकता की ओर संकेत हो सके। तथ्य वह है जिसके विद्यमान होने को या जिसके अस्तित्व को प्रदर्शित किया जा सके अथवा सिद्ध किया जा सके। इस प्रकार तथ्य कोई वस्तु भी हो सकती है, क्रिया भी हो सकती है, सम्बन्ध भी हो सकता है, वस्तु, क्रिया और सम्बन्ध को सचालित करने वाला नियम भी हो सकता है, इत्यादि। इस प्रकार तथ्य मूर्त रूप में भी हो सकता है और अमूर्त भी हो सकता है। अनुभव, सम्प्रत्यय, शब्दों के अर्थ आदि जिनको दिखाया नहीं जा सकता परन्तु जिनके होने के बारे में पर्याप्त प्रमाण हैं और तथ्य हैं। तथ्यों के बारे में वैज्ञानिक और सामान्य व्यक्ति के दृष्टिकोणों में बड़ा अन्तर है। सामान्य व्यक्ति तथ्यों को "अंतिम" सत्य मान लेते हैं; परन्तु वैज्ञानिक तथ्यों को "अंतिम" सत्य नहीं मानता। उसके अनुसार तथ्यों में सतत परिवर्तन होता रहता है। उसका लक्ष्य रहता है कि जिस प्रकार वे हैं उसी प्रकार उनको जानना। वैज्ञानिक तथ्यों को खोजता है, उनका वर्णन करता है, उनकी व्याख्या करता है, उनके बारे में सामान्यीकरण करता है; आदि। इन सब अर्थों में "पता लगाती है" वाक्यांश का उपयोग परिभाषा में किया गया है। किसी तथ्य की विशेषताओं, उसके स्वरूप, उसकी रचना आदि के बारे में पता लगाए बिना उसका वर्णन नहीं हो सकता। बिना उसके कारकों के बारे में पता लगे उसकी व्याख्या नहीं हो सकती। अन्य आवश्यक जानकारी के अभाव में सामान्यीकरण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त "तथ्य" शब्द का व्यापक अर्थ है।

सिद्धान्तवाद और अनुसंधान

सिद्धान्तवाद अनुसन्धान का प्रेरक है और अनुसन्धान सिद्धान्तवाद का प्रेरक है। इस प्रकार दोनों में एक प्रकार से अन्योन्याश्रित संबंध हैं। इस सम्बन्ध के

स्पष्टीकरण के लिए सिद्धान्तवाद की परिभाषा और उसके विकास का वर्णन आवश्यक है।

सामान्य व्यक्ति साधारणतया सिद्धान्तवाद को परिकल्पना (स्पेकुलेशन) समझ लेते हैं। उनके अनुसार सैद्धान्तिक (थ्योरेटिकल) व्यक्ति वह है जो व्यावहारिक (प्रैक्टिकल) नहीं है। वे "सैद्धान्तिक" को व्यावहारिक का विलोम समझते हैं और "काल्पनिक" "वास्तविकता से परे" के अर्थ में इसका उपयोग करते हैं। सिद्धान्तवाद का वैज्ञानिक अर्थ इससे बिल्कुल भिन्न है। वैज्ञानिक सिद्धान्तवाद की प्रकृति का वर्णन करने वाली तथा अर्थ स्पष्ट करने वाली दो परिभाषाएं इस प्रकार हैं।

"सिद्धान्तवाद प्रेक्षण पर आधारित अमूर्त सम्प्रत्ययों के अन्तर्सम्बन्धों-प्राक्कल्पनाओं और नियमों की एक गतिशील संरचना है"[1]

—एन्ड्रयूज

"एक सिद्धान्तवाद उन अन्तर्सम्बन्धित निर्मितियों (संप्रत्ययों), परिभाषाओं और प्रस्तावीकरणों का एक विन्यास है जो ज्ञेयों की व्याख्या तथा प्रागुक्ति के निमित्त परिवर्तियों के परस्पर संबंधो का विशिष्टोल्लेख कर उन ज्ञेयों का एक व्यवस्थित दृश्य प्रस्तुत करता है"[2]

—कलिंजर

ये दोनों परिभाषाएं महत्वपूर्ण हैं। पहली परिभाषा को लीजिए विज्ञान का लक्ष्य ज्ञेयों (तथ्यों) की खोज करना है। इन ज्ञेयों के मध्य सम्बंधों का पता लगाना है। विज्ञान के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ये तथ्य या सम्बन्ध एक दूसरे से विलग रहते हैं। विज्ञान के विकास के लिए आवश्यक है कि ज्ञान संगठित हो। प्रकृति में व्यवस्था है, क्रमबद्धता है। अतः सिद्धान्तवाद का कार्य इन विलग-विलग तथ्यों को किसी संप्रत्यात्मक योजना के अन्तर्गत संगठित करना है ताकि इन तथ्यों के बारे में अवबोध बढ़े और विज्ञान के अंतिम लक्ष्य की ओर ज्ञान आगे बढ़ सके।

---

1. "Theory is a dynamic structure of inter-relationships-hypotheses and laws—among abstract concepts which are founded on observation"—Andrews.

2. "A theory is a set of inter-related constructs (concepts), definitions and propositions that presents a systematic view of phenomena by specifying relations among variables with the purpose of explaining and predicting the phenomena"—fred N. Kerlinger : Foundations of Behavioral Research—Educational and Psychological Inquiry Holt, Rinehart & Winston, Inc., Newyork; 1964, p 11.

विज्ञान की प्रगति केवल अनुसन्धान पर ही अवलंबित नही रहती वरन् सिद्धान्तवाद के विकास और परिष्कार पर भी निर्भर करती है। जितना अनुसंधान का महत्व है उससे कम सिद्धान्तवाद का महत्व नही है। विज्ञान की सतत प्रगति के लिए आवश्यक है कि अनुसन्धानों के परिणामों के व्यवस्थितीकरण की प्रक्रिया होती रहे ताकि अवबोध विकसित होता रहे। यह व्यवस्थितीकरण की प्रक्रिया प्रकाशित तथ्यों को संचालित करने वाले नियमों तथा सिद्धान्तों के निरूपण के रूप मे होती है अथवा प्रस्तावीकरण तथा प्राक्कल्पनाओ के निर्माण के रूप मे होती है। इस प्रकार सिद्धान्तवाद के तत्व हैं प्राक्कल्पनाए, नियम तथा सिद्धान्त। एक प्राक्कल्पना, नियम या सिद्धान्त अमूर्त संप्रत्ययों के सम्बधों का वर्णन मात्र है। उदाहरण के लिए गुथ्रे[1] का निम्नलिखित सीखने का सिद्धान्त लीजिए—

"उद्दीपकों के एक संयुक्तरूप—जिसने एक गति का अनुसरण किया है—के पुनर्घटित होने पर प्रवृति उस गति द्वारा अनुसरण की होगी"[2]।

अब इस सिद्धान्त में कितने संप्रत्यय हैं? "उद्दीपक," "एक संयुक्त रूप," "एक गति," "अनुसंग," "पुनर्घटन," "अनुसरण," "प्रवृत्ति" आदि संप्रत्यय हैं; और अमूर्त हैं। "के" "द्वारा", आदि शब्दों से इन अमूर्त संप्रत्ययों के अन्तर्सम्बन्धो का बोध होता है। प्रत्येक अमूर्त संप्रत्यय प्रेक्षण पर आधारित है। उदाहरण के लिए उद्दीपक का संप्रत्यय लीजिए। अनेक मूर्त उद्दीपकों के प्रेक्षण के पश्चात् "उद्दीपक" के अर्थ के संबध मे एक सामान्य बोध विकसित होता है। यह अर्थ अमूर्त विचार है जो किसी उद्दीपक विशेष का द्योतक नही वरन् जिसमे प्रत्येक प्रकार के उद्दीपक का बोध होता है। अर्थात् सब उद्दीपको में समान रूप मे पाई जाने वाली विशेषताओं, जिनसे "उद्दीपक" शब्द अन्य शब्दों से पृथक् अर्थ मे समझा जाता है, का बोध होता है। अतः संप्रत्यय सामान्य विचार हैं जो बार-बार प्रेक्षण के कारण विकसित हुए हैं।

परिभाषा मे दूसरा शब्द "प्राक्कल्पना" आया है। प्राक्कल्पना वे प्रस्तावित नियम या सिद्धान्त या समस्या के हल हैं जिनका परीक्षण होना शेष है। उदाहरण के लिए मनोविश्लेषण के सिद्धान्तवाद की एक असत्यापित एवं अपरीक्षित प्राक्कल्पना है —

"बाल्यावस्था में—विशेष कर प्रथम छः वर्ष मे—हुए अनुभव वयस्क व्यक्तित्व के निर्धारक हैं।" "इस प्राक्कल्पना में संप्रत्यय हैं:" "बाल्यावस्था" "विशेष कर"

1. Guthrie
2. "A combination of stimuli which has accompanied a movement will on its recurrence tend to be followed by that movement"—Guthrie, E. E.: The Psychology of Learning, Newyork, Harps, 1952.

"प्रथम," "छः," "वर्ष," "अनुभव," "वयस्क व्यक्तित्व," तथा "निर्धारक"। इन प्राक्कल्पनाओं के अन्तर्सम्बन्धों के द्योतक शब्द हैं : "मैं," "हुए," "के," "है" आदि।

परिभाषा में "गतिशील संरचना" का उल्लेख है। प्राक्कल्पनाओं और नियमों का जो कुछ व्यवस्थितीकरण सिद्धान्तवाद द्वारा होता है वह कभी स्थिर नहीं है। नए अनुसन्धान परिणामों के आधार पर सिद्धान्तवाद का अर्थात् "इन अन्तर्सम्बन्धों" का पुनर्मूल्यांकन होता रहता है। नियमनात्मक तर्कना द्वारा सिद्धान्तवाद सतत परिवर्तित परिवर्धित और परिष्कृत होता रहता है। इसी अर्थ में परिभाषा में "गतिशील संरचना" का उल्लेख हुआ है।

दूसरी परिभाषा, जो कर्लिंजर द्वारा की गई है, अधिक व्यापक है। इस परिभाषा में वैज्ञानिक सिद्धान्तवाद के लक्ष्यों का भी वर्णन है। इसमें पाँच बातें बताई गई हैं। पहला एक सिद्धान्तवाद निर्मितियों (संप्रत्ययों), परिभाषाओं और प्रस्तावीकरणों के अन्तर्सम्बन्धों का विन्यास है। यह अर्थ ऊपर पहली परिभाषा, जो एन्ड्रयूज की है, में दिया है। निर्मिति, परिभाषा, प्रस्तावीकरण संप्रत्ययों के संबन्धों का वर्णन मात्र है। प्रस्तावीकरण एक कथन है जो सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। इसी प्रकार एक निर्मिति वैज्ञानिक द्वारा की गई ज्ञेयों की क्रियाविधि की कल्पना है। इस प्रकार की कल्पना से समस्या के बारे में चिन्तन की सुविधा होती है तथा अनुसन्धान के लिए नवीन समस्याएं प्रकाश में आती हैं। इन निर्मितियों को प्राक्कल्पनिक निर्मितियां[1] भी कहते हैं। विन्यास का यहाँ पर वही अर्थ है जो संरचना का है। दूसरा बिन्दु है कि ये अन्तर्सम्बन्ध ज्ञेयों का व्यवस्थित दृश्य प्रस्तुत करते हैं। प्रथम परिभाषा में यह बिन्दु है। तीसरा बिन्दु है, यह व्यवस्थितीकरण परिवर्तियों के सम्बन्धों के विशेष उल्लेख के कारण होता है। चौथा बिन्दु है: सिद्धान्तवाद का लक्ष्य व्याख्या है जिससे अवबोध बढ़े। पाँचवां बिन्दु है प्रागुक्ति। प्रागुक्ति का लक्ष्य घटनाओं पर नियंत्रण तथा अवबोध में वृद्धि है। ये अन्तिम दोनों बिन्दु ही वैज्ञानिक सिद्धान्तवाद के महत्वपूर्ण लक्ष्य हैं जिनका उल्लेख प्रथम परिभाषा में नहीं है परन्तु इस परिभाषा में एक महत्वपूर्ण बिन्दु का उल्लेख नहीं है जो प्रथम परिभाषा में है। वह है कि सिद्धान्तवाद गतिशील है। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी सिद्धान्तवाद अन्तिम तथा पूर्ण नहीं है। अर्थात् सिद्धान्तवाद स्थिर नहीं है। यद्यपि वर्तमान ज्ञान के अनुसार अत्यन्त उपयुक्त है परन्तु ज्ञान के अधिक विकसित होने पर इसमें परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा परिष्कार होगा। अतः सिद्धान्तवाद सतत विकसित होने वाली तथा संप्रत्ययों को अधिकाधिक स्पष्ट करने वाली एवं अवबोध बढ़ाने वाली व्यवस्था है। इसलिए गतिशील है।

ऊपर के विवेचन से सिद्धान्तवाद के निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट हैं :

(१) सिद्धान्तवाद का लक्ष्य उपलब्ध ज्ञान को व्यवस्थित करना है। अर्थात्

1. Hypothetical Constructs

विलग-विलग तथ्यों को एक वृहद् संप्रत्यात्मक आयोजन के अन्तर्गत तर्क विज्ञान के अनुसार रखना ताकि इन तथ्यों के घटन के बारे में अवबोध अधिक स्पष्ट हो जाए। सिद्धान्तवाद के इस लक्ष्य में निम्नलिखित लक्ष्य भी सम्मिलित हैं —

[क] उपलब्ध ज्ञान को सारांश में प्रस्तुत करना क्योंकि इस प्रस्तुतीकरण के अभाव में एक वृहद् संप्रत्यात्मक आयोजन विकसित नहीं हो सकता।

[ख] प्रेक्षित तथ्यों (घटनाओं, सम्बन्धों आदि) के घटन की व्याख्याएं करना। बिना इस व्याख्या के न तो व्यवस्थितीकरण सम्भव है और न अवबोध ही विकसित हो सकता है।

(२) सिद्धान्तवाद का लक्ष्य है इन व्याख्याओं के आधार पर ज्ञेयों के घटन की प्रागुक्ति करना। आगे होने वाली अर्थात् अपेक्षित घटनाओं और सम्बन्धों की प्रागुक्ति का सत्यापन और परीक्षण अनुसन्धान का विषय बन जाता है। इस सत्यापन और परीक्षण के द्वारा या तो पुराने सामान्यीकरण की पुष्टि होती है और या उनकी अशुद्धियों का पता लगता है तथा सिद्धान्तवाद में आवश्यक परिवर्तन और परिष्कार किया जाता है।

(३) सिद्धान्तवाद का एक मुख्य लक्ष्य उन नवीन क्षेत्रों का पता लगाना है जिनका अन्वेषण होना शेष है तथा उन महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाना है जिनका समाधान विज्ञान के विकास के लिए अत्यावश्यक है।

(४) सिद्धान्तवाद का उद्देश्य तथ्यों को प्रकाश में लाना है। निगमनात्मक तर्कना के द्वारा नवीन तथ्यों का पता उपलब्ध अनुसन्धान परिणामों को आधार बना कर लगता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तवाद का मुख्याधार तथ्य है। जो सिद्धान्तवाद तथ्यों पर आधारित नहीं है वह कल्पना है। तथ्यों का महत्व भी सिद्धान्तवाद के द्वारा एक वृहद् संप्रत्यात्मक विधान में एक निश्चित स्थान प्राप्त करने से बढ़ जाता है। सिद्धान्तवाद का महत्व भी तथ्यों के सम्बन्ध में अवबोध विकसित करने तथा नवीन तथ्यों को प्रकाशित करने के कारण होता है।

सिद्धान्तवाद अनुसन्धान के आधार के रूप में :

इन लक्ष्यों के वर्णन द्वारा अनुसन्धान के प्रेरक तथा आधार के रूप में सिद्धान्तवाद के महत्व पर प्रकाश पड़ा है। निम्नलिखित कारणों से सिद्धान्तवाद अनुसन्धान के लिए महत्वपूर्ण है।

(१) अनुसन्धानों के परिणामों, जो विलग-विलग तथ्यों के रूप में हैं, को अन्तर्संम्बन्धित कर तथा एक वृहद् विधान का अंग बनाकर सिद्धान्तवाद उन्हें अर्थपूर्ण बना देता है। उदाहरण के लिए एक अनुसन्धानकर्ता को अपराधी किशोरों के व्यवहारों का अध्ययन करने पर पता लगे कि उनके अनेक व्यवहारों के पीछे कोई कारण नहीं दिखाई देता। अपराधी किशोर विद्यालय की खिड़की के शीशे तोड़ता है,

छोटे बालकों को तंग करता है, आदि-आदि। उसे पता लगता है कि अपराधी बालक की कक्षा के अध्यापकों का व्यवहार सामान्य और अच्छा था। छोटे बालकों ने कुछ नहीं किया था इत्यादि। अनेक व्यवहारों की संकलित दत्त सामग्री अस्पष्ट, व्याख्यारहित तथा अनुपयोगी रहती है। परन्तु यदि मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तवाद के सन्दर्भ में देखा जाए तो पता लगेगा कि यह अप्रकृत (एब्नॉरमल) व्यवहार इन अपराधी किशोरों के बाल्यावस्था में विकसित दोषपूर्ण व्यक्तित्व-रचना का स्वाभाविक और अवश्यम्भावी परिणाम है। ऐसा पता लगने पर ये व्यवहार सार्थक और नियतत्ववाद (डिटरमिनिज्म) पर आधारित दिखाई देते हैं। स्वाभाविक ही उस अनुसन्धानकर्ता को मनोविश्लेषणवाद के अध्ययन के उपरान्त इन अपराधी किशोरों के व्यक्तित्व के इतिहास की जानकारी तथा उनकी वर्तमान व्यक्तित्व संरचनाओं के मापन की आवश्यकता होगी।

(२) ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि सिद्धान्तवाद अनुसन्धान को निदेशित (डाइरेक्ट) करता है। उक्त अनुसन्धानकर्ता मनोविश्लेषणवाद की जानकारी के पश्चात् अपराधी किशोरों के व्यक्ति-इतिहासों का अध्ययन करेगा। इसके अतिरिक्त उन परीक्षाओं का चयन करेगा जो व्यक्तित्व-संरचना का मापन करेंगी। यदि उपलब्ध परीक्षाएं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व-संरचनाओं के मापन के लिए उसे अनुपयोगी मालूम पड़ेंगी तो वह स्वयं ऐसी परीक्षा का विकास करेगा। इस प्रकार अनुसन्धान के प्रक्रम का तथा उठाए जाने वाले पगों का निदेशन सिद्धान्तवाद के द्वारा होता है।

(३) सिद्धान्तवाद अनुसन्धान के लिए नवीन शीर्षक, नई समस्या, नया क्षेत्रकल तथा नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। लिविन के क्षेत्र सिद्धान्तवाद[1] के कारण प्रयोगों का नवीन विधान सामने आया जिसके अनुसार अनुसन्धान किए गए। इसी प्रकार इस क्षेत्र-सिद्धान्तवाद ने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण नवीन दृष्टिकोण से किया। फ्रॉयड द्वारा बताए गए सुरक्षात्मक क्रियाविधि[2] के अस्तित्व के विद्यमान होने पर परीक्षण किए गए। उदाहरण के लिए बेलक[3] ने तदात्मीकरण (आइडेन्टिफिकेशन) नामक क्षेत्र के विद्यमान होने की प्राक्कल्पना पर प्रयोग किया। प्रयोग के परिणाम से पता लगा कि तदात्मीकरण नामक क्षेत्र का अस्तित्व है।

इसी बिन्दु का दूसरा पहलू भी है। सिद्धान्तवाद अनुसन्धान द्वारा पता लगाए गए तथ्यों के मध्य व्यवधानों (गैप्स) की ओर दृष्टि केन्द्रित करता है। अर्थात् नवीन प्रश्न खड़े करता है जो अनुसन्धान को प्रेरित करते हैं।

---

1. Lewin's field theory
2. Defence mechanism
3. Bellak, L.: The T. A. T. and the C. A. T. in Clinical use, Grune & Stratton, 1954.

अनुसन्धान को सिद्धान्तवाद को देन :

अनुसन्धान के द्वारा सिद्धान्तवाद को निम्नलिखित लाभ हैं —

(१) अनुसन्धान सिद्धान्तवाद के अन्तर्गत, प्राक्कल्पनाओं, निर्मितियों, सम्प्रत्ययों, सिद्धान्तों एवं इनके अन्तर्सम्बन्धों का परीक्षण करता है। इन परीक्षणों के परिणामों के आधार पर इन्हें या तो अस्वीकृत कर देता है अथवा इनकी पुष्टि करता है अथवा अशुद्धियां सुधार कर उन्हें परिवर्तित और परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार अनुसन्धान के कारण सिद्धान्तवाद विकसित होता है तथा अधिक वैज्ञानिक रूप धारण करता है।

(२) अनुसन्धान के परिणामस्वरूप सिद्धान्तवाद के सम्प्रत्यय अधिक स्पष्ट होते हैं। यदि कोई अनुसन्धानकर्ता विद्यालयों के बालकों के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना चाहते हैं तो उसे "मानसिक स्वास्थ्य" सम्प्रत्यय की वस्तुनिष्ठ परिभाषा करनी होगी। आवश्यकता पड़ने पर सक्रियात्मक परिभाषा[1]—प्रेक्षण पर आधारित परिभाषा—करनी पड़ सकती है। मानसिक स्वास्थ्य की सक्रिया के वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण पर आधारित परिभाषा के प्रकाश में आने से "मानसिक स्वास्थ्य" का संप्रत्यय अधिक स्पष्ट होगा।

(३) अनुसन्धान सिद्धान्तवाद के विभिन्न अंगों को संयुक्त करता है। यदि किसी सिद्धान्तवाद के कुछ पहलुओं की व्याख्या तार्किक नहीं बन पाई है और उनका पारस्परिक सम्बन्ध अन्वेषण का विषय है तो अनुसन्धान इस कमी को पूरा कर सिद्धान्तवाद के अन्तर्गठन (इण्टेग्रेशन) में सहायक होता है।

(४) अनुसन्धान सिद्धान्तवाद की सीमाओं को बढ़ाता है। स्पियरमेन ने अनुसन्धान द्वारा बुद्धि के द्विकारकों (टू फैक्टर्स) का पता लगाया। थर्स्टन के अन्वेषण के कारण बुद्धि के बहुकारकों का पता लगा। इस प्रकार बुद्धि के सिद्धान्तवाद की सीमाएं बढ़ीं। यद्यपि अभी तक बुद्धि के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मत हैं। अनुसन्धान द्वारा प्रकाशित तथ्यों में व्यवधान हैं। अर्थात् कोई महत्वपूर्ण खोज होनी शेष है जो इन विभिन्न तथ्यों का समन्वित रूप प्रस्तुत कर सके। अनुसन्धान का कार्य किसी तथ्य के बारे में विभिन्न मतों और सिद्धान्तवादों की अशुद्धियों को दूर कर उन्हें एक सुव्यवस्था के अन्तर्गत अन्तर्गठित करना है।

सारांश

वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रकृति को समझने के लिए विज्ञान की प्रकृति समझना आवश्यक है। विज्ञान और सामान्य बुद्धि में पाँच आधारभूत अंतर हैं (१)

1. Operational definition

विज्ञान संशयात्मक है जबकि सामान्य व्यक्ति बहुतसी असत्यापित एवं अपरीक्षित बातों को मानकर चलता है। (२) सामान्य बुद्धि सरलता से दिखाई देने वाले कारकों को स्वीकार करती है परन्तु विज्ञान की दृष्टि अस्पष्ट एवं छिपे हुए कारकों की ओर भी लगी रहती है। (३) सामान्य बुद्धि केवल असाधारण घटना को जानने को उत्सुक रहती है जबकि विज्ञानवेत्ता प्रत्येक घटना (साधारण या असाधारण) को समझना चाहता है। (४) विज्ञान का क्षेत्र केवल प्रेक्षणीय तथ्यों की व्याख्या तक सीमित है जबकि सामान्य बुद्धि अप्रेक्षित तथा असत्यापित तथ्यों की भी व्याख्या करना चाहती है। (५) विज्ञान की खोज नियन्त्रित एवं व्यवस्थित होती है जबकि सामान्य बुद्धि की प्रकृति अपने पूर्वाग्रहों और विश्वासों से मेल खाने वाली व्याख्याओं को स्वीकार करने की होती है।

चार अर्थों में विज्ञान शब्द का प्रयोग विज्ञानवेत्ताओं ने किया है। (१) "विज्ञान ज्ञान का संगठित शरीर है।" (२) "एक नियन्त्रित पृच्छाख्य है" (३) ज्ञान का वह क्षेत्र है जिसके अंतर्गत नियम, प्राक्कल्पनाएं और सिद्धान्तवाद हैं तथा जो विकासमान है। विज्ञान का प्रमुख स्वरूप है क्रिया और गौण स्वरूप है ज्ञान की वर्तमान अवस्था। प्रथम और तृतीय अर्थ स्थिर मत है और द्वितीय और चतुर्थ गतिशील मत।

विज्ञान के लक्ष्य हैं: (१) अवबोध (२) व्याख्या (३) नियंत्रण और (४) प्रागुक्ति। विज्ञान का एक सामान्य रूप है और अनेक विशिष्ट भिन्न-भिन्न रूप। सामान्य वैज्ञानिक विधि के सात लक्षण हैं (१) वैज्ञानिक विधि का मार्गदर्शन तथ्य करते हैं। (२) यह समस्या समाधान की विधि है। (३) इसमें प्राक्कल्पनाओं का निर्माण होता है (४) इसकी संरचना तर्कपूर्ण है। (५) यह सदा संशययुक्त रहती है। (६) यह आत्मशुद्धि कारक है। (७) यह अमूर्तीकरण और सिद्धान्तवाद की ओर सतत बढ़ती रहती है। वैज्ञानिक विधि वह आकारित, व्यवस्थित, नियन्त्रित तथा आत्मशुद्धि कारक खोज है जिसके लिए गम्भीर चिंतन किया जाता है तथा जो तथ्यों का पता लगाती है।

सिद्धान्तवाद और अनुसन्धान में अन्योन्याश्रित संबन्ध है। ये परस्परक प्रेरक हैं। सिद्धान्तवाद का लक्ष्य (१) उपलब्ध ज्ञान को व्यवस्थित करना (२) ज्ञेयों की प्रागुक्ति करना (३) नवीन प्रश्नों को उठाना और (४) तथ्यों को प्रकाशित करता है। सिधान्तवाद अनुसन्धान का आधार है। अनुसन्धान द्वारा प्रकाशित तथ्यों को अन्तर्ग्रथित कर सिद्धान्तवाद अवबोध विकसित करता है। सिद्धान्तवाद अनुसन्धानकर्ता के ज्ञान में वृद्धि कर उसके अनुसन्धान कार्य को मार्ग निर्देशित करता है।

सिद्धान्तवाद नयी समस्याएं और नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिसके कारण अनुसन्धान में नए विभाग विकसित होते हैं।

अनुसंधान सम्प्रत्ययों, प्राक्कल्पनाओं, निर्मितियों और सिद्धान्तों का परीक्षण

और सत्यापन कर उसे विकसित करता और वैज्ञानिक बनाता है। वह सम्प्रत्ययों को अधिक स्पष्ट करता है और सिद्धान्तवाद के विभिन्न भागों में तार्किक सम्बन्धों का पता लगाकर अधिक एकत्व स्थापित करता है तथा उसकी सीमाओं को अधिकाधिक विस्तृत करता है।

अभ्यास-कार्य

१. विज्ञान और सामान्य बुद्धि में अंतरों को स्पष्ट करते हुए बताइए कि इन अंतरों की जानकारी से अनुसंधान-कर्ता को क्या लाभ है?
२. आपने जो वैज्ञानिक विषय पढ़े हैं उनमें हुई खोजों के उदाहरणों की सहायता से विज्ञान के लक्ष्यों को स्पष्ट कीजिए।
३. विज्ञान किसे कहते हैं? वैज्ञानिक-विधि की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
४. "सिद्धान्तवाद और अनुसंधान में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है"—इस कथन की व्याख्या कीजिए।

२

अनुसन्धान-समस्या का चयन

अनुसन्धान-समस्या का उद्गम :

जीवन में हमें अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जहाँ कुछ समस्याओं का हल ढूंढने में हम अधिक क्रियाशील रहते हैं वहाँ कुछ समस्याओं के विषय में हम विशेष सजग नहीं रहते। समस्याओं के प्रति जागरूकता वैज्ञानिक दृष्टिकोण का लक्षण है। एक कुशल अनुसन्धाता समस्याओं के प्रति सदैव जागरूक रहता है। छोटी से छोटी समस्या के सम्बन्ध में वह चिन्तनशील रहता है। हम जो भी कार्य करते हैं उसमें हमें कठिनाइयाँ अनुभव होना स्वाभाविक है। यदि इन कठिनाइयों को दूर करने का सुनियोजित प्रयत्न किया जाय तो वह अनुसन्धान का रूप धारण कर सकता है। कभी-कभी हम हमारे कार्य करने के तरीके को अधिक अच्छा बनाना चाहते हैं ताकि परिणाम अधिक अच्छे निकल सकें। या ऐसी भी परिस्थितियाँ हमारे जीवन में आती हैं जब हमें अनेक विकल्पों में से एक विकल्प चुनना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में ही शोध कार्य के लिए पर्याप्त समस्याएं प्राप्त होती हैं। एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाला शिक्षक, सदैव अपनी कार्य-पद्धति को परिमार्जित करने के लिए उत्सुक रहता है। वह यह पता लगाना चाहता है कि विद्यार्थियों की सीखने की प्रक्रिया का स्वरूप क्या है? वे कौन से साधन अथवा क्रिया-कलाप हो सकते हैं जिनसे सीखना एक सुलभ क्रम बन जाए। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में संबंधित प्रत्येक व्यक्ति कई अनुसन्धान योग्य समस्याएं ढूंढ सकता है। यदि हम थोड़े

जागरूक रहें तथा कठिनाइयों को अनुभव करते रहें तथा उन्हें दूर करने की हममें जिज्ञासा हो तो समस्याएं अपनेग्राप सामने आने लगेंगी। वर्तमान परिस्थिति में हमे जब असन्तोष या कमी अनुभव होती है व उसे सुधारने की हममे तीव्र इच्छा होती है तब हम शोध कार्य के लिए प्रवृत्त होते हैं।

अनुसन्धान-समस्याओं का बाहुल्य .

अनेक बार अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ करते समय विद्यार्थियों को समस्याएं चुनने मे कठिनाई अनुभव होती है। उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस क्षेत्र में वे कार्य करने जा रहे हैं उसकी सम्पूर्ण समस्याओं पर पहले से ही कार्य हो चुका है। विशेष कर जब नए विद्यार्थी सबंधित साहित्य पढ़ते हैं तो उन्हें इतना शोधकार्य पहले से ही किया हुआ दृष्टिगोचर होता है कि उन्हें ऐसा लगता है कि नया कुछ करने को बचा ही नहीं।

प्रारम्भ मे ऐसी कठिनाई अनुभव करना नए विद्यार्थी के लिए स्वाभाविक है। नए विद्यार्थी में समस्याओं के प्रति जागरूकता नहीं होती। यह गुण प्रशिक्षण के फलस्वरूप ही विकसित हो सकता है। समस्या सामने होते हुए भी अनेक बार हम उसे अनुभव करने मे असफल हो सकते हैं।

जबतक हममें शोध मनोवृत्ति विकसित नहीं होती तबतक हम कठिनाइयों को अनुभव नहीं करते। कई कमियां हमें अखरती ही नहीं। अनेक बार तो जाने माने अनुसन्धाता भी समस्याओं को देख नहीं पाते। गुड तथा स्केट[1] महोदय ने एक बड़ा अच्छा उदाहरण प्रस्तुत कर यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह अनुभवी वैज्ञानिकों की नजर से भी समस्याएं छूट जाती हैं। "बेल महोदय के टेलीफोन के आविष्कार के सम्बन्ध में पढ़कर मोसेस जो फारमर एक सप्ताह तक सो नहीं सके। उन्होंने कहा कि यह समस्या उनके सामने एक वर्ष में कई बार आई किन्तु वे उसे देखने मे असमर्थ रहे।"

आवश्यक नहीं कि जो समस्या हम अनुसन्धान के लिए ले रहे हैं उस पर पहले कोई कार्य ही नहीं हुआ हो। किसी भी समस्या के समस्त पहलुओं पर एक अनुसन्धान में प्रकाश डालना सम्भव नहीं होता। इसलिए हमें यह देखना चाहिए कि किस समस्या के कौन से आयाम अभी तक अछूते हैं। उन आयामों पर यदि हम कार्य करें तो समस्या की नवीनता बनी रहती है।

एक परिस्थिति मे प्राप्त किए गए तथ्य बहुत बार दूसरी परिस्थितियों मे लागू नहीं होते। अत: यदि किसी अनुसन्धान ने एक समस्या का हल एक देश, समाज,

---

1 Carter V. Good & Dauglas F. scates . Methods of Research, Educational Psychological NewYork, Appleton Century Crafts, 1954. p 36.

जाति, संस्कृति आदि के सदर्भ मे ढूंढा हो तो हम इसी समस्या का हल अन्य परिस्थितियों के सन्दर्भ में ढूंढ सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि अमरीका के बच्चों के विकास मानक (नॉरम्स) ज्ञात किए हुए हों तो हम भारतीय बच्चों के विकास मानक ज्ञात कर सकते हैं।

अनुसन्धान के लिए एक पूर्वापेक्षा-समस्याओं के प्रति जागरूकता :

अनुसन्धान-कार्य एक वैज्ञानिक प्रक्रम है। अतः अनुसन्धाता में भी एक वैज्ञानिक के गुण होना आवश्यक हो जाता है। वैज्ञानिक का एक लक्षण है सूक्ष्म निरीक्षण एवं वातावरण में घटित घटनाओं के प्रति जागरूकता। एक वैज्ञानिक की दृष्टि इस प्रकार पैनी बन जाती है कि उसके वातावरण मे घटने वाली नगण्य से नगण्य घटना के प्रति भी वह सजग रहता है। साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का दूसरा पक्ष है समस्या को अनुभव करते ही उसके हल को ढूंढने की जिज्ञासा। उपरोक्त दोनों गुणों को स्पष्ट करने के लिए दो उदाहरण उपयुक्त होंगे।

हममें से प्रत्येक फलों को पेड़ से नीचे गिरते देखता है किन्तु न्यूटन जैसे परिपक्व वैज्ञानिक के मन में इस घटना ने अनेकों प्रश्न उत्पन्न किए और उसकी जिज्ञासा के फलस्वरूप उसने गुरुत्वाकर्षण के नियमों को खोज निकाला। इसी प्रकार आर्कमेडीज जैसे वैज्ञानिक ने ही टब में नहाते समय यह अनुभव किया कि पानी में उछाल होती है। कहने का तात्पर्य यह कि अनुसधाता में समस्याओं को पहिचानने की क्षमता होनी चाहिए एव समस्या अनुभव होते ही उसे हल करने की उत्कट इच्छा भी। कई बार हम हमारे कार्य में ऐसे व्यस्त रहते हैं कि हमें हमारी कमियां व कठिनाइयां अनुभव ही नहीं होतीं। अतः एक अनुसंधाता यदि जागरूक रहे तो उसे अपने वातावरण में ही अनेकों समस्याएं दृष्टिगोचर हो सकती हैं जिनका हल अभी तक नहीं खोजा गया है।

अनुसधान-समस्याओं के स्रोत :

अनुसधान-कार्य के लिए समस्याओं की कमी नहीं यह पहले कहा जा चुका है। अब इन समस्याओं के प्रमुख स्रोतों का यहां विवेचन किया जायगा।

(१) संबंधित साहित्य का अध्ययन—हम जिस क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं या जिस क्षेत्र मे अनुसन्धान कर रहे हैं उस क्षेत्र के साहित्य का गहन अध्ययन करना समस्याओं के चयन-हेतु उपयुक्त होगा। सबंधित साहित्य के अध्ययन के दौरान हमें उस क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं एवं आवश्यकताओं का आभास हो सकता है। साथ ही हमें यह भी पता लग सकता है कि किन समस्याओं पर पहले ही कार्य हो चुका है और जिन समस्याओं पर कार्य हो चुका है उनके कौन से आयामों पर अभी भी कार्य किया जा सकता है। सबंधित साहित्य के अध्ययन से हमें यह पता लग सकता है कि शोधकर्ता ने किस विधि को अपनाया है। हम चाहें तो अन्य विधि को अपनाकर देख सकते हैं कि क्या परिणाम भिन्न आते हैं।

(२) अनुसंधानों से उद्भूत नवीन समस्याएं :

अनुसन्धान-कार्य एक निरन्तर चलने वाला प्रक्रम है। एक समस्या सामने आती है उसे हल करने के लिए अनुसधान किया जाता है और इस अनुसन्धान के दौरान नए प्रश्न एव समस्याए उपस्थित हो जाती हैं। इन नए प्रश्नो पर पुन: अनुसन्धान किया जा सकता है। वैज्ञानिको ने अन्तरिक्ष यात्रा के लिए अन्तरिक्ष यानों का आविष्कार किया और मानव ने अन्तरिक्ष यात्रा प्रारम्भ की। प्रत्येक अन्तरिक्ष यात्रा ने कई नए प्रश्न एव समस्याए वैज्ञानिको के सामने उपस्थित किए जिन पर वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे हैं। इस प्रकार समस्याएं, अनुसन्धान, नई समस्याएं और फिर अनुसधान यह एक निरन्तर चलने वाला प्रक्रम है। अत: शोधकर्ता यदि पूर्ण किए गए अनुसन्धान को पढे तो उसे अनेकों नई समस्याए दिखाई दे सकती हैं।

कई बार एक समस्या पर कार्य कर रहे अनुसन्धाताओं को अनुसन्धान कार्य के बीच कुछ ऐसे तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं जिनके फलस्वरूप बिल्कुल नई शोध सामने आ जाती है। पेवलाव का मुख्य उद्देश्य कुत्तों की लार क्रिया (सालवेशॅन) के सम्बन्ध मे अनुसन्धान करना था। किन्तु उसने इस अनुसन्धान कार्य के दौरान अनुबधन की क्रिया को देखा और इस विषय पर बहुमूल्य तथ्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत किए। बेकवीरेल [1] जब रेडियम पर शोध कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि उनके जेब मे पडे रेडियम के फलस्वरूप उनके त्वचा के उत्तको का विनाश हो गया। इस तथ्य के आधार पर ही रेडियम का उपयोग केन्सर के उपचार मे किया जाने लगा।

आजकल शल्य चिकित्सा मे क्रायो सर्जरी अथवा शीत-शल्य चिकित्सा का जो प्रयोग किया जाता है उसका भी विकास इसी प्रकार हुआ है। इसके जन्मदाता डाक्टर कपूर महोदय को उनकी पत्नी ने एक कार्क खोलने का यन्त्र क्रिसमस उपहार के रूप में दिया। इस यन्त्र को काम मे लेते समय ही इनके दिमाग में यह बात आई कि एक ऐसा यन्त्र बनाया जा सकता है जिसके द्वारा हम मानव शरीर के किसी भी रुग्ण भाग की कोशिकाओं को अत्यन्त शीत द्वारा मृत कर सकते हैं। और यही प्रारम्भ था कायोसर्जरी अथवा शीत-शल्य चिकित्सा का।

(३) शाला एवं समाज से संबंधित समस्याएं :

यदि एक अनुसधाता जागरूक रहे तो उसे शाला जीवन मे एव समाज मे शिक्षा से सबंधित अनेकों समस्याए दृष्टिगोचर हो सकती हैं, जिन पर शोध कार्य करने की आवश्यकता है। प्रत्येक शिक्षक, प्रधानाध्यापक, शिक्षा-प्रशासक के सम्मुख अपने कार्य से सबंधित अनेकों समस्याए आती हैं। अनुसन्धाता यदि इनसे अवगत हो तो उसे अनुसन्धान समस्याओं का महत्वपूर्ण स्रोत हाथ लग सकता है।

इसी प्रकार समाज में भी शिक्षा से सबंधित अनेकों समस्याए मौजूद हैं। उदाहरण के लिए बढते हुए बाल अपराध, पिछडी जातियो के बच्चों की शिक्षा समस्याए

1. वही पृ० 48।

एवं इन बालकों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि अध्ययन-अध्यापन कार्य के लिए उपयोगी कम खर्चीले उपकरणों का निर्माण आदि।

(४) वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याएं :

विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति का प्रभाव शिक्षा जगत् पर हुए बिना नहीं रह सकता। शिक्षा जगत् में नवीन साधन सुविधाओं का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है यह एक महत्वपूर्ण शोध का क्षेत्र हो सकता है। अध्यापन मशीनों का आविष्कार, टेलीविजन, चलचित्र, टेप रेकार्डर आदि का विभिन्न शैक्षिक उद्देश्यों के लिए उपयोग भी इस बात का प्रमाण है कि विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति शिक्षा जगत् को प्रभावित किये बिना नहीं रहती।

अनुसन्धान के योग्य समस्याओं के लक्षण :

अनुसन्धानकर्ता को समस्या का चयन करने के पूर्व उसके औचित्य एवं उपयोगिता के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना चाहिए। केवल अनुसन्धान के लिए अनुसन्धान करना न तो अनुसन्धाता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है न ही विषय की समृद्धि के लिए जिसमें कि अनुसन्धान किया जा रहा है। समस्या को चुनने के पूर्व यदि कुछ कसौटियों पर उसे परख लें तो उचित होगा। इस प्रयोजन से यहाँ समस्या की उपयुक्तता को जाँचने की कुछ कसौटियों की चर्चा की गई है।

(१) *नवीनता—समस्या का चयन करने के पूर्व हमें संबंधित साहित्य के* अध्ययन से यह पता लगा लेना चाहिए कि कहीं इसी समस्या का हल पहले से ही निकाला तो नहीं गया। एक ही समस्या पर पुनः कार्य करने से हानि होती है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनमें अनुसन्धाताओं को कार्य समाप्त करने के उपरान्त यह पता लगा कि इस समस्या पर तो पहले ही पर्याप्त कार्य हो चुका है। संबंधित साहित्य का पूर्ण अध्ययन न करने के कारण पाश्चर जैसे उच्चकोटि के वैज्ञानिक ने भी ऐसी गलती कर दी थी। उन्होंने सूक्ष्म जीवाणुओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर यह पता लगाया कि ये जीवाणु बिना श्वास क्रिया के जीवित रहते हैं। जबकि यह तथ्य दो शताब्दियों पहले ही अन्य वैज्ञानिकों ने पता लगा लिया था। अतएव एक उपयुक्त समस्या का सर्वप्रथम लक्षण होना चाहिए नवीनता। यहाँ यह कह देना उपयुक्त होगा कि यदि एक बार किसी समस्या पर शोध किया गया हो और फिर उस पर नए *सन्दर्भ में शोध किया जाय तो समस्या की नवीनता समाप्त नहीं होती।*

(२) समस्या की उपयोगिता—

समस्या को चुनते समय हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि यह समस्या कितनी महत्वपूर्ण है। क्या इस अनुसन्धान से प्राप्त तथ्य शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने में या शिक्षा की समस्याओं को सुलझाने में मदद कर सकते हैं। कोई भी अनुसन्धान तभी सार्थक माना जा सकता है यदि उसके फलस्वरूप वर्तमान परिस्थितियों में सुधार लाने में मदद मिले।

ऐसी समस्याओं को लेने में कोई अर्थ नहीं जिनके परिणाम न तो ज्ञान के विस्तार में उपयोगी हो न हो जीवन में उपयोगी हो। उदाहरण के लिए यदि कोई अनुसन्धाता विभिन्न साहित्यकारों के द्वारा लिखे गए वाक्यों की लम्बाई का तुलनात्मक अध्ययन करे तो ऐसा कार्य न तो साहित्य की सेवा कहा जा सकता है न ही यह शोध किसी भी प्रकार से समाज के लिए उपयोगी होगी। इस प्रकार का शोध कार्य करना केवल समय का अपव्यय ही है।

कभी-कभी हम ऐसे प्रश्नों को लेकर शोध करते हैं जिनका उत्तर स्पष्ट रूप से विदित हो। जैसे क्या श्रव्य दृश्य सामग्री के उपयोग से शैक्षिक उपलब्धि बढ़ेगी। यह स्पष्ट रूप से विदित है कि इसका उत्तर सकारात्मक ही आएगा। अतएव जिन समस्याओं के हल स्पष्ट रूप से दिखाई देते हों उनके सम्बन्ध में अनुसन्धान करके समय नष्ट करना व्यर्थ होगा।

(३) अनुसंधाता की रुचि एवं योग्यता

समस्या अच्छी हो किन्तु अनुसन्धाता की उसमें रुचि न हो तो ऐसी समस्या लेना व्यर्थ होगा। अनुसन्धान तो स्वप्रेरित श्रम है। जबतक इस प्रक्रिया में आन्तरिक प्रेरणा नहीं होगी कार्य उच्च कोटि का नहीं होगा। पदोन्नति के हेतु यदि हम कोई शोध कार्य हाथ में ले लें तो वह इतना प्रभावोत्पादक नहीं होगा। समस्या में रुचि पूर्णतया बौद्धिक प्रेरणा के फलस्वरूप होनी चाहिए। किसी पूर्वाग्रह को सिद्ध करने के लिए भी बहुत बार शोध-कार्य हाथ में लिए जाते हैं उनकी उपादेयता सीमित ही होती है।

समस्या में रुचि के साथ-साथ समस्या पर कार्य करने के लिए अनुसन्धाता में आवश्यक विशेष योग्यता का होना भी अनिवार्य है। बालकों में गणित की धारणाओं के विकास के सम्बन्ध में शोध-कार्य करने वाले अनुसन्धाता में यदि गणित विषय की योग्यता नहीं हो तो उसका शोध-कार्य बहुत ही छिछला होगा।

(४) आवश्यक-दत्त सामग्री एवं अन्य साधनों की उपलब्धि :

कई बार समस्याएं अच्छी होते हुए भी आवश्यक दत्त सामग्री एवं साधनों के अभाव में हम अनुसन्धान कार्य नहीं कर सकते। उदाहरण के तौर पर यदि हम यह पता लगाना चाहें कि शिक्षकों के स्थानान्तरण में कौन-कौन से कारक प्रभाव डालते हैं। इस समस्या के लिए आवश्यक दत्त सामग्री मिलना बहुत कठिन है। कुछ कारक ऐसे हो सकते हैं जिनके सम्बन्ध में कोई भी व्यक्ति चर्चा करने में हिचकिचाहट अनुभव कर सकता है। कभी-कभी ऊपर दिखने में तो एक कारक हो और वास्तव में स्थानान्तरण किसी अन्य कारण से हो किया गया हो। हमें यह भी देख लेना चाहिए कि जो तथ्य हमें शोध-कार्य के लिए चाहिए क्या हमें वे उपलब्ध हो सकते हैं। जैसे यदि हमें शिक्षकों के गोपनीय अभिलेख देखने की आवश्यकता हो तो क्या हमें यह रेकर्ड्स उपलब्ध हो सकते हैं ? फिर यह भी पता लगा लेना चाहिए कि क्या शाला

छोटा न बन जाय कि उस अनुसन्धान की कोई उपादेयता ही नहीं रहे। उदाहरण के लिए, यदि हम यह समस्या ले लें कि किसी एक शाला के प्रधानाध्यापक द्वारा काम में लिए गए दण्ड एवं पुरस्कार के तरीकों का अध्ययन करना है, तो ऐसे अति सीमित अध्ययन की उपादेयता भी सीमित ही होगी। अतः अनुसन्धाता को यह भी देख लेना चाहिए कि कहीं समस्या का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित तो नहीं है। अति व्यापक एवं अति संकुचित दोनों ही प्रकार की समस्याएं अनुसन्धान के लिए उपयुक्त नहीं होतीं।

समस्या-कथन :

समस्या के क्षेत्र निर्धारण के बाद अनुसन्धाता समस्या का कथन करता है। समस्या कथन के कई रूप हो सकते हैं जिनमें से कुछ की यहाँ चर्चा की गई है—

(१) एक कथन के रूप में समस्या-कथन—समस्या को एक कथन के रूप में लिखा जा सकता है—जैसे प्रतिभावान बालकों की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन, दो पारी वाले विद्यालयों की प्रशासनिक कठिनाइयां, बी० एड० में प्रवेश लेने वाले छात्रों की शैक्षिक पृष्ठभूमि, आदि।

(२) एक प्रश्न के रूप में समस्या-कथन—समस्या का कथन एक प्रश्न के रूप में भी किया जा सकता है जैसे आठवीं कक्षा के पश्चात् बालक अधिकतर कौनसे विषय लेते हैं? अभिभावकों के आर्थिक सामाजिक स्तर में और उनके बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि में क्या सम्बन्ध है? आदत में सुधार के सुधार का कौनसा तरीका सबसे उपयोगी हो सकता है?

(३) प्रश्न तथा कथन के रूप में समस्या कथन—कभी-कभी समस्या-कथन में पहले एक कथन और फिर प्रश्न को लिया जाता है। उदाहरणार्थ, आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों की गणित विषय की कठिनाइयां और उन्हें कैसे हल किया जाय?

अभिसिद्धान्तों का प्रतिपादन :

वैज्ञानिक-विधि की चर्चा करते समय यह स्पष्ट किया गया है कि सर्वप्रथम समस्या की व्याख्या की जाती है और उसके पश्चात् वैज्ञानिक समस्या के सम्भावित हल सामने रखता है तथा प्रत्येक सम्भावित हल को प्रायोगिक ढंग से परखता है। जो हल सबसे उपयुक्त हो उसे स्वीकार कर अन्य विकल्पों को त्याग दिया जाता है। समस्या के सम्भावित हल को ही अभिसिद्धान्त कहा जाता है। अनुसंधान कार्य में अभिसिद्धान्तों का महत्वपूर्ण स्थान है। अभिसिद्धान्त यदि स्पष्ट ढंग से प्रतिपादित किए जाएं तो इनके द्वारा हम अनुसन्धान की सम्पूर्ण रूपरेखा स्पष्ट हो सकती है। उदाहरण के लिए कुछ अभिसिद्धान्त निम्नलिखित है—

१. यदि अध्यापकों की राय किसी महत्वपूर्ण निर्णय लेने के पूर्व ली जाय तो निर्णय कार्यान्वित करने में सफलता मिल सकती है।
२. ऊँचे आर्थिक एवं सामाजिक स्तर वाले व्यक्तियों के बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि अन्य बालकों से अधिक होती है।

३. सौतेले माता-पिता वाले बालकों में अपराधीपन की प्रवृत्ति पाई जाती है।

इन अभिसिद्धान्तों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व हम एक संभावित निष्कर्ष सामने रखकर चलते हैं। इन संभावित निष्कर्षों को परखने के लिए अनुसन्धान का प्रारूप निर्धारित किया जाता है व आंकड़े एकत्रित किए जाते हैं। फिर उपलब्ध दत्त सामग्री के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि हम जिस अभिसिद्धान्त को लेकर चले थे वह कहां तक सत्य है।

उपरोक्त अभिसिद्धान्तों को यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें स्पष्ट हो जाएगा कि अभिसिद्धान्तों में केवल संभावित निष्कर्ष ही निहित नहीं है किन्तु अनुसन्धान के प्रारूप की ओर भी संकेत हैं। प्रथम अभिसिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम दो अध्यापकों के समूह लेंगे, एक समूह से निर्णय लेते समय राय मांगी जाएगी व दूसरे समूह से राय नहीं ली जाएगी। फिर दोनों समूहों ने कितने निर्णयों को किस सीमा तक एवं किस प्रकार से कार्यान्वित किया इसका तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

अभिसिद्धान्तों के स्रोत :

अभिसिद्धान्त यद्यपि संभावित हल या निष्कर्ष होते हैं तथापि इन्हें किसी न किसी अनुभव या ज्ञान के आधार पर प्रतिपादित किया जाता है। अनुसंधाता के स्वयं के अनुभव, संबंधित शोध-कार्यों के परिणाम, वर्तमान क्रियाकलापों का अध्ययन एक अच्छे उदाहरण के रूप में कुछ अनुसन्धान समस्याओं की सूची नीचे दी जा रही है।

शिक्षा-इतिहास :

१. मद्रास राज्य में सन् १६०८ से माध्यमिक शिक्षा का विकास।
२. मध्यकालीन कर्नाटक में शिक्षा।
३. भारत में बुनियादी शिक्षा का विकास।
४. भारत में मुगल शिक्षा-पद्धति।
५. १८३५ से १६२१ तक अंग्रेजी शिक्षा-विचारधाराओं का भारतीय शिक्षा-पद्धति पर प्रभाव।
६. ब्रिटिश भारत में शिक्षा का विकास।
७. शिक्षा की बीस शताब्दियाँ।
८. संयुक्त राज्य अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा की स्थापना। संयुक्त राज्य अमेरिका में उपनिवेश स्थापना से गृहयुद्ध तक का शिक्षा-इतिहास।

शिक्षा-मनोविज्ञान :

१. प्रारम्भिक बाल्यकाल में गणित के प्रत्ययों का विकास।
२. बुद्धिलब्धि एवं शालेय उपलब्धि का संबंध।
३. सह शिक्षा दिए जाने वाले विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं की व्यवस्था-पन संबंधी समस्याएं।

४. प्रतिभावान छात्रों के व्यक्तित्व का अध्ययन ।
५. सोमाजमितिक स्तर एवं शालेय उपलब्धि ।
६. सृजनात्मकता एवं विज्ञान विषय में उपलब्धि ।

शिक्षा-समाजशास्त्र :

१. एकाकी छात्रों की अध्ययन संबंधी समस्याएं ।
२. पिछड़ी जाति के छात्रों की व्यवस्थापन समस्याएं ।
३. ग्रामीण छात्रों की शहरी विद्यालयों में व्यवस्थापन संबंधी समस्याएं ।
४. ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों का छुआछूत के प्रति दृष्टिकोण ।
५. नौकरी करने वाली माताओं के बच्चों की समस्याएं ।

शिक्षा-दर्शन :

१. गांधीजी का शिक्षा-दर्शन ।
२. टैगोर की शिक्षा को देन ।
३. गीता का शिक्षा-दर्शन ।
४. उपनिषदों में शिक्षा के आदर्श ।
५. रूसो एवं ड्यूवी की शैक्षिक विचार-धाराओं की बुनियादी शिक्षा के दर्शन से तुलना ।

शिक्षा-विधियाँ :

१. अभिक्रमित अध्ययन (Programmed learning) सामग्री की अंग्रेज़ी शिक्षण में उपादेयता ।
२. विशिष्ट प्रकार के प्रायोगिक कार्य द्वारा वैज्ञानिक-विधि का प्रशिक्षण—एक प्रयोग ।
३. गणित के कुछ कठिन सम्प्रत्ययों को छोटी कक्षाओं में पढ़ाकर देखना—एक प्रयोग ।
४. प्रतिभावान छात्रों के लिए अभिक्रमित अध्ययन सामग्री की उपादेयता ।

शिक्षा-प्रशासन :

१. द्विपारी विद्यालयों की प्रशासनिक समस्याएं ।
२. अध्यापक मंडलों का शाला की नीति-निर्धारण में स्थान ।
३. प्रधानाध्यापक-अध्यापकों के आपसी संबंधों का शाला की उपलब्धियों पर प्रभाव ।
४. सहायता प्राप्त शालाओं के अध्यापकों की समस्याएं ।
५. राजस्थान में शिक्षा के विकेन्द्रीकरण का आलोचनात्मक अध्ययन ।
६. राजस्थान के शैक्षिक प्रशासनिक तंत्र की कुशलता का अध्ययन ।
७. शिक्षा-नीति निर्धारण में विभिन्न प्रभाव समूहों का उत्तरदायित्व ।

शिक्षक-शिक्षा :

१. शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम प्रशाखाओं की अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कहां तक करता है ?
२. शिक्षण सम्मान के महत्वपूर्ण घटक ।
३. भारत में शिक्षकों के व्यावसायिक संगठनों का अध्ययन ।
४. शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में पत्राचार पाठ्यक्रमों की उपादेयता ।

मापन एवं मूल्यांकन :

१. राजस्थान बोर्ड के विज्ञान के प्रश्नपत्रों में विभिन्न उद्देश्यों को दिए गए महत्व का अध्ययन ।
२. राजस्थान बोर्ड द्वारा अपनाई गई नवीन परीक्षा-प्रणाली के प्रति शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के दृष्टिकोण ।
३. गणित निष्पत्ति परीक्षा का निर्माण कक्षा ८ के विद्यार्थियों के लिए ।
४. विज्ञान रुझान परीक्षा का निर्माण ।

सारांश

इस अध्याय में अनुसन्धान समस्या के चयन सम्बन्धी कुछ प्रमुख तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । सर्वप्रथम यह बताने का प्रयास किया है कि जीवन में अनेकों समस्याएं सामने आती हैं किन्तु आवश्यकता होती है उन्हें पहिचानने [illegible]

शोधकार्य के उपयुक्त है या नहीं इसकी हमें जाँच करनी होगी तथा समस्या के क्षेत्र की सीमानिर्धारण कर समस्या की स्पष्ट एवं निश्चित शब्दों में व्याख्या करनी होगी । अनुसन्धान कार्य में अभिग्रहीतों का स्थान एवं उनके महत्व की भी यहां चर्चा की गई है । अब अगले अध्याय में संबंधित साहित्य के अध्ययन-हेतु उपयोगी निर्देश दिए जाएंगे तथा पुस्तकालय के उपयोग के सम्बन्ध में भी चर्चा की जाएगी ।

अभ्यास-कार्य

१. अनुसंधान समस्याओं के प्रमुख स्रोतों का उल्लेख कीजिए ।

२. "अनुसंधान समस्याओं की कमी नहीं है। आवश्यकता है समस्याओं के प्रति जागरूकता विकसित करने की।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

३. अनुसंधान समस्या के चयन के समय हमें किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

४. समस्या की नवीनता से क्या तात्पर्य है ?

५. समस्या-कथन में किन-किन बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए ?

३

साहित्य का पुनरावलोकन

साहित्य का पुनरावलोकन (रिव्यू) प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कदम है। बहुधा नव-अनुसन्धानकर्ता इस कदम के महत्व को पहचान नहीं पाते। उन्हें लगता है कि जो समस्या उन्होंने चुनी है उस पर अविलम्ब अनुसन्धान-क्रिया प्रारम्भ होनी चाहिए। अनुसन्धान-क्रिया का प्रारम्भ वे उपकरण के निर्माण और दत्त सामग्री के संकलन से समझते हैं। वे साधारणतया अपनी समस्या से संबंधित कुछ अनुसन्धान-लेखों और पुस्तकों का अध्ययन कर पुनरावलोकन की इतिश्री समझ लेते हैं। यदि वे कुछ विस्तृत रूप में साहित्य का अध्ययन करते भी हैं तो भी अनुसन्धान के विधान (डिज़ाइन) के साधन के रूप में उन अध्ययनों का उपयोग नहीं कर पाते। वस्तुतः साहित्य-पुनरावलोकन एक कठोर परिश्रम का कार्य है। प्रत्येक प्रकार के वैज्ञानिक अनुसन्धान में—चाहे भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में हो अथवा सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में—साहित्य का पुनरावलोकन एक अनिवार्य और प्रारंभिक कदम है। मानविकी विषयों में तो साहित्य के पुनरावलोकन के बिना अनुसन्धान कार्य नहीं हो सकता। शिक्षा में दोनों प्रकार के अनुसन्धानों—क्षेत्रीय अध्ययनों तथा पुस्तकालयों और लेख्यों पर आधारित अध्ययनों—में साहित्य का पुनरावलोकन एक अत्याज्य अंग है। ऐतिहासिक अन्वेषण में तो समस्या पर उपलब्ध सम्पूर्ण लिखी हुई सामग्री—चाहे लेख्यों, पत्रों, लेखों अथवा पुस्तकों के रूप में हो—की मीमांसा ही अनुसंधान का मुख्य कार्य है। क्षेत्रीय अध्ययनों में—जहां उपलब्ध उपकरणों अथवा नवीन

स्वनिर्मित उपकरणों का उपयोग तथा दत्त सकलन का कार्य होता है—समस्या से संबंधित सम्पूर्ण साहित्य का पुनरावलोकन अनुसन्धान का प्राथमिक आधार है तथा अनुसन्धान के गुणात्मक स्तर के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारक है। भूल से अनेक छात्र यह समझ लेते हैं कि अनुसन्धान-कार्य उपकरण के निर्माण अथवा उपयोग से प्रारम्भ होता है। परिणामस्वरूप उनके अध्ययन उस विषय के विशेषज्ञों द्वारा अनुपयुक्त मानी गई घिसी-पिटी विधियों के उपयोग के रूप में समय का दुरुपयोग मात्र होते हैं। अनुसन्धानकर्ता की शक्ति का प्रयत्न और त्रुटि के कारण अपव्यय होता है। इसके अतिरिक्त अनुसन्धान का विधान दोषपूर्ण होने के परिणामस्वरूप वे गलत निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। वास्तव में बिना सबंधित साहित्य का अवलोकन किए कोई भी अनुसन्धान उच्चस्तर का नहीं हो सकता।

साहित्य के पुनरावलोकन से लाभ :

अनुसन्धान की समस्या से संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण आलोचनात्मक मूल्यांकन के रूप में होना चाहिए। इस प्रकार सर्वेक्षण से निम्नलिखित लाभ हैं:—

(१) सर्वेक्षण न करने से जो अनुसन्धान-कार्य पहले अन्य अनुसन्धानकर्ता द्वारा अच्छी प्रकार किया जा चुका है वह पुन. किया जा सकता है। सर्वेक्षण से यह अनावश्यक दोहराने की क्रिया नहीं होगी। अनेक बार एक ही प्रकार के कई अनुसन्धान-कार्य होते हैं जो समय, श्रम और धन के अपव्यय मात्र हैं। उदाहरण के लिए रोशा परीक्षा पर तीन हजार से अधिक अनुसन्धान कार्य हो चुके हैं। उनमें से अनेक एक ही प्रकार की अनुसन्धान-क्रिया की आवृत्तियां मात्र हैं। बर्नराईटर व्यक्तित्व सूची (पर्सनैलिटी इन्वेंटरी) द्वारा मापे गए व्यक्तित्व और अध्यापक प्रभावशालीपन (टीचर एफैक्टिवनेस) के मध्य सम्बन्धों पर बहुत से अध्ययन इसी प्रकार पूर्व अध्ययन की आवृत्ति मात्र हैं। जो अध्ययन हो चुका है उसे पुन: करने से अध्ययन का प्रभाव समाप्त हो जाता है। परन्तु पुराने अध्ययन की अशुद्धता के मापन के लिए अथवा उसकी त्रुटियों का पता लगाने के लिए अनुसन्धान की आवृत्ति की जा सकती है।

(२) ज्ञान के क्षेत्र के विस्तार के लिए आवश्यक है कि अनुसन्धानकर्ता को यह ज्ञात हो कि ज्ञान की वर्तमान सीमा कहां पर है। वर्तमान ज्ञान की जानकारी के पश्चात् ही ज्ञान आगे बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान ज्ञान की जानकारी साहित्य के गहन अध्ययन से हो सकती है। इस गहन अध्ययन से अनुसन्धानकर्ता को विद्वता प्राप्त होगी और जिस क्षेत्र में उसने अपना अनुसन्धान विषय चुना है उस क्षेत्र का वह विशेषज्ञ बन सकता है। यह विशेषता उच्च कोटि के अनुसन्धान के लिए आवश्यक है। पूर्व के अनुसन्धानों के दत्तों की तुलना अपने अनुसन्धान के दत्तों से कर के वह एक अच्छा विश्लेषण और एक अच्छी व्याख्या प्रस्तुत कर सकता है।

(३) पूर्व साहित्य के पुनरावलोकन से अनुसन्धानकर्ता को अपने अनुसधान के विधान की रचना करने के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है। यह अन्तर्दृष्टि

उपकरणों के चयन, अनुसन्धान-विधि के चयन, व्यक्तियों के चयन, समस्या के परिसीमन (डेलीमिटेशन) समस्या की सुस्पष्ट परिभाषा आदि के बारे में प्राप्त होती है। पूर्व के अनुसन्धानकर्ताओं ने जिस विधि का उपयोग किया है और जो परिणाम आए हैं उनकी परस्पर तुलना कर नई विधि के उपयोग की सूझ उत्पन्न हो सकती है। समस्या के परिसीमन में नई बातें सूझ सकती हैं। अज्ञानता के कारण नव-अनुसन्धानकर्ता किसी बड़ी समस्या को एक छोटी समस्या समझकर अध्ययन के लिए चुन लेते हैं। उदाहरण के लिए दो समस्याएं ले लीजिए। "माध्यमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक मूल्यांकन" और "उदयपुर नगर में सामाजिक परिवर्तन"। अनुभवी अनुसन्धानकर्ता जानते हैं कि पहली समस्या कितनी बड़ी समस्या है। केवल एक कोर्स का मूल्यांकन एक वर्ष के अनुसन्धानकार्य के लिए पर्याप्त है। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की बात तो जाने दीजिए। इसी प्रकार दूसरी समस्या में सामाजिक परिवर्तन के अनेक पहलू तथा कारक हैं। जैसे—जीवन-मूल्यों में परिवर्तन, सामाजिक समूहों की प्रक्रिया में परिवर्तन। इसी प्रकार कारक भी अनेक हैं जैसे विज्ञान और तकनीकी का प्रभाव, राजनीतिक प्रभाव, शिक्षा का प्रभाव, इत्यादि-इत्यादि। प्रत्येक प्रकार का प्रभाव स्वयं में एक पूर्ण अनुसन्धान-कार्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त पूर्व अनुसन्धानों में उपयोग किए गए विभिन्न उपकरणों तथा विधियों पर परिचर्या करने से एक नवीन परिष्कृत तथा अधिक वैज्ञानिक विधान की रचना की जाती है। नव अनुसन्धानकर्ता भूल से पूर्व अनुसन्धानों के परिणामों के अध्ययन मात्र को संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण समझ लेते हैं। परन्तु यह सर्वेक्षण तो नवीन परिष्कृत और अधिक वैज्ञानिक विधान की रचना के उद्देश्य से किया गया पूर्व अनुसन्धानों के सम्पूर्ण प्रक्रिया का आलोचनात्मक मूल्यांकन है।

(४) पूर्व अनुसंधानों के अध्ययन से अन्य संबंधित नवीन समस्याओं का पता लगता है। एक अच्छा अनुसन्धानकर्ता अपने अनुसन्धान के प्रतिवेदन के अन्त में नवीन समस्याओं को सुझाव के रूप में प्रस्तुत करता है। अपनी समस्या से संबंधित विषयों पर उच्चकोटि के लेखों में अनेक छिपी हुई समस्याओं की ओर संकेत मिलेगा। अनेक समस्याओं की चेतना अपनी समस्या की परिसीमाओं को समझने में तथा उसे नुकीली बनाने में सहायक होती है।

(५) सत्यापन के लिए कुछ अनुसन्धानों को नवीन दशाओं में करने की आवश्यकता रहती है। उदाहरणार्थ अनुसंधानकर्ता जानना चाहेगा कि जो अनुसन्धान अमेरिका में हुआ है क्या उसके परिणाम भारत की दशाओं में भी लागू होते हैं अथवा नहीं? इसी प्रकार यह जानने की आवश्यकता भी बनी रहती है कि अपने देश के ही एक भाग की जनसंख्या पर हुए अनुसन्धान के परिणाम क्या समान रूप से दूसरे भाग की जनसंख्या पर भी लागू होते हैं अथवा नहीं? अनुसन्धानों के नवीन दशाओं में प्रयोग किए जाने से उनसे प्राप्त सामान्यीकरणों की प्रयोज्यता (एप्लिकेबिलिटी) की सीमाओं

का पता लगता है। विशेषकर शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के मानकों का क्षेत्रानुसार या देशानुसार निर्धारण होता है। यह पता लगता है कि संस्कृति की भिन्नता के कारण मानकों में कौन-कौन सी भिन्नताएं हो जाती हैं ?

साहित्य के रूप :

दो प्रकार के साहित्य हैं जिनका सर्वेक्षण प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता को करना चाहिए। एक है प्राथमिक स्रोत दूसरा है द्वितीय स्रोत।

प्राथमिक स्रोत :

प्राथमिक स्रोत अनुसन्धानकर्ता द्वारा किए गए अनुसन्धान का प्रतिवेदन है। तथा मूल लेखक का लेख है। जिस व्यक्ति ने तथ्यों को घटते हुए प्रेक्षित किया है उसी के द्वारा तथ्यों का वर्णन प्राथमिक स्रोत कहलाता है। शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षा के ऐतिहासिक अनुसन्धानों के लिए अध्ययन का प्राथमिक स्रोत ताम्रपत्र पर लिखे लेख, शिलालेख, राजदरबार के लेख्य तथा अन्य प्रकार के लेख्य होते हैं। क्षेत्रीय अध्ययनों (फील्ड स्टडीज़) में अनुसंधानकर्ता का मूल प्रतिवेदन प्राथमिक स्रोत है।

द्वितीय स्रोत :

पाठ्य पुस्तकें, जिनमें भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हुए अनुसन्धानों के परिणामों का सारांश सुगठित रूप में प्रस्तुत किया हुआ रहता है, द्वितीय स्रोत है। अर्थात् ये वे सामग्रियां हैं जो उन व्यक्तियों ने लिखी हैं जिन्होंने तथ्यों का स्वयं प्रेक्षण नहीं किया था अथवा घटनाओं को देखा नहीं था। विश्वकोश तथा लेख आदि, जिनमें दूसरों के द्वारा प्रेक्षित तथ्यों का वर्णन है, द्वितीय स्रोत हैं।

एक ही पाठ्य सामग्री के अन्दर दोनों स्रोत हो सकते हैं। अनुसन्धान के प्रतिवेदन के जिस भाग में पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन है वह द्वितीय स्रोत है और जिस भाग में अनुसंधानकर्ता के प्रेक्षण का वर्णन है वह प्रथम स्रोत है, इसी प्रकार किसी पाठ्य-पुस्तक में लेखक किसी प्रसंग में अपने द्वारा किए गए अनुसन्धान का उल्लेख करता है तो वह भाग प्राथमिक स्रोत है और शेष भाग द्वितीय स्रोत है।

द्वितीय स्रोत का मुख्य लाभ यह है कि अनभिज्ञ नव-अनुसन्धानकर्ता को सरलता से सम्पूर्ण क्षेत्र के बारे में अवबोध हो जाता है। पाठ्यपुस्तक का लेखक भिन्न-भिन्न परस्पर विरोधी मतों को प्रस्तुत करता है जिससे सभी मतों का सिंहावलोकन सुविधा से हो जाता है। इस सिंहावलोकन के अध्ययन के अभाव में यदि अनुसन्धानकर्ता भिन्न-भिन्न मतों के मूल स्रोतों को पढ़ना प्रारम्भ करेगा तो जबतक सभी सम्बन्धित लिखित सामग्री का अध्ययन न कर लेगा तबतक भ्रमित हो जाने की सम्भावना बनी रहती है।

से संबंधित अनेक शीर्षक होते हैं। अनुसंधानकर्ता की रुचि केवल उसी लेख विशेष पर होती है जिसका संबंध उसके अनुसंधान से है। अनेक पत्रिकाओं में उसकी समस्या का उल्लेख तक नहीं हो सकता। साधारणतया पत्रिकाएं पृथक्-पृथक् कमरे में रहती हैं। इसी प्रकार इतर सामग्रियां भी पृथक् कमरे में रखी रहती हैं जिनको ढूंढना तुलनात्मक रूप में सरल है।

संबंधित पुस्तकों की खोज का सरल उपाय है कार्ड केटेलाग को देखना। पुस्तकालय में सब पुस्तकें इन कार्डों में लिखी रहती हैं। प्रत्येक कार्ड पर पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन का वर्ष, संस्करण की संख्या, कुल पृष्ठों की संख्या तथा भागों की संख्या लिखी रहती है। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय के अनुसार विषय वर्गीकरण का उल्लेख, वर्गीकरण की संख्या (चाहे डीवी दशमलव वर्गीकरण व्यवस्था हो या कोलन वर्गीकरण व्यवस्था) लिखे रहते हैं भारत में ये दोनों व्यवस्थाएं अधिक प्रचलित हैं। डीवी दशमलव वर्गीकरण-व्यवस्था में, उदाहरण स्वरूप, निम्नलिखित प्रकार के अंक होते हैं—

000 General References
100 Philosophy, psychology
200 Religion
300 Social Sciences

इन वर्गों के भी उपवर्ग होते हैं। उदाहरण के लिए "सामाजिक विज्ञान" और शिक्षा लीजिए। सामाजिक विज्ञान और शिक्षा के निम्नलिखित दशमलव अंक हैं—

300 Social Sciences
310 Statistics
320 Political Science
330 Economics
340 Law
350 Administration.
370 Education (General)
370-1 Theory of philosophy of Education.
370-9 History of Education.
371 Teaching
372 Elementary Education
373 Secondary Education
374 Adult Education
375 Curriculum

376 Education of women.

377 Religion, Ethical Education.

378 Higher Education.

379 Education and the state.

इसके विपरीत कोलन की वर्गीकरण की व्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों के नाम के द्योतक अक्षर होते हैं, जैसे:—

Main class

Z Generalia

1. *Universe of knowledge*

2. Library science

3. Book science

— ....

— ....

— ....

R Philosophy

S *Psychology*

Σ Social Sciences

T Education

यदि किसी क्षेत्र के उपवर्ग हैं तो वे निम्नलिखित प्रकार होते हैं.—

प्रथम प्रकार के केटेलॉग में पुस्तकों के शीर्षकों के अनुसार कार्डों को वर्णमाला के क्रम से रखा जाता है। अर्थात् 'ए' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शीर्षकों के नाम पहले होंगे, फिर "बी" से प्रारम्भ होने वाले शीर्षकों के नाम, तदुपरान्त "सी" से प्रारम्भ होने वाले। इसी क्रम से जेड तक। दूसरी ओर विषय कार्डों में पुस्तकों के कार्ड विषयों के क्रम से रखने होंगे। अर्थात्, अर्थशास्त्र की पुस्तकों के कार्ड वर्णमाला के क्रम से एक साथ रखे होंगे। मनोविज्ञान की सब पुस्तकों के कार्ड वर्णमाला के क्रम से एकसाथ, इत्यादि-इत्यादि। इसी प्रकार लेखक कार्ड केटेलॉग मे लेखकों के नामों को वर्णमाला के क्रम से कार्डों मे लिख कर कार्ड रखे होते हैं। प्रत्येक प्रकार के कार्ड मे ऊपर बताई हुई सभी बातें लिखी रहती हैं, जैसे लेखक का नाम, शीर्षक, संस्करण, आदि का विवरण होता है। अन्तर केवल इतना है कि लेखक कार्ड में सबसे ऊपर लेखक का नाम, बाद में शीर्षक, आदि लिखे रहते हैं। विषय कार्ड में पहले विषय का नाम, बाद मे लेखक का नाम आदि। उदाहरण के लिए लेखक कार्ड का एक नमूना नीचे दिया गया है।

131	Crow	, L. D and Crow. A.
0885	life	Mental Hygiene in School and home N Y. Mc. Grow Hill Book Co 1942
6114		p p 474

पुस्तकालय मे अनुसन्धान-समस्या से संबंधित प्रथम और द्वितीय स्रोत का पता लगाना —

कम समय में व्यवस्थित रूप से सम्पूर्ण सम्बन्धित साहित्य का पता लगाने के लिए निम्नलिखित क्रम से काम करना लाभकारी हो सकता है—

(१) सर्व प्रथम अनुसन्धानकर्ता को अपनी समस्या के सभी पहलुओं की स्पष्ट

जानकारी होनी चाहिए। स्पष्ट जानकारी के प्रभाव में यदि वह साहित्य पढ़ना शुरू करेगा तो बहुत से असम्बन्धित साहित्य के अध्ययन में समय नष्ट कर सकता है। इसलिए सबसे पहले द्वितीय स्रोत अर्थात् पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन कर समस्या के सभी पहलुओं की सूची बना लेनी चाहिए। मान लीजिए कि अनुसन्धान का विषय है "पूर्व विद्यालयीय बालकों की घर के प्रति अभिवृत्तियों के मूल्यांकन-पद्धति के रूप में गुड़ियों का खेल"। इस समस्या के विभिन्न पहलू हैं: अभिवृत्तियाँ, पूर्व विद्यालयीय बालक, घर, गुड़ियों की खेल-पद्धति, मूल्यांकन। इन पहलुओं का अध्ययन पाठ्यपुस्तकों में करने पर अनुसन्धानकर्ता को जैसे-जैसे समस्या स्पष्ट होती जायगी वैसे-वैसे नवीन पहलू पता लगते जायेंगे। उदाहरण के लिए नवीन पहलू हैं: प्रक्षेपण-पद्धति की प्रकृति (क्योंकि गुड़ियों का खेल एक प्रक्षेपण-पद्धति है), पूर्व विद्यालयीय बालकों के व्यक्तित्व-मापन की प्रक्षेपण-पद्धतियाँ, पूर्व विद्यालयीय बालकों की अभिवृत्तियों के मापन की वस्तुनिष्ठ विधियाँ, वैज्ञानिक उपकरण के निर्माण की प्रक्रिया, इत्यादि। इन सब पहलुओं की जानकारी के परिणामस्वरूप उक्त समस्या की अधिक अच्छी पहचान अनुसन्धानकर्ता को होगी।

(२) समस्या के सभी पहलुओं की एक पूर्ण सूची तैयार करने के पश्चात् यह पता लगाना आवश्यक है कि इन पहलुओं में से प्रत्येक पर कौन-कौन से अनुसन्धान कार्य हुए हैं तथा कहाँ छपे हैं और अन्य संबंधित साहित्य क्या-क्या प्रकाशित हुआ। इस बात का पता लगाने के लिए कुछ उच्चकोटि की सन्दर्भ पुस्तकों का वर्णन नीचे दिया गया है:—

(क) एजूकेशन इन्डेक्स :

इस पुस्तक में शिक्षा पर प्रकाशित सभी अनुसन्धानों, लेखों, पुस्तकों आदि, की विस्तृत सूची दी हुई है। प्रत्येक प्रकाशन का पूरा पता दिया हुआ है। इसलिए सरलता से समस्या से संबंधित अनुसन्धानों की उनके पतों सहित सूची तैयार की जा सकती है। जुलाई और अगस्त मास को छोड़ कर एजूकेशन इन्डेक्स एक मासिक प्रकाशन है। इसका वर्ष जुलाई से जून तक का है। वर्तमान वर्ष के सब अंकों को देखने के पश्चात् पिछले वर्षों के वार्षिक अंकों और बृहद् अंकों को देख लेना चाहिए। वार्षिक अंक में वर्ष भर के मासिक अंक संग्रहीत होते हैं। बृहद् अंकों में पिछले वर्षों के सब अंक बद्ध होते हैं।

(ख) साइकॉलॉजिकल एबस्ट्रैक्ट :

एजूकेशन इन्डेक्स में लेखों आदि के शीर्षकों को देखकर उनकी अन्तर्वस्तु का पता लगाना कठिन है। अतः इस कमी की पूर्ति साइकॉलॉजिकल एबस्ट्रैक्ट के द्वारा कुछ सीमा तक हो जाती है। परन्तु साइकॉलॉजिकल एबस्ट्रैक्ट में विषय मनोविज्ञान तक ही सीमित है। ५०० से अधिक पत्रिकाओं के लेखों के सन्दर्भ उसमें एकत्रित रहते हैं। प्रत्येक लेख का सारांश दिया रहता है। यह बारह वर्गों में विभक्त है।

शिक्षा से संबंधित वर्ग हैं : विकासात्मक मनोविज्ञान और शैक्षिक मनोविज्ञान। शिक्षा की पत्रिकाओं, जैसे—एजूकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन, जर्नल आफ एजुकेशन, के सारांश भी रहते हैं। इन सारांशों की अन्तर्वस्तु देख कर अनुसन्धानकर्ता यह पता लगा सकता है कि कौन सा लेख उपयोगी है।

(ग) रिव्यु आफ एजूकेशनल रिसर्च :

यह अमेरिकन एजूकेशनल रिसर्च एसोसिएशन के द्वारा प्रकाशित होता है। इसमें शिक्षा से संबंधित २३ प्रमुख विषयों पर हुए अनुसधानों का पुनरावलोकन सारांश रूप में प्रस्तुत रहता है। अनुसन्धानकर्ता ने जो सूची एजूकेशन इन्डेक्स को देखकर बनाई थी उसमें से कुछ अनुसन्धान लेखों के सारांश जो साइकॉलॉजिकल एब्स्ट्रेक्ट में नहीं मिल पाए होंगे वे यहाँ मिल जाएंगे।

(घ) एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशनल रिसर्च :

इसका प्रकाशन भी अमेरिकन रिसर्च एसोसिएशन द्वारा होता है। इसके अन्तर्गत शिक्षा से सम्बन्धित पहलुओं पर विशेषज्ञों द्वारा लेख लिखे होते हैं। यह लेख इनमें से प्रत्येक पहलू पर हुए सब अनुसन्धानों और चिन्तनों के नीचोड़ के रूप में होते हैं जिससे लेख पढ़ने मात्र से उस पहलू की आधुनिकतम प्रस्थिति का पता लग जाए। इस ग्रंथ में अनुसन्धानकर्ता को उन लेखों का सन्दर्भ मिल सकता है जिसका उसे अन्यत्र पता नहीं लग पाया है।

(ङ) एन्साइक्लोपीडिया ऑफ मॉडर्न एजूकेशन :

ऊपर के एन्साइक्लोपीडिया के समान ही उपयोगी यह ग्रन्थ है। दुर्भाग्य से भारत में अभी तक शिक्षा के क्षेत्र में कोई एन्साइक्लोपीडिया नहीं बन पाया है।

(च) ब्रिटिश एजूकेशन इन्डेक्स

ब्रिटेन में हुए प्रकाशित शैक्षिक लेखों की यह सन्दर्भ पुस्तिका है। इसके अतिरिक्त नेशनल फाउन्डेशन ऑफ एजूकेशन रिसर्च इन इंग्लैण्ड एण्ड वेल्स ने ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों के अधिस्नातक स्तर तथा वाचस्पति स्तर (पी–एच० डी०) के अनुसन्धान, जो ब्रिटेन में १९१८ से १९५४ तक हुए हैं, की यह सूची है।

(छ) डिजर्टेशन एब्स्ट्रेक्ट

यूनिवर्सिटी माईक्रोफिल्म्स द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में १९५५ से अब तक के अनुसन्धान विषयों का सारांश मासिक संस्करण के रूप में निकलता रहता है। इनमें उन अनुसन्धान प्रबन्धों के सारांश हैं जो अमेरिका के अनेक संस्थाओं के विद्यार्थियों ने पी–एच० डी० की डिग्री के लिए लिखे हैं। अनुसन्धान प्रबन्धों के ये सारांश यूनिवर्सिटी माईक्रोफिल्म्स से खरीदे भी जा सकते हैं।

(ज) मास्टर्स थिसेज इन एजूकेशन :

जैसा नाम से स्पष्ट है शिक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत १९५२ से अब तक अधि-स्नातक डिग्री के लिए लिखे हुए अनुसन्धान प्रबन्धों की यह सूची है।

(भ) **बिब्लियोग्राफी ऑफ डॉक्टरेट थीसेज इन साइन्स एण्ड आर्ट्स :**

१९४६ से १९५० तक भारत के विश्वविद्यालयों में छात्रों द्वारा लिखी गई पी-एच० डी० अनुसन्धान प्रबन्धों की यह सूची है। इसका प्रकाशन इन्टर यूनिवर्सिटी बोर्ड ने किया है।

(ब) **बिब्लियोग्राफी इन्डेक्स :**

यह सूची न्यूयॉर्क की विल्सन कम्पनी द्वारा प्रकाशित है। इसमें डेढ़ हजार पत्रिकाओं में प्रकाशित बिब्लियोग्राफियाँ सग्रहीत हैं। अतः बिब्लियोग्राफी तैयार करने के लिए यह उपयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थ है।

(ट) **रीडर्स गाइड टू पीरियॉडिकल लिट्रेचर :**

न्यूयॉर्क की विल्सन कम्पनी द्वारा प्रकाशित यह वह सूची है जिसके द्वारा सामान्य व्यक्तियों के शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के बारे में मत स्रोतों का वर्णन है। प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता को पूर्व अनुसन्धानों के अतिरिक्त सामान्य व्यक्तियों के महत्व-पूर्ण विचारों का अध्ययन भी करना चाहिए। इस ग्रन्थ में १३० जन-पत्रिकाओं में लिखे गए लेखों का उल्लेख है।

टिप्पणी लिखने की विधि :

समस्या से साहित्य का पता करने के पश्चात् अनुसन्धानकर्ता का मुख्य कार्य संबंधित महत्वपूर्ण साहित्य पर टिप्पणी लिखना है। टिप्पणी लिखने के कौशल पर साहित्य का उचित मूल्यांकन निर्भर करता है। पहली बात यह है कि अनुसन्धान-लेख की सभी महत्वपूर्ण बातें टिप्पणी में संक्षेप में लिख लेनी चाहिएं। ये महत्वपूर्ण बातें हैं। अनुसन्धान के उद्देश्य अथवा प्राक्कल्पनाएं जिनका परीक्षण किया गया; विधि का वर्णन (इसके अन्तर्गत व्यक्तियों, उपकरणों व प्रविधियों का वर्णन होना चाहिए); परिणामों का विश्लेषण और निष्कर्ष। छात्र को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि न तो कोई महत्वपूर्ण बात छूटनी चाहिए और न टिप्पणी लम्बी हो। टिप्पणी छोटी करने के लिए पूर्ण वाक्यों के स्थान पर मुख्य वाक्यांश अथवा छोटे-छोटे वाक्य होने चाहिएं। अनुसन्धान के बारे में स्वयं का मूल्यांकन भी टिप्पणी में लिख देना चाहिए।

प्रत्येक अनुसन्धान-लेख के अन्त में साधारणतया सारांश अवश्य दिया रहता है। समय बचाने के लिए पहले सारांश पढ़ना चाहिए। यदि लेख महत्वपूर्ण मालूम पड़े तभी मूल लेख पढ़ना चाहिए।

प्रत्येक अनुसन्धान-लेख की पृथक्-पृथक् टिप्पणियां लिखी होनी चाहिएं। सामान्य कागज के स्थान पर एक बड़े साईज का कार्ड जो ५×८ इंच का हो, उपयोग करना चाहिए। कार्ड के ऊपर लेखक का नाम, अनुसन्धान का शीर्षक, पत्रिका का नाम, संख्या, संस्करण, वर्ष, मास एवं पृष्ठ संख्या लिख देनी चाहिए। उसके पश्चात् टिप्पणी लिखनी चाहिए। प्रत्येक लेख की टिप्पणी को एक पृथक् कार्ड में लिखने से

यह लाभ होगा कि अन्त में जब संबंधित साहित्य के सर्वेक्षण को अनुसन्धान प्रतिवेदन में अध्याय के रूप में लिखा जाएगा तो इन कार्डों को क्रमबद्ध रखने में सुविधा होगी।

बिब्लियोग्राफी भी छोटे-छोटे कार्डों में तैयार करनी चाहिए। अर्थात् प्रत्येक लेख, पुस्तक आदि का विवरण एक पृथक् कार्ड में लिखना चाहिए। इससे उन्हें वर्णमाला-क्रम के अनुसार रखने में सुविधा होगी अन्यथा समय नष्ट होगा।

समय और शक्ति बचाने का एक और तरीका है कि एक सांकेतिक व्यवस्था अपनायी जाए। उदाहरण के लिए यदि कोई अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है तो हम "व० म०" संकेत कार्ड पर लिख सकते हैं। इसके अतिरिक्त समस्या के भिन्न-भिन्न पहलुओं के संकेत बना लेने चाहिए जैसे अभिवृत्ति का संकेत "अ", प्रक्षेपण का संकेत 'प्र' पूर्व विद्यालयीय बालक का संकेत "पू० वि० बा०," गुड्डियों के खेल का चिह्न "गु० खे०" आदि-आदि। ये संकेत कार्ड के ऊपर लिखने से एक पहलू पर हुए अनुसन्धानों को एक समूह में रखा जा सकता है और जब चाहें तब सन्दर्भ के रूप में देखा जा सकता है।

टिप्पणी लिखते समय अथवा साहित्य का अध्ययन करते समय यदि कोई नया विचार मस्तिष्क में आए तो उसे तुरन्त एक पुस्तिका में लिख लेना चाहिए। स्मृति पर विश्वास कर उसे छोड़ नहीं देना चाहिए क्योंकि वे विचार आसानी से फिर याद नहीं आते। सीखने के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक क्लार्क हल ने अपने ग्रेजुएट की शिक्षा काल से ही मौलिक विचारों को लिख लेने की आदत बना ली थी। पढ़ते समय लेखक से अपनी सहमति और असहमति सम्बन्धी अपने दोनों ही तक वे लिख लेते थे। जीवन के अन्तकाल के समय तक ऐसी २७ पुस्तिकाएं वे लिख चुके थे। इन टिप्पणियों के पढ़ने से उन्हें अपने पुराने मौलिक विचारों का पुनर्स्मरण करने में सुविधा भी मिली ही साथ ही अपने चिन्तन को व्यवस्थित करने में अधिक सहायता मिली। इससे उन्हें आश्चर्य हुआ।[1]

सारांश

वैज्ञानिक अनुसन्धान का प्रारम्भ साहित्य के पुनरावलोकन से होता है। उपकरण का निर्माण तथा दत्त सकलन आदि बाद के सोपान हैं। साहित्य का पुनरावलोकन एक अनिवार्य तथा कठोर परिश्रम का कार्य है। यह अनुसन्धान की समस्या से सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षणात्मक एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन के रूप में होना

---

1 Good, C. V. Introduction to Educational Research, Appleton Century Crofts, Inc., New York, 1959, p. 98.

चाहिए। इस प्रकार के सर्वेक्षण से अनुसन्धान की अनावश्यक पुनरावृत्ति नहीं होगी और अनुसन्धानकर्ता को विद्वत्ता प्राप्त होगी। उसे अनुसन्धान के विषय-क्षेत्र के वर्तमान ज्ञान की सीमा रेखा की जानकारी होगी। पुराने अनुसन्धानों के विधानों के अध्ययन से उसे अपने अनुसन्धान के विधान की मौलिक संरचना करने में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है। पूर्व अनुसन्धानकर्ताओं के द्वारा सुझाई हुई समस्याओं की जानकारी होती है और समस्या विशेष की परिसीमाओं को समझने में तथा उसे नुकीली बनाने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त भूतकाल की दशाओं में हुए अनुसन्धानों को नवीन दिशाओं में प्रयोग करके देखने की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है।

साहित्य के दो प्रकार के स्रोत हैं : प्राथमिक स्रोत और द्वितीय स्रोत। प्राथमिक स्रोत अनुसन्धानकर्ता का मौलिक लेख है। ताम्रपत्र पर लिखे लेख, शिलालेख और लेख्य भी प्राथमिक स्रोत हैं। द्वितीय स्रोत पाठ्यपुस्तकें, विश्वकोश तथा अन्य लेख हैं जो उन स्रोतों के द्वारा लिखे गए हैं। जिन्होंने स्वयं तथ्यों का प्रेक्षण और स्वयं अनुसन्धान नहीं किया था। नव अनुसन्धानकर्ता को पहले द्वितीय स्रोत का अध्ययन करना चाहिए ताकि सम्पूर्ण क्षेत्र के बारे में जानकारी हो जाए और विभिन्न मतों का सिंहावलोकन हो सके, परन्तु द्वितीय स्रोत के लेखकों की विशिष्ट व्याख्याओं से प्रभावित होने की सम्भावना बनी रहती है। अतः उसे प्राथमिक स्रोत का अध्ययन एवं मूल्यांकन स्वयं करना चाहिए।

समय बचाने के लिए पुस्तकालय-संगठन की जानकारी आवश्यक है। पठन सामग्रियाँ, पुस्तकालय में पुस्तकों, पत्रिकाओं और इतर सामग्रियों के रूप में विभाजित रहती हैं। सम्बन्धित साहित्य को सरलतापूर्वक खोजने के लिए विषय कैटेलॉग, लेखक कैटेलॉग और शीर्षक कैटेलॉग तथा डी० वी० दशमलव वर्गीकरण व्यवस्था की जानकारी आवश्यक है। कम समय में व्यवस्थित रूप से सम्पूर्ण सम्बन्धित साहित्य का पता लगाने के लिए अनुसन्धानकर्ता को सर्वप्रथम द्वितीय स्रोत का अध्ययन कर अपनी समस्या के सभी पहलुओं की सूची बना लेनी चाहिए फिर सन्दर्भ पुस्तकों का अध्ययन कर उन सभी पहलुओं पर हुए अनुसन्धानों की टिप्पणियाँ तैयार कर लेनी चाहिए। प्रत्येक अनुसन्धान या कार्य की टिप्पणी कार्ड में व्यवस्थित रूप से लिखनी चाहिए। लिखते समय अपने मौलिक विचार और आलोचनात्मक मत भी लिख देना चाहिए।

अभ्यास-कार्य

१. अनुसन्धानकर्ता के लिए साहित्य पुनरावलोकन का क्या महत्व है? सोदाहरण समझाइए।

२. साहित्य के कौन-कौन से रूप हैं? अनुसन्धानकर्ता की दृष्टि से प्रत्येक

रूप के अध्ययन का क्या सापेक्षिक महत्व है ? स्पष्ट कीजिए ।

३. पुस्तकालय-संगठन का वर्णन कीजिए ।

४. अनुसन्धान से सम्बन्धित साहित्य की जानकारी कम से कम समय में प्राप्त करने के लिए आप क्या करेंगे ?

५. अपने अनुसन्धान से सम्बन्धित साहित्य पर टिप्पणियाँ आप किस प्रकार लिखेंगे ?

४

ऐतिहासिक विधि

इतिहास का अर्थ एवं महत्व :

मानव का जब से पृथ्वी पर जन्म हुआ है तब से लेकर आजतक उसकी अनेको उपलब्धियाँ रही हैं। इतिहास मानव की इन समस्त विगत उपलब्धियों का सम्पूर्ण एवं सही लेख है।[1] इतिहास हमें यह समझने में मदद करता है कि अतीत की विभिन्न घटनाओं ने मानव के सामाजिक एवं आर्थिक विकास को किस प्रकार ढाला है। केवल कुछ तथ्यों एवं घटनाओं के संग्रह को हम इतिहास नहीं कह सकते। इतिहास का अनिवार्य प्रयोजन है, विगत की विभिन्न घटनाओं के आधार पर सम्पूर्ण सत्य की खोज, अतीत के सम्पूर्ण मानव जीवन को जानने का प्रयास। केवल कुछ राजनीतिक परिवर्तनों अथवा युद्धों के वर्णनों का ब्यौरा इतिहास नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मानव के अतीत में इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेकों महत्वपूर्ण पक्ष छिपे हैं। वोल्टेयर[2] महोदय ने बड़े सुन्दर शब्दों में इस बात को अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं—

1. J. W. Best. Research in Education, Newyork-Prentice Hall, 1939. p. 8.
2. F. L. Whitney. The Elements of Research. Bombay, Asia Publishing House, 1960. p. 195.

"मैं युद्धों का इतिहास नहीं लिखना चाहता। समाज का इतिहास लिखना चाहता हूँ। लोग अपने परिवारों में कैसे रहते थे तथा कौनसी कलाएं उन्होंने विकसित की इसका मैं पता लगाना चाहता हूँ। मेरा प्रयोजन मानव-मस्तिष्क का इतिहास लिखना है न कि तुच्छ तथ्यों का वर्णन करना, न ही मैं महान् राजाओं के इतिहास में रुचि रखता हूँ। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि मानव पाशविक स्थिति से आज की *सभ्यता तक कौनसी मंजिलें पार करता हुआ पहुँचा है?"*

उक्त कथन में इतिहास के वास्तविक उद्देश्य स्पष्ट प्रतिबिम्बित हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के अध्ययन से मानव को अपने पूर्वजों के अनुभवों का लाभ मिल सकता है। आज की समस्याओं का हल ढूंढने में उसे सहायता मिल सकती है। वह भविष्य की योजनाएं अधिक बुद्धिमत्तापूर्वक बना सकता है। अनेक बार यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति ने इतिहास से लाभ नहीं उठाया। चाहे राजनीतिज्ञ हो या अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री हो या शिक्षाविद् वर्तमान समस्याओं को अधिक अच्छी तरह से समझने के लिए इतिहास का ज्ञान प्रत्येक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अनेक बार आज की समस्या का उद्गम कैसे हुआ यह यदि हमें ज्ञात हो जाय तो हम समस्या को अधिक अच्छे ढंग से हल कर सकते हैं। कभी-कभी तो समस्या को यदि उसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाय तो उसका स्वरूप ही भिन्न हो जाता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान :

जब हम वैज्ञानिक विधि से ऐतिहासिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं तो उसे ऐतिहासिक अनुसन्धान कहा जाता है। शिक्षा में इसका बड़ा महत्व है। आज की बहुत सी शैक्षिक परिपाटियों का उद्गम कैसे हुआ? किसी उच्चकोटि की शैक्षणिक संस्था ने विकास कैसे किया? विगत में अपनाई गई बहुत सी शैक्षिक नीतियों के क्या परिणाम रहे? ये ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनका उत्तर ऐतिहासिक अनुसन्धान से ही मिल सकता है।

कुछ व्यक्तियों के मन में कदाचित् यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि क्या ऐतिहासिक अनुसन्धान भी वैज्ञानिक हो सकता है? कई उच्चकोटि के ऐतिहासिक अनुसन्धानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वैज्ञानिक विधि के मूल तत्वों का समावेश ऐतिहासिक अनुसन्धान में किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। टरनर, रेनान, व्होलटेयर एडम्स आदि के कार्यों में वैज्ञानिक विधि का उपयोग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

टरनर महोदय ने अपनी रचना 'The Frontier in American History" में वैज्ञानिक विधि को अपनाया है। उन्होंने किसी भी निष्कर्ष को सम्भावित निष्कर्ष ही माना है न कि अन्तिम निष्कर्ष। साथ ही उन्होंने एक ऐतिहासिक समस्या के अनेकों संभावित हलों को अभिसिद्धान्तों के रूप में माना तथा इनकी सम्पूर्ण उपलब्ध दत्त सामग्री के आधार पर जाँच की।

इतिहास की गणना चाहे भौतिकी अथवा रसायनशास्त्र की भाँति विज्ञान में न की जाए किन्तु ऐतिहासिक समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अवश्य अपनाया जा सकता है। इतिहासज्ञ भी वैध एवं विश्वसनीय निरीक्षणों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं। वैज्ञानिक विधि के तीन प्रमुख पक्ष हैं — (१) निरीक्षक (२) अभिसिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं (३) प्रयोग। ऐतिहासिक अनुसन्धान में भी इन तीनों तत्वों का उपयोग होता है। एक इतिहासज्ञ अपने कुछ निरीक्षणों के आधार पर सम्भावित अभिसिद्धान्त प्रतिपादित करता है और इनको परखने के लिए अनेकों ऐतिहासिक स्रोतों को अध्ययन करता है और यही है प्रयोग का एक रूप। आवश्यक नहीं कि प्रयोगशाला में नियंत्रित परिस्थितियों में किए गए कार्य को ही प्रयोग कहा जाए। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि ऐतिहासिक अनुसन्धान में भी वैज्ञानिक विधि को अपनाना सम्भव है। या यों कहें एक उच्चकोटि के ऐतिहासिक अनुसन्धान में वैज्ञानिक विधि पूर्णतया अपनाई जाती है।

ऐतिहासिक उपन्यासकारों के लिए वैज्ञानिक विधि अपनाना आवश्यक नहीं। वे जो लिखते हैं उसमें बहुत सी बातें उनके स्वयं के दृष्टिकोणों एवं कल्पनाओं पर आधारित होती हैं और यदि साहित्यकार कल्पना न करे तो उसकी रचना की गणना साहित्य में कैसे हो। उपन्यासकार का तो प्रयोजन साहित्य का सृजन करना है न कि इतिहास लिखना। किन्तु एक अनुसन्धाता कल्पना एवं पूर्वाग्रहों के आधार पर ऐतिहासिक तथ्य नहीं लिख सकता। उसे तो विश्वसनीय एवं वैध स्रोतों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर ही निष्कर्ष आधारित करने होंगे।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के कुछ उदाहरण :

उपरोक्त चर्चा के दौरान हमनें ऐतिहासिक अनुसन्धान के अर्थ एवं महत्व के सम्बन्ध में चर्चा की। अब ऐतिहासिक अनुसन्धान के अन्तर्गत हम किस प्रकार की समस्याएं ले सकते हैं यह और स्पष्ट करने हेतु यहाँ उदाहरण के लिए कुछ समस्याएं देना अनुपयुक्त नहीं होगा। इनमें से अधिकांश समस्याओं पर भारतीय विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा कार्य किया गया है। *सुखिया एवं मेहरोत्रा*[1] ने अपनी पुस्तक में अनुसन्धान-समस्याओं का संकलन प्रस्तुत किया है जिसमें से ऐतिहासिक अनुसन्धान के अन्तर्गत निम्नांकित समस्याएं आती हैं—

१. मद्रास राज्य में सन् १८०८ से माध्यमिक शिक्षा का विकास।
२. मध्यकालीन कर्नाटक में शिक्षा।
३. भारत में बुनियादी शिक्षा का विकास।
४. भारत में मुगल शिक्षा-पद्धति।

---

1. S. p. Sukhia & P. V. Mehrotra, Elements of Educational Research New Delhi, Allied Publishers, 1963. p. 300-303.

५. १८३५ से १९२१ तक अंग्रेज़ी शिक्षा-विचारधाराओं का भारतीय शिक्षा-पद्धति पर प्रभाव ।

६. ब्रिटिश भारत में शिक्षा का विकास (१९४८—१९५५) ।

७. १८०३ से १९५६ तक उड़ीसा राज्य में स्त्री-शिक्षा ।

विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय में किए गए कुछ ऐतिहासिक अनुसन्धानों के विषय निम्नलिखित हैं—

१. जोधपुर राज्य में शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन ।

२. १८५४ से १९४७ के बीच इंगलैण्ड की शिक्षा-नीति का भारतीय शिक्षा पर प्रभाव ।

३. विद्याभवन के गत तीन दशक ।

विदेशों में किए गए ऐतिहासिक अनुसन्धानों के विषय निम्नलिखित हैं[1]—

१. टेक्सास सीमा विवाद का इतिहास ।

२. शिक्षा की बीस शताब्दियाँ ।

३. संयुक्त राज्य अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा की स्थापना । संयुक्त राज्य अमेरिका में उपनिवेश स्थापना से गृह-युद्ध तक का शिक्षा-इतिहास ।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के स्रोतः—

ऐतिहासिक अनुसन्धान की दत्त सामग्री प्राप्त करने के लिए जो ऐतिहासिक स्रोत काम में लिए जाते हैं उन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) ऐसी लिखित सामग्री जिससे किसी समय की घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी मिल सके । (२) ऐतिहासिक अवशेष, अर्थात् अतीत की भौतिक वस्तुएं जो उस समय के जन-जीवन पर प्रकाश डालती हो । उपरोक्त दोनों प्रकार के स्रोतों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. लिखित सामग्री-यात्रियों के वर्णन, राजपत्र, राज्यादेश, शिलालेख, चरित्र, लोककथाएं लोकगीत, रीति-रिवाज, व्यक्तिगत डायरियाँ एवं प्रकाशित पुस्तकें ।

२. ऐतिहासिक अवशेष—पुरानी इमारतों के खण्डहर, इमारतों के काम में ली गई ईंटें, बर्तन, डाकटिकट, मुद्राएं, मानव एवं पशुओं के शारीरिक अवशेष, प्रतिमाएं, चित्र आदि ।

उपर्युक्त स्रोत सामान्य ऐतिहासिक अनुसन्धान में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। विशेष कर शिक्षा के क्षेत्र में जब ऐतिहासिक अनुसन्धान किया जाता है तो निम्नलिखित स्रोत काम में लिए जा सकते हैं ।[2]

1. Whitney, opcit p. 208-209.
2. Good and Scates opcit p. 181.

(ब) लिखित सामग्री:—

१. संविधान, प्रचलित कानून (विशेषकर शिक्षा से संबंधित) प्रशासनिक अभिलेख एवं आदेश।

२. शैक्षिक संगठनों के विचार-विमर्शों का विवरण जैसे विश्वविद्यालयों की विभिन्न समितियों की बैठकों का विवरण, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की विभिन्न समितियों की बैठकों का विवरण, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड, अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड आदि की बैठकों का विवरण।

३. विभिन्न शिक्षा आयोगों के प्रतिवेदन जैसे (१) मैकाले मिनिट, (२) वुड्स डिसपेच, (३) हंटर आयोग, (४) सेडलर आयोग। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृष्णन आयोग), माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर आयोग), शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) आदि आयोगों के प्रतिवेदन।

४. शिक्षा निरीक्षकों के निरीक्षण प्रतिवेदन।

५. शैक्षिक सर्वेक्षण।

६. समाचार-पत्र—समाचार-पत्रों में दिए गए शैक्षिक विज्ञापन इनसे शिक्षकों की वेतन शृंखलाएं, शैक्षिक योग्यताएं एवं अन्य सुविधाओं का पता चल सकता है। समाचार-पत्रों के सम्पादकीय, समाचार-पत्रों में प्रकाशित लेख एवं विशेष शैक्षिक समाचार।

७. पाठ्यक्रम, शैक्षिक संस्थाओं की विवरणिकाएं।

८. पाठ्यपुस्तकें, व्यक्तिगत सामग्री, आत्मचरित्र अथवा चरित्र, स्मृतियां, व्यक्तिगत डायरियां एवं पत्र।

९. साहित्यिक सामग्री—ऐसे उपन्यास जोकि उस समय की शिक्षा पर प्रकाश डालते हों।

१०. छात्रों द्वारा लिखित विभिन्न प्रकार की सामग्री।

(स) अवशेष—

१. शाला-भवनों के अवशेष।

२. विभिन्न शैक्षिक प्रवृत्तियों आदि के चित्र।

३. शैक्षिक उपाधियों के नमूने।

उपरोक्त विभिन्न ऐतिहासिक स्रोत दो प्रकार के हो सकते हैं—प्राथमिक अथवा गौण।

प्राथमिक स्रोत—प्राथमिक स्रोत वे हैं जोकि एक विशिष्ट ऐतिहासिक काल की घटनाओं के प्रत्यक्ष साक्षी होते हैं। इतिहास में इनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इन स्रोतों से ही हमें अत्यन्त विश्वसनीय ऐतिहासिक तथ्य ज्ञात हो सकते

है। इन स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं अत्यन्त वस्तुनिष्ठ होती हैं क्योंकि इन स्रोतों पर व्यक्ति के दुराग्रहों का या अन्य कारकों का प्रभाव पड़ने की सम्भावना नहीं रहती। अतः इन स्रोतों के आधार पर लिखा इतिहास अधिक सही माना जाता है। प्राथमिक स्रोतों के अन्तर्गत जो स्रोत आते हैं, वे हैं ऐतिहासिक अवशेष, लिखित सामग्री जैसे प्रतिवेदन, पाठ्यक्रम, सविंधान, पत्र, डायरियां, आत्मचरित्र उपाधियों के नमूने, शैक्षिक गतिविधियों के छायाचित्र प्रशासनिक अभिलेख एवं आदेश, राजपत्र, टिकट, मुद्राएं, न्यायालयों के निर्णय, लाइसेन्स, चित्र आदि।

गौण स्रोत .

यदि किसी ऐतिहासिक घटना के प्रत्यक्ष प्रमाण के स्थान पर एक व्यक्ति द्वारा उस घटना का किया गया वर्णन हमे प्राप्त हो तो यह गौण स्रोत कहलाएगा। गौण स्रोत से प्राप्त सूचनाएं इतनी विश्वसनीय नहीं होतीं क्योंकि वे किसी व्यक्ति द्वारा लिखित सूचनाएं होती हैं और यह स्वाभाविक है कि प्रत्यक्ष घटना और हमारे बीच जितनी अधिक कड़िया होंगी वास्तविक तथ्यों में परिवर्तन की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी। हो सकता है कि घटना का वर्णन करने वाला व्यक्ति कुछ तथ्य न देख पाए या उसका निरीक्षण सूक्ष्म न हो अथवा उस व्यक्ति के अपने दुराग्रह हों। इनके अतिरिक्त भी अन्य कारणों के फलस्वरूप किसी व्यक्ति द्वारा एक घटना के किए गए वर्णन एवं प्रत्यक्ष घटना में बहुत अंतर हो सकता है।

अतः गौण स्रोतों का उपयोग उन्हीं परिस्थितियों में करना चाहिए जब हमें प्राथमिक स्रोत उपलब्ध ही न हो सकें। और इन स्रोतों का उपयोग करने के पूर्व हमे स्रोत की पूर्ण जाँच कर लेनी चाहिए। यह किन आधारों पर की जाय इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

गौण का स्रोतों के अन्तर्गत यात्रियों के वर्णन, इतिहास की पुस्तकें, समाचार-पत्रों मे प्रकाशित समाचार अथवा सम्पादकीय एवं निरीक्षण-प्रतिवेदन आदि आते हैं।

यहाँ यह कह देना उपयुक्त होगा कि प्राथमिक एवं गौण स्रोतों की कोई निश्चित सूची नहीं बनाई जा सकती क्योंकि किस प्रयोजन के लिए एक स्रोत काम मे लिया जा रहा है इस पर निर्भर करेगा कि वह स्रोत प्राथमिक है या गौण। उदाहरण के लिए यदि निरीक्षण-प्रतिवेदनों से शाला के कार्य-क्रम का पता लगाना चाहें तो यह निरीक्षण-प्रतिवेदन गौण स्रोत होगा किन्तु यदि हम यह देखना चाहें कि निरीक्षण-प्रतिवेदन के अन्तर्गत कौन-कौन से शैक्षिक बिन्दुओं का समावेश किया जाता था तो निरीक्षण-प्रतिवेदन प्राथमिक स्रोत हो जाएगे।

आन्तरिक एवं बाह्य समालोचन—

ऐतिहासिक अनुसन्धान का मूल आधार है ऐतिहासिक स्रोत। जितने विश्वसनीय एवं वैध स्रोत होंगे उतने ही विश्वसनीय हमारे अनुसन्धान के परिणाम होंगे।

अतः किसी भी स्रोत को अनुसन्धान-हेतु प्रयोग में लेने के पूर्व उसका विश्लेषण कर यह पता लगा लेना आवश्यक हो जाता है कि स्रोत कितना विश्वसनीय है। स्रोतों की यथार्थता एवं विश्वसनीयता का पता लगाने के इस प्रक्रम को ऐतिहासिक समालोचना कहा जाता है। यह समालोचना दो प्रकार की होती है, आन्तरिक एवं बाह्य।

बाह्य समालोचना :

इसके अन्तर्गत हम ऐतिहासिक स्रोत की वास्तविकता एवं प्रामाणिकता का पता लगाने का प्रयास करते हैं। अनेक बार ऐतिहासिक वस्तुओं के नाम पर लोग बनावटी वस्तुएं भी बेच कर पैसा कमाते हैं। ऐसे बनावटी स्रोतों से अनुसन्धाता को सावधान रहना चाहिए। स्रोत की वास्तविकता का पता लगाने की कई कसौटियाँ हो सकती हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

१. स्रोत में प्रयुक्त भाषा लिपि आदि क्या संबंधित ऐतिहासिक काल की भाषा एवं लिपि से मेल खाती है।
२. स्रोत में प्रयुक्त स्याही, धातु, पत्थर, लकड़ी, रंग, वस्त्र आदि सामग्री की भौतिक एवं रासायनिक परीक्षा से भी स्रोत की वास्तविकता का पता लगाया जाता है।
३. यह देखा जाता है कि स्रोत का स्वरूप उस ऐतिहासिक काल के सम्बन्ध की उपलब्ध जानकारी के अनुकूल है या नहीं। उदाहरणार्थ, हो सकता है स्रोत की बनावट में जो तकनीकी कौशल दृष्टिगोचर होता है वह संबंधित ऐतिहासिक काल में विकसित ही न हुआ हो।

गुड व स्केटस्[1] महोदय ने अपनी पुस्तक में विज्ञान की उन विभिन्न शाखाओं का उल्लेख किया है जिनका उपयोग ऐतिहासिक स्रोतों की वास्तविकता एवं यथार्थता का पता लगाने में किया जाता है। उनमें से कुछ हैं, मानव-विज्ञान (Anthropology)

पुरातत्व-विज्ञान (Archeology)
खगोल-विज्ञान (Astronomy)
वंश-विज्ञान (Genealogy)
मानचित्र-कला (Cartography)
कालक्रम-विज्ञान (Chronology)
अर्थशास्त्र (Economics)
शिक्षाशास्त्र (Education)
रसायनिकशास्त्र (Chemistry)
प्राणीशास्त्र (Zoology)
भूगोल (Geography)
भू-विज्ञान (Geology)
भाषाएं (Languages)
कानून (Law)
साहित्य (Literature)
सैनिक विज्ञान (Military Science)
मुद्राशास्त्र (Numismatics)
पुरा परिस्थिति विज्ञान (Paleocology)

1. Good and Scates opcit p. 191.

टिकट सकलन विज्ञान (Philately) राजनीति विज्ञान (Political Science) मनोविज्ञान (Psychology) ।

इससे यह स्पष्ट हो सकता है कि एक इतिहासविद् किसी स्रोत को काम में लेने के पूर्व उसकी वास्तविकता एवं यथार्थता का पता लगाने के लिए कितना परिश्रम करता है। क्योंकि वह जानता है कि उसके सम्पूर्ण अनुसन्धान की आधारशिला ही ये स्रोत हैं। इतिहासज्ञों को यह अनुभव होता है कि कई बार लोग बनावटी पुरातत्व सामग्री बनाकर पैसा कमाते हैं। नकली चित्र, लेख एवं पोशाकें बेचने का अनेक व्यक्ति धन्धा करते हैं। कई बार नकली रचनाएं किसी महान् लेखक की रचनाओं के नाम से बेच दी जाती हैं। वंशावलियों के परिवर्तित स्वरूप भी बना दिए जाते हैं। अतएव एक इतिहासज्ञ किसी स्रोत को काम में लेने के पूर्व सबसे पहले उसकी असलियत का पता लगाता है।

आन्तरिक समालोचना—

एक बार जब यह सिद्ध हो जाय कि स्रोत वास्तविक है तब फिर हम उसके विषय-सामग्री की समालोचना कर यह पता लगाने का प्रयत्न करते हैं कि यह कितनी सही है। कभी-कभी स्रोत वास्तविक होते हुए भी उसमें निहित सामग्री में कई अशुद्धियां हो सकती हैं। स्रोत की विषय-वस्तु के विश्लेषण द्वारा उसकी यथार्थता के ज्ञान करने के प्रक्रम को आन्तरिक समालोचना कहते हैं। यह आलोचना का अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है। कई बार ऐतिहासिक लेखों में कुछ तिथियां अथवा तथ्य छूट जाते हैं अथवा किसी कारण से गलत लिखे रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में स्रोत के आधार पर निष्कर्ष निकालना कठिन हो जाता है। ट्रैवर्स[1] महोदय ने एक उदाहरण प्रस्तुत कर यह बताने का प्रयास किया है कि किसी ऐतिहासिक स्रोत में छोटी सी भूल के कारण निष्कर्ष निकालने में कितनी कठिनाई हो सकती है। उन्होंने लिखा है कि वरमीलाफ ने अपने प्रकाशक को एक पत्र लिखा जिस पर केवल पेरिस, बृहस्पतिवार जून २१ इतना ही लिखा था। सन् का कहीं उल्लेख न होने से यह पता लगाना अत्यन्त कठिन हो गया कि यह पत्र कब लिखा गया। कहने का तात्पर्य यह कि स्रोत वास्तविक होते हुए भी उसकी विषय-वस्तु में यथार्थता एवं पूर्णता है कि नहीं यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है।

आन्तरिक आलोचना-हेतु हमें जिन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार करना चाहिए वे हैं—क्या लेखक योग्य एवं प्रामाणिक व्यक्ति था अथवा किसी प्रभाव में अथवा दुराग्रह से उसने यह बात लिखी है। क्या लेखक सम्पूर्ण तथ्यों से अवगत था अथवा व्यक्तियों से सुनी बातें वह लिख रहा है। क्या लेखक जिस घटना का वर्णन

1. R. H. W. Travers. An Introduction to Educational Research New York, the Macmillan and Co. 1951. p. 118.

कर रहा है उस घटनास्थल पर उपस्थित था ? घटना घटित होने के कितने समय पश्चात घटना का वर्णन लिखा गया है ? क्या इस स्रोत के तथ्य अन्य स्रोतों से प्राप्त तथ्यों से मेल खाते हैं ? क्या लेखक में घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करने की योग्यता थी ? क्या लेखक जिस तथ्य का वर्णन कर रहा है उसके सम्बन्ध में वह तकनीकी जानकारी रखता है ?

इन बिन्दुओं के आधार पर स्रोत की आन्तरिक आलोचना कर सन्तुष्ट हो जाने के उपरान्त ही हमें स्रोत को अनुसन्धान-हेतु काम में लेना चाहिए।

इतिहास को प्रस्तुत करने की दो प्रमुख विधियां तैथिकक्रमानुसार प्रस्तुतीकरण :

इतिहास प्रस्तुत करने का एक तरीका जोकि पुराने इतिहासकार अपनाते थे वह था तैथिकक्रम के अनुसार प्रस्तुतीकरण। इसके अन्तर्गत तिथियों के अनुकूल घटनाओं का वर्णन किया जाता था। परन्तु इस प्रस्तुतीकरण की सबसे बड़ी आलोचना यह थी कि इसमें इतिहास का स्वरूप केवल कुछ तथ्यों के संग्रह के रूप में प्रस्तुत किया था। जबकि हम इस अध्याय के प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं कि इतिहास केवल कुछ घटनाओं के क्रमिक विवरण को नहीं कहते।

विषयानुकूल प्रस्तुतीकरण—

इस प्रस्तुतीकरण में इतिहास कुछ असम्बन्धित क्रमिक घटनाओं के रूप में प्रस्तुत न किया जाकर कुछ निश्चित समस्याओं अथवा विषयों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत में स्त्री-शिक्षा का विकास, शिक्षा में स्वतन्त्रता, भारत में विश्वविद्यालयीय शिक्षा का विकास आदि विषयों का ऐतिहासिक विवेचन किया जा सकता है। आज की शिक्षा के इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों में इसी प्रणाली को अपनाया जाता है। शिक्षा के इतिहास को कुछ समय कालावों में बाँट कर प्रस्तुत करने के बजाय लेखक कुछ शैक्षिक समस्याओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करना अधिक उपयुक्त समझते हैं। विषयानुकूल प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत शिक्षा-इतिहास की इकाइयां हो सकती हैं-शाला संगठन, शिक्षा का संचालन, शिक्षक-प्रशिक्षण, शिक्षक-छात्र सम्बन्ध, पाठ्यचर्या, अध्यापन-विधियां आदि। जबकि क्रमिक प्रस्तुतीकरण की इकाइयां होंगी—प्राचीन भारत में शिक्षा-व्यवस्था, मध्यकालीन भारत में शिक्षा-व्यवस्था, स्वतन्त्रता पूर्व आधुनिक भारत में शिक्षा-व्यवस्था, स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा-व्यवस्था। इन दोनों विभाजनों में से प्रथम अधिक सार्थक प्रतीत होता है तथा शिक्षा की महत्वपूर्ण समस्याओं पर प्रकाश डालता है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान की कुछ समस्याएं—

ऐतिहासिक अनुसन्धान के लगभग सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार कर लेने के पश्चात् पाठकों को यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ऐतिहासिक अनुसन्धान कोई सरल कार्य नहीं है। इस अनुसन्धान-विधि की अपनी समस्याएं हैं। यदि इन समस्याओं का संक्षिप्त विवेचन यहां किया जाय तो अनुसन्धाता के लिए उपयोगी सिद्ध

हो सकता है, ऐसी हमारी धारणा है। क्योंकि इस विवेचन से अनुसन्धाता यह जान सकेगा कि इस प्रकार के अनुसन्धान में कहाँ त्रुटियाँ होने की सम्भावनाएं हैं।

१. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य .

इतिहास के क्षेत्र में अनुसन्धाता की सबसे बड़ी कठिनाई है। उचित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य विकसित करना। इसके अभाव में अनेक बार ऐतिहासिक निर्वचन कठिन हो जाता है। ऐतिहासिक अनुसन्धाता आज के वातावरण में रह कर अतीत के वातावरण में घटित घटनाओं की कल्पना करता है। इन घटनाओं का वास्तविक चित्रण बिना ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के नहीं किया जा सकता। आधुनिक जलयानों में बैठकर कोलम्बस की जल यात्रा की कठिनाइयों का अनुमान लगाना अथवा आधुनिक यांत्रिक युग के युद्धों को देखते हुए शिवाजी या राणा प्रताप के युद्धों की कठिनाइयों को समझना कोई सरल कार्य नहीं।

२. कार्य-कारण सम्बन्ध :

ऐतिहासिक अनुसन्धान की दूसरी कठिनाई है कार्य-कारण सम्बन्ध का प्रस्थापन। ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण जब हम कार्य-कारण सम्बन्ध प्रस्थापित करने की दृष्टि से करते हैं तो हमें बड़ी कठिनाई अनुभव होती है। क्योंकि किसी भी एक घटना का सम्बन्ध एक कारण से सीधा नहीं होता। एक घटना के पीछे अनेकों प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कारण हो सकते हैं, यह हमें मानकर चलना चाहिए। इन अनेकों अदृश्य कारणों का पता लगाना अत्यन्त कठिन कार्य है।

३. ऐतिहासिक निर्वचन में वस्तुनिष्ठता .

ऐतिहासिक अनुसन्धाता को इस बात की अत्यन्त सतर्कता बर्तने की आवश्यकता रहती है कि जब वह स्रोतों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करे उस समय अपना व्यक्तिगत मत अथवा पूर्वाग्रह उसमें परिलक्षित न होने दे। निष्कर्ष निकालते समय वस्तुनिष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है। लेखक पाठकों को यह स्पष्ट कर दे कि कौन से निष्कर्ष तो ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित हैं और कौन से उसके निजी विचार हैं। यह कहना जितना सरल है उतना ही कार्यान्वित करने में कठिन। मानव-प्रकृति ही ऐसी है कि जब हम तथ्यों का वर्णन करते हैं तो पूर्ण प्रयास के उपरान्त भी उसमें हमारी विचारधारा का प्रभाव आ ही जाता है। जिस *ऐतिहासिक पुरुष का हम सम्मान करते हैं उसके सम्बन्ध में लिखते समय पूर्णतया* वस्तुनिष्ठ बने रहना अत्यन्त कठिन है।

सारांश

इतिहास का प्रयोजन है मानव के अतीत का सम्पूर्ण अध्ययन। हमारा आग्रह केवल तथ्यों के संकलन पर न होकर कुछ विशिष्ट समस्याओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या रही है यह पता लगाने पर होना चाहिए। यह कार्य ऐतिहासिक अनुसन्धान

द्वारा हो सकता है। ऐतिहासिक समस्याओं का वैज्ञानिक विधि से अध्ययन करने के प्रक्रम को ऐतिहासिक अनुसन्धान कहते हैं। ऐतिहासिक अनुसन्धान में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना असम्भव नहीं है। उच्चकोटि के इतिहासज्ञों के कार्यों को देखा जाय तो उनमें वैज्ञानिक विधि स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होगी। इतिहास की प्रमुख आधार शिलाएं हैं—ऐतिहासिक स्रोत। स्रोत प्राथमिक एवं गौण दोनों हो सकते हैं। प्राथमिक स्रोत अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं क्योंकि ये ऐतिहासिक घटनाओं के प्रत्यक्ष साक्षी होते हैं। स्रोतों को काम में लेने के पूर्व आन्तरिक एवं बाह्य समालोचना द्वारा यह पता लगा लेना चाहिए कि स्रोत असली हैं या नहीं तथा उनमें उपलब्ध सूचनाएं सही एवं विश्वसनीय हैं या नहीं? स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं प्रस्तुत करने की दो विधियां हो सकती हैं तैथिक क्रम के अनुसार अथवा विषयानुकूल। ऐतिहासिक अनुसन्धान के अन्तर्गत अनुसन्धाता को जो कठिनाइयां आती हैं उनमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य विकसित करना, कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करना तथा निर्वचन में वस्तुनिष्ठता बनाए रखना प्रमुख है।

अभ्यास-कार्य

१. इतिहास के सही अर्थ को स्पष्ट कीजिए। इस परिभाषा के आधार पर ऐतिहासिक अनुसन्धान में हमारा क्या दृष्टिकोण होना चाहिए?
२. ऐतिहासिक विधि में कौन-कौन से स्रोत सामान्यतया काम में लिए जाते हैं? कुछ शैक्षिक स्रोतों के उदाहरण दीजिए।
३. प्राथमिक एवं गौण स्रोतों से आप क्या समझते हैं? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
४. ऐतिहासिक अनुसन्धान में दत्त सामग्री संकलन-हेतु काम में लिए जाने वाले स्रोतों की समालोचना क्यों आवश्यक है?
५. आन्तरिक एवं बाह्य समालोचना से क्या तात्पर्य है? दोनों प्रकार की समालोचनाएं किन-किन आधार बिन्दुओं को ध्यान में रखकर की जाती है?
६. ऐतिहासिक लेखन की दो प्रमुख शैलियों का उल्लेख कीजिए तथा दोनों के सबल एवं दुर्बल पक्षों की चर्चा कीजिए।
७. ऐतिहासिक अनुसन्धान की कुछ समस्याओं के उदाहरण दीजिए।

५

सर्वेक्षण-विधि

किसी भी क्षेत्र मे सुधार लाने के लिए हमें उस क्षेत्र की तात्कालिक परिस्थिति की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है चाहे फिर वह शैक्षिक क्षेत्र हो, राजनैतिक क्षेत्र हो, आर्थिक क्षेत्र हो अथवा सामाजिक क्षेत्र हो। शिक्षा-पद्धति में यदि सुधार लाना है तो आज की शिक्षा की क्या परिस्थिति है यह जबतक हमे ज्ञात नहीं है तबतक हम कोई नया कदम नहीं उठा सकते। आज की शिक्षा के लक्ष्य क्या हैं ? शिक्षा पर प्रति विद्यार्थी क्या व्यय हो रहा है ? विद्यार्थी का अनुपात क्या है ? विद्यालय जाने वाले बालकों की सख्या क्या है ? विद्यालयों की सख्या आदि अनेकों तथ्य जबतक हमारे सामने नहीं होंगे तबतक हम कोई नया कदम नहीं उठा सकते। इन सब तथ्यों को जानने की जो विधि है उसे हम सर्वेक्षण कहते हैं। सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित सामग्री विभिन्न प्रकार की हो सकती है। ग्राम परिवार में सदस्यों की सख्या, साक्षरता, स्वास्थ्य आदि विषयों से लेकर व्यक्तियों की राय, दृष्टिकोण आदि जटिल विषय सर्वेक्षण के विषय हो सकते हैं।

सर्वेक्षण के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हो सकते हैं—

(१) सूचनाओं का संकलन

कुछ सर्वेक्षण कतिपय विशिष्ट सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए ही किए जाते हैं, जैसे, देश मे शिक्षित बेकारों की सख्या, साक्षरता, शाला में आने योग्य उम्र वाले बालकों की सख्या, लोगों की भोजन सबधी आदतें आदि।

(२) किसी विशिष्ट कारक के अस्तित्व का पता लगाना :

जैसे कितने लोग मदिरा निषेध के विरोधी हैं, कितने लोग सह शिक्षा से सहमत हैं। कितने लोग चीन को राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने से सहमत हैं। प्रीविपर्स बन्द करने से कितने लोग सहमत हैं आदि अनेकों ऐसे सर्वेक्षण हो सकते हैं जिसमें हम एक विशेष मत, दृष्टिकोण अथवा विचार का पता लगाना चाहते हैं। जनमत जानने के लिए जो सर्वेक्षण किए जाएं वे भी इसी श्रेणी में आते हैं।

(३) किसी व्यवहार अथवा घटना का पूर्वानुमान लगाना :

अनेक बार राजनीतिशास्त्र के ज्ञाता चुनावों के पूर्व सर्वेक्षण करके यह पूर्वानुमान लगाते हैं कि कौन से दल को कितने मत मिलने की संभावना है। इस वर्ष फसल कितने प्रतिशत बढ़ सकती है अथवा कितने पर्यटक आने की सम्भावना है। इसका तात्कालिक परिस्थितियों का सर्वेक्षण करके पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

(४) दो चरों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का पता लगाना :

कई बार सर्वेक्षण के आधार पर हम दो चरों के बीच के सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए सिगरेट पीने एवं केन्सर रोग होने के बीच क्या सम्बन्ध है। क्या प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा पढ़ाए गए छात्रों की उपलब्धि अधिक अच्छी होती है? क्या आयु बढ़ने के साथ अध्यापन-कुशलता बढ़ती है? आदि अनेक ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जो यह बताते हैं कि सर्वेक्षण का उपयोग चरों के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करने-हेतु किया जा सकता है।

सामाजिक सर्वेक्षण

सामाजिक सर्वेक्षण एक सहयोगी प्रक्रम है जिसके द्वारा तात्कालिक समस्याओं का सर्वेक्षण कर संकलित सामग्री के आधार पर सामाजिक सुधारों की योजना बनाई जाती है। सामाजिक सर्वेक्षण की विधियां वही होती हैं जो अन्य सर्वेक्षणों की होती हैं। इनका लक्ष्य केवल सामाजिक समस्याओं तक सीमित रहता है।

सामाजिक सर्वेक्षणों[1] का सुव्यवस्थित प्रारंभ १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में हुआ। १८८६ में चार्ल्स बूथ ने सर्वप्रथम लंदन के निवासियों की आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों के अध्ययन-हेतु सामाजिक सर्वेक्षण की योजना बनाई एवं सर्वेक्षण किए। उसके तरीके को बाद में इंग्लैंड व अमरीका में अन्य विशेषज्ञों ने भी अपनाया। वैसे इसके पूर्व जान हावर्ड नामक सामाजिक कार्यकर्ता ने (१७२६-१७९०) सर्वप्रथम इंग्लैण्ड की जेलों का सर्वेक्षण किया। इसके अतिरिक्त बाउले नामक सांख्यिकीशास्त्रज्ञ द्वारा किया हुआ सर्वेक्षण भी इंग्लैण्ड के अग्रगामी सर्वेक्षणों में से

1. Parten Midred, Surveys Polls and Samples New York, Harper & Row, 1965.

माना जाता है क्योंकि बाउले ने सर्वप्रथम सर्वेक्षणों में प्रतिचयन का उपयोग किया था। अमरीका में जो प्रारंभिक सर्वेक्षण हुए वे बूथ एवं बाउले द्वारा किए गए सर्वेक्षणों द्वारा निर्धारित ढाँचे के अनुकूल ही हुए। अमरीका के अग्रगामी सर्वेक्षणों में पिट्सबर्ग सर्वे सबसे महत्वपूर्ण सर्वेक्षण माना जाता है। इस सर्वेक्षण में पिट्सबर्ग के मिलों के मजदूरों की आर्थिक एवं सामाजिक दशा का सर्वेक्षण किया गया था।

प्रारंभिक सर्वेक्षण अत्यन्त व्यापक हुआ करते थे। इनमें लगभग सभी आर्थिक-सामाजिक पक्षों का अध्ययन किया जाता था। आज सामाजिक सर्वेक्षणों में किसी एक महत्वपूर्ण सामाजिक अथवा आर्थिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। स्वास्थ्य, आदतें, आमोद-प्रमोद के साधन, बेकारी, जनमत, कृषि आदि अनेक ऐसे विषय हो सकते हैं जिन पर हम अपना ध्यान केन्द्रित कर सर्वेक्षणों का आयोजन कर सकते हैं।

शाला-सर्वेक्षण :

बीसवीं शताब्दी के पूर्व सर्वेक्षण-विधि का शिक्षा के क्षेत्र में कोई सुव्यवस्थित प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता है। शिक्षा अधिकारियों के प्रतिवेदनों के अतिरिक्त शिक्षा के विभिन्न पक्षों से संबंधित तथ्यों को एकत्रित करने का कोई सुव्यवस्थित प्रयास इससे पूर्व नहीं दिखाई देता। १६१० ई० के करीब शाला-सर्वेक्षण प्रारम्भ हुए। इसी समय कुछ अमरीकी शालाओं ने बाहर के विशेषज्ञों से शाला की कुछ समस्याओं के सम्बन्ध में राय मांगी। इन विशेषज्ञों ने शाला-भवन, पाठ्यक्रम आदि अनेक पक्षों का सर्वेक्षण किया।

१६११ ई० में एक विस्तृत सर्वेक्षण किया गया जिसे "ए सर्वे ऑफ न्यूयार्क सिटी स्कूल"[1] के नाम से जाना जाता है। इस सर्वेक्षण के प्रतिवेदन को तीन ग्रन्थों में प्रकाशित किया गया। इससे इस सर्वेक्षण की व्यापकता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें धनराशि भी बहुत खर्च हुई। इस सर्वेक्षण से शाला की कई समस्याओं से संबंधित मूल्यवान तथ्य प्राप्त हुए। इसी कारण अन्य लोगों ने भी शाला-सर्वेक्षण के महत्व को जाना तथा इस विचारधारा ने बल पकड़ा।

यूनेस्को[2] ने विश्वव्यापी तीन महत्वपूर्ण शिक्षा-सर्वेक्षण किए। इन सर्वेक्षणों से विभिन्न देशों में शिक्षा की तात्कालिक स्थिति का ज्ञान हो सकता है। इन सर्वेक्षणों का नाम "वर्ल्ड सर्वे ऑफ एज्युकेशन"[3] है। प्रथम सर्वेक्षण का प्रतिवेदन यूनेस्को ने सन् १६५५ में प्रकाशित किया। इसमें विभिन्न देशों में जो शिक्षा संगठन हैं उनका उल्लेख किया गया है तथा शिक्षा सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। द्वितीय यूनेस्को सर्वेक्षण में विभिन्न देशों में प्राथमिक शिक्षा की तात्कालिक स्थिति का वर्णन

1. A *Survey of New York city schools.* 2. *UNESCO*
3. World Survey of Education.

किया गया है। यह सर्वेक्षण यूनेस्को ने सन् १९५८ ई० में प्रकाशित किया था। यूनेस्को का तृतीय शैक्षिक सर्वेक्षण सन् १९६१ ई० में प्रकाशित हुआ। यह सर्वेक्षण माध्यमिक शिक्षा से संबंधित है।

भारतवर्ष में शाला-सर्वेक्षण का कार्य व्यवस्थित रूप से सर्वप्रथम सन् १९५७ ई० में प्रारम्भ हुआ। शिक्षा मंत्रालय ने प्रथम शाला सर्वेक्षण का प्रतिवेदन सन् १९५७ में प्रकाशित किया। इस सर्वेक्षण का शीर्षक रखा गया "प्रथम अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण"[1] यह कार्य उस समय के योजना आयोग के सदस्य डा० वी० के० आर० वी० राव की अध्यक्षता में हुआ। इस सर्वेक्षण में मूलतः ग्रामीण शालाओं का विशद् अध्ययन किया गया था।

सन् १९६५ ई० में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (N.C.E.R.T.) के अन्तर्गत एक सर्वेक्षण इकाई (सर्वे यूनिट) की स्थापना की गई। इस यूनिट की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह था कि राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के विभिन्न पक्षों का सर्वेक्षण किया जाय तथा शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य एकत्रित किए जाएं। यह तथ्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजनाओं को बनाने में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस यूनिट के अध्यक्ष डा० एस० बी० बुच के नेतृत्व में N.C.E.R.T. ने सन् १९६७ में द्वितीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण का प्रतिवेदन प्रकाशित किया। इसमें प्राथमिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक शिक्षा (मिडिल स्कूल) माध्यमिक शिक्षा, शिक्षक-प्रशिक्षण, शिक्षक-स्थिति, अध्यापकों की साधन-सामग्री आदि विषयों का गहन अध्ययन किया गया है।

राष्ट्रीय स्तर पर किए गए ये दो सर्वेक्षण भारतीय शिक्षा से संबंधित मूल्यवान तथ्य प्रस्तुत करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में सर्वेक्षण के महत्व को हमारे देश में भी अब महत्व दिया जाने लगा है। इसका एक प्रमाण यह है कि अब राष्ट्रीय स्तर पर तो एक सर्वेक्षण केन्द्र स्थापित हुआ ही है पर साथ-साथ प्रत्येक राज्य में भी सर्वेक्षण केन्द्र प्रारम्भ किए गए हैं।

सर्वेक्षण के प्रमुख सोपान :

(१) उद्देश्यों का निर्धारण :

सर्वेक्षण तभी वैज्ञानिक कहा जा सकता है जब वह किन्हीं पूर्व निर्धारित सुनिश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया हो। शाला का प्रधानाध्यापक छात्रों की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति के जो आंकड़े एकत्रित करता है वह सर्वेक्षण नहीं कहा जा सकता। टेलीफोन निर्देशिका में जो टेलीफोन संख्याएं एकत्रित रहती हैं वह सर्वेक्षण नहीं है, क्योंकि केवल आंकड़ों को संकलित कर लेना सर्वेक्षण नहीं कहलाता।

1. First All India Education Survey.

आँकड़ों का संकलन जबतक पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के सन्दर्भ में न हो तथा उनसे कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष न निकाले जाएं तबतक हम उसे सर्वेक्षण नहीं कह सकते। जितने स्पष्ट हमारे उद्देश्य निर्धारित होंगे उतनी ही सुविधा हमें प्रतिदर्श-चयन मे, उपकरण के चयन में तथा अन्य कार्यों मे अनुभव होगी। कई बार उद्देश्य स्पष्ट न होने पर हम बहुत से अनावश्यक तथ्य एकत्रित कर लेते हैं जिनका कि समस्या से कोई-सबध नहीं होता। इसमे धर्म एवं समय का अपव्यय होता है। सर्वेक्षण के उद्देश्य-निर्धारण करने से सर्वेक्षण की सीमाओं का भी निर्धारण हो जाता है। अतः उपलब्ध धनराशि, साधनों एवं समय को ध्यान में रखते हुए ही हमें सर्वेक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करना चाहिए। बहुत व्यापक समस्या को लेकर सर्वेक्षण करने की अपेक्षा यदि किसी सीमित पक्ष को लेकर सर्वेक्षण किया जाय तो अधिक गहन अध्ययन सम्भव हो सकता है। व्यापक सर्वेक्षण तो केवल राष्ट्रीय अथवा राज्य स्तरीय अभिकरण ही कर सकते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर सीमित पक्षों का ही सर्वेक्षण सम्भव हो सकता है। उदाहरणार्थ, किसी एक व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं हो सकता कि वह माध्यमिक शिक्षा के सभी पक्षों का सर्वेक्षण करे। वह शिक्षकों की सेवाओं सम्बन्धी, विज्ञान-शिक्षण संबंधी अथवा अन्य किसी एक पक्ष को लेकर सर्वेक्षण आसानी से कर सकता है।

उपकरणों एवं प्रविधियों का चयन :

सर्वेक्षण के उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् हमें यह निश्चित करना चाहिए कि सर्वेक्षण के आँकड़ों का संकलन कैसे किया जाएगा। जिन उपकरणों का, जैसे प्रश्नावलियों, साक्षात्कार-सूचिका आदि का हमें उपयोग करना है उनका निर्माण कर लेना चाहिए। उपकरणों के अतिरिक्त यदि हमें साक्षात्कार, प्रेक्षण आदि प्रविधियों का प्रयोग करना हो तो उसकी भी योजना बना लेनी चाहिए। अर्थात् किन व्यक्तियों के लिए प्रश्नावलियां बनाई गई हैं ? किन व्यक्तियों से साक्षात्कार किया जायगा या किनके कार्यों का प्रेक्षण किया जायगा, ये सब बातें पहले से निश्चित हो जानी चाहिए।

उपकरणों का प्राक्परीक्षण

उपकरणों के निर्माण के पश्चात् उनकी वैधता, विश्वसनीयता एवं उपादेयता की परख के लिए प्राक्परीक्षण आवश्यक हो जाता है। प्राक्परीक्षण का अर्थ है कि उपकरण को जिस समष्टी के लिए काम में लेना है उसके कुछ सदस्यों पर उसका परीक्षण किया जाय। प्राक्परीक्षण से अनेक बार हमें प्रश्नों के सम्बन्ध में ऐसी सूचनाएं मिलती हैं जिनके आधार पर हम प्रश्नो मे परिवर्तन कर उपकरण सुधार सकते हैं। अनेक बार जिस प्रश्न को हम स्पष्ट समझ बैठते हैं वह अन्य व्यक्ति के लिए वस्तुत: स्पष्ट नहीं होता। प्राक्परीक्षण के दौरान हमें उन बिन्दुओं के सम्बन्ध में भी संकेत मिलता है जिनका समावेश हमनें हमारे उपकरणों में न किया हो अथवा

जिनकी हमें पूर्व कल्पना न हो। उपकरण-निर्माण तो अनुसन्धाता अपने स्वय के अनुभव पर करता है, यह प्रयत्न अवश्य किया जाता है कि उपकरण ऐसा बने जिसके द्वारा सब महत्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन किया जा सके। फिर भी समष्टि विशेष की कुछ विशेषताएं हो सकती हैं जिनकी अनुसन्धाता को कल्पना न हो। अतः प्राक्-परीक्षण से उपकरण अधिक सम्पूर्ण बनाया जा सकता है। कई बार हम प्रश्नावलियों में कुछ प्रश्नों का समावेश तो कर लेते हैं पर उत्तर देने वाले व्यक्ति उन प्रश्नों का संकोचवश अथवा अन्य किन्हीं कारणों से उत्तर नहीं दे पाते। ऐसे प्रश्नों का हम प्राक्परीक्षण द्वारा पता लगा सकते हैं।

प्रतिदर्श का चयन :

सर्वेक्षण का समय तथा खर्च कम करने-हेतु जहाँ भी सम्भव हो हमें प्रति-चयन प्राविधि का प्रयोग करना चाहिए। प्रतिचयन से हमें सम्पूर्ण समष्टि का अध्ययन नहीं करना पड़ता अतः हम सर्वेक्षण को अधिक गहन बना सकते हैं। प्रतिदर्श यदि ठीक विधि से चुना गया हो तो उस पर आधारित परिणाम उतने ही विश्वसनीय होते हैं जितने सम्पूर्ण समष्टि पर आधारित।

प्रतिचयन अपने-आपमें एक महत्वपूर्ण प्राविधि है अतः इसका अलग से एक अध्याय में वर्णन किया गया है। यहाँ तो केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि प्रतिचयन इस प्रकार से करना चाहिए कि प्रतिदर्श पूर्वाग्रहों से मुक्त हो। प्रतिदर्श कितना बड़ा होना चाहिए इसके लिए कोई सामान्य नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता, प्रतिदर्श का आकार सर्वेक्षण के उद्देश्य, सर्वेक्षण में प्रयुक्त विधि आदि पर निर्भर करेगा। विशेषज्ञ इतना अवश्य मानते हैं कि २५ से छोटा प्रतिदर्श चुनने पर हम सांख्यिकी—सूत्रों का उपयोग नहीं कर सकते।

सर्वेक्षण-कार्य की तिथियों का निर्धारण :

प्रतिदर्श का चयन कर लेने के पश्चात् हमें दत्त सकलन की एक योजना बना लेनी चाहिए। जिन व्यक्तियों से साक्षात्कार करना है वह कब किया जाएगा। जिनका हमें निरीक्षण करना है उसकी कौनसी तिथियां होंगी, इनकी सम्पूर्ण योजना पहले से ही बन जानी चाहिए। तिथियां निर्धारित करते समय हमें अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। उदाहरणार्थ, किसी शाला में यदि दत्त-संकलन-हेतु हम ऐसे समय जाएं जब वहाँ परीक्षाएं चल रही हों अथवा छुट्टियां हों तो हमारा उद्देश्य सफल नहीं होगा।

दत्त संकलन एवं विश्लेषण :

प्रतिदर्श चयन कर लेने के बाद निर्धारित तिथियों पर दत्त-संकलन करना चाहिए। दत्त-संकलन करने जाने से पूर्व सबधित व्यक्तियों की सम्मति प्राप्त कर लेने के पश्चात् उस सामग्री का सारणीकरण एवं विश्लेषण करना चाहिए। विश्लेषण की

योजना भी यदि हम पहले से ही बना लें तो उसी के अनुकूल दत्त सामग्री का संकलन किया जा सकता है।

सारांश

उपरोक्त चर्चा से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सर्वेक्षण-विधि चाहे वर्णनात्मक हो फिर भी इसके लिए अत्यन्त विशद् योजना की आवश्यकता है। सर्वेक्षण-कार्य इतना सरल नहीं जितना लोग समझते हैं। सर्वेक्षण-विधि में खर्च भी काफी हो सकता है। किन्तु सर्वेक्षण से हमें अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हो सकते हैं जो हमें तात्कालिक स्थिति को समझने में एवं भविष्य की योजना बनाने में सहायक हो सकते हैं।

अभ्यास-कार्य

१. सर्वेक्षण-विधि का प्रयोग किन-किन परिस्थितियों मे किया जाता है ?
२. सर्वेक्षण-विधि के क्या लाभ हैं ?
३. शाला-सर्वेक्षण का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ ? शाला सर्वेक्षण का क्या महत्व है ?
४. भारतवर्ष मे किए गए अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षणों के प्रमुख उद्देश्यों एव परिणामों की चर्चा कीजिए।

६

केस-अध्ययन और विकासात्मक अध्ययन

केस-अध्ययन :

केस-अध्ययन का अर्थ है किसी एक केस से सम्बन्धित सब पहलुओं का अध्ययन करना। अध्ययन के लिए लिया हुआ केस एक व्यक्ति भी हो सकता है, एक संस्था भी हो सकती है अथवा एक परिवार, एक अस्पताल, एक समुदाय, एक सांस्कृतिक समूह (जैसे कोई औद्योगिक क्षेत्र) भी हो सकता है। केस-अध्ययन किसी केस की वर्तमान अवस्था का सबसे अधिक व्यापक और गहन मूल्यांकन है। सब कारक तत्त्वों का, जो वर्तमान अवस्थिति स्टेटस् को निर्धारित करते हैं, अध्ययन किया जाता है। सब कारक तत्त्वों का पता लगाने के लिए सभी उपलब्ध उपयुक्त पद्धतियों तथा उपकरणों का उपयोग कर केस के सम्बन्ध में सभी प्रकार की जानकारियां एकत्र की जाती हैं।

जैसाकि स्पष्ट है, केस-अध्ययन-विधि कुछ दृष्टियों से, अन्य सब विधियों के समान है। केस-अध्ययन केस- से संबंधित सब जानकारियों का सर्वेक्षण है। अन्तर इतना ही है कि सर्वेक्षण-विधि एक समूह का सर्वेक्षण करती है और यह केवल एक व्यष्टि का। दोनों ही प्रकार के सर्वेक्षण वर्तमान दशाओं का अध्ययन करते हैं। परन्तु सामूहिक सर्वेक्षण के द्वारा व्यक्तियों के समूह के बारे में अपेक्षाकृत स्थूल वर्णन किया जाता है जबकि केस-अध्ययन सर्वेक्षण के द्वारा केस की वर्तमान अवस्था का वर्णन सूक्ष्म गतिशील कारकों के परिप्रेक्ष्य (पर्सपेक्टिव में होता है।

ऐतिहासिक विधि के समान केस-अध्ययन में केस के सम्पूर्ण इतिहास का अध्ययन किया जाता है। विगत अभिलेखों, लेखों आदि पत्रों का भी अध्ययन किया जाता है परन्तु साक्षात्कार तथा प्रक्षेपण-पद्धतियों प्रोजेक्टिव टेकनीक्स द्वारा केस के इतिहास के सूक्ष्म तथा अप्रकट तत्वों का मूल्यांकन किया जाता है जो ऐतिहासिक विधि के लिए सम्भव नहीं है। केस-अध्ययन में इतिहास के अध्ययन का एकमात्र लक्ष्य वर्तमान को समझना होता है। परन्तु अनेक ऐतिहासिक अध्ययनों का यह लक्ष्य नहीं होता।

प्रायोगिक विधि का मुख्य लक्ष्य परिणाम के कारणों की जानकारी है। केस-अध्ययन का मुख्य लक्ष्य भी यही है। परन्तु दोनों में आधारभूत अन्तर यह है कि प्रायोगिक विधि में पर्यावरण को नियंत्रित किया जाता है जबकि केस-अध्ययन में इस प्रकार का नियंत्रण नहीं होता। हाँ, किसी केस विशेष को प्रायोगिक स्थिति में रखा जा सकता है। दोनों के ही समान लक्ष्य हैं—व्याख्या और प्रागुक्ति।

केस-अध्ययन के लिए एक सबसे प्रबल तर्क यह है कि किसी भी केस का अध्ययन तबतक पूर्ण नहीं हो सकता जबतक कि हम उसके विभिन्न पहलुओं की उस में होने वाली अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन न करें। जब हम अनेक व्यक्तियों में इन अन्तर्क्रियाओं का गहन अध्ययन करेंगे तब हमें उन सिद्धान्तों का पता लगेगा जो इन अन्तर्क्रियाओं को नियमित करते हैं।

प्राकृतिक विज्ञानों के लिए सुविधाजनक बात यह है कि वे एकरूप पर्यावरण का अध्ययन कर सकते हैं परन्तु शिक्षा और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में यह सम्भव नहीं है। यदि भौतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, सांस्कृतिक पर्यावरण आदि एक हो तो भी मनोवैज्ञानिक पर्यावरण भिन्न-भिन्न होता है। यदि मानलें कि किन्हीं माता-पिता का अपने दो पुत्रों के साथ बिल्कुल एक सा व्यवहार रहता है (जोकि वास्तव में कभी होता नहीं) तो भी उन पुत्रों का मनोवैज्ञानिक पर्यावरण एक सा नहीं होगा। क्योंकि पर्यावरण में बड़े भाई के लिए छोटा भाई है और छोटे के लिए उसका बड़ा भाई उपस्थित है। अतः मानकीकृत परीक्षाएं, सामूहिक प्रश्नावलियाँ आदि के द्वारा जनसमूह की स्थूल बातों का पता लग सकता है व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व का पता नहीं लग सकता। प्रत्येक व्यक्तित्व भिन्न होता है। भिन्नता का कारण उसका अद्वितीय अनुभवों का अनुक्रम है (सीक्वेन्स)। इस अद्वितीय पक्ष का बिना गहन अध्ययन किए पता नहीं लग सकता।

केस-अध्ययन व्यक्ति के विकृत (एबनौर्मल) व्यवहार के निदान (डाइग्नोसिस) और उपचार के लिए आवश्यक है। यदि कोई बालक अपराध करने लगता है, कक्षा से भागना प्रारम्भ कर देता है और उसकी उपलब्धि के अंक कम होने लगते हैं तो एक ही उपाय है कि केस-अध्ययन किया जाय क्योंकि बाल अपराध अनेक कारणों से हो सकता है; यथा, घर, पड़ोस, विद्यालय, मित्रता, व्यक्तिगत कुसमंजन आदि। इनमें

से प्रत्येक कारण के अनेक रूप हैं जो केस-अध्ययन के बिना पता नहीं लग सकते। कारणों का पता लगने पर तदनुरूप उपचार किया जा सकता है। यदि उपचार सफल होता है तो सही कारणों का अवबोध विकसित होने का अवसर मिलता है। सम्पूर्ण मनोचिकित्साशास्त्र का विकास व्यक्ति-अध्ययनों तथा उनके सफल उपचारों के परिणामस्वरूप विकसित हुआ है। आयुर्विज्ञान के अध्यापन की एक मुख्य विधि केस-अध्ययन है। छात्र प्रत्येक केस के रोग का अध्ययन करते हैं और शिक्षक के मार्गनिर्देशन में उपचार करते हैं जिससे उनका चिकित्सा-ज्ञान बढ़ता है। आयुर्विज्ञान में रोग के निदान की आधारभूत पद्धति केस-अध्ययन है।

कभी-कभी "केस-विधि", "केस-कार्य" और "केस-अध्ययन" तीन पारिभाषिक शब्दों का उपयोग किया जाता है। केस-विधि शिक्षण की एक विधि है जिसका उपयोग आयुर्विज्ञान और मनोचिकित्सा के क्षेत्र में किया जाता है जैसाकि ऊपर विवेचन किया जा चुका है। केस-कार्य का अर्थ केस का सुधार करना है ताकि उसका समुचित विकास हो सके। उसका अर्थ केस के उपचार से है। वस्तुतः केस-कार्य का उपयोग समाजशास्त्र में तथा समाज सेवा के कार्यों में व्यक्तियों के सुधार (उपचार) के अर्थ में किया जाता है। मनोविज्ञान में तथा आयुर्विज्ञान में इस प्रकार के सुधार तथा उपचार को थिरापी या चिकित्सा कहते हैं। केस-अध्ययन, जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, किसी केस का गहन अध्ययन है जिसके कारण उस केस की वर्तमान अवस्था की जानकारी हो, उसके कारणों का पता लगे, निदान किया जा सके और उपचार या सुधार का प्रयास किया जा सके।

केस-अध्ययन की कठिनाइयाँ :

केस-अध्ययन के लिए सभी प्रकार की प्रविधियों और उपकरणों का उपयोग करते हैं जैसे, साक्षात्कार, प्रेक्षण, अभिलेखों का अध्ययन, बुद्धिपरीक्षा, अभिवृत्ति प्रमापनी तथा प्रक्षेपण-विधियों का उपयोग। वस्तुनिष्ठ पद्धति जैसे, मानकीकृत परीक्षाओं (बुद्धि-परीक्षा, अभिवृत्ति प्रमापनी आदि) के द्वारा विश्वसनीय जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु साक्षात्कार, विशेष कर, व्यक्ति के माता-पिता, अध्यापक या अन्य व्यक्तियों से साक्षात्कार के द्वारा जानकारी की वैधता और प्रभुढता पर सन्देह बना रह सकता है।

केस के इतिहास के तथ्य साधारणतया क्रमिक रूप से एकत्रित नहीं हो पाते हैं। जिन व्यक्तियों से साक्षात्कार कर केस के इतिहास की जानकारी प्राप्त की जाती है उनकी स्मृति तथा उनके मतों और निर्णयों पर सदा विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त इतिहास के तथ्यों के मध्य बहुत सी बातें छूटी रह सकती हैं।

केस-अध्ययन एक गहन अध्ययन है। इसे कोई नौसिखिया अनुसन्धानकर्ता नहीं कर सकता। उसे विशेषज्ञ होना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति

के व्यक्तित्व का अध्ययन करना है तो व्यक्तित्व के सिद्धान्तवादों की गहन जानकारी होनी चाहिए, तभी सकलित तथ्य की उचित व्याख्या हो सकेगी और भिन्न-भिन्न परिवर्तियों के मध्य सम्बन्धों को पहचाना जा सकेगा। तभी उसे पता लगेगा कि कौन-कौन से तथ्य किस सिद्धान्तवाद की पुष्टि करते हैं। इसके अतिरिक्त निदानात्मक साक्षात्कार करने के लिए दीर्घ अनुभव तथा उचित प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रक्षेपण प्रविधियों का उपयोग करने के लिए विशेष कौशल, दीर्घ अनुभव और अन्तर्दृष्टि होनी चाहिए। निदान के लिए केस के अध्ययनकर्ता को अपनी सूझबूझ पर अवलम्बित रहना पड़ता है क्योंकि एकत्रित बहुत सी दत्त सामग्री गुणनात्मक होती है। गुणनात्मक रूप मे व्यक्त न कर सकने के कारण दत्त विश्लेषण को वस्तु निष्ठ बनाना कठिन होता है। व्याख्या और निष्कर्षों मे विषयनिष्ठता की सम्भावनाएं अधिक रहती हैं।

इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि केस-अध्ययन अविश्वसनीय विधि है। केस-अध्ययन विशेषज्ञ के लिए अत्यधिक उपयोगी विधि है। आयुर्विज्ञान, मनोचिकित्सा, शिक्षा और सामाजिक सेवा कार्य के क्षेत्रों में सफल चिकित्साएं तथा मार्ग निर्देशन इस तथ्य के प्रमाण हैं। वास्तव मे, आयुर्विज्ञान, चिकित्सा-मनोविज्ञान और अप्रकृत मनोविज्ञान का विकास सफल केस अध्ययनों के परिणामस्वरूप हुआ है। केस-अध्ययन विसामान्य व्यवहार के समुचित अवबोध के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण उपागम है। विशेष समस्यात्मक व्यवहारों अथवा कुसमजन के जटिल रूपों के कारकों की जानकारी के लिए केस अध्ययन अत्यावश्यक हो जाता है। इस प्रकार उत्तम व्यवहार अथवा विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति की प्रकृति तथा समजन की जानकारी केस-अध्ययन के बिना नहीं हो सकती। समस्या सदा व्यष्टिगत होती है। अतः व्यष्टिपरक अध्ययन अपरिहार्य है तथा एक व्यावहारिक आवश्यकता है।

केस-अध्ययन दत्त :

किसी भी केस के सम्बन्ध मे दत्त सकलन प्रारम्भ करने से पूर्व उस केस के सब पहलुओं की सूची बना लेनी चाहिए। अर्थात् मुख्य-मुख्य क्षेत्र निर्धारित कर लेने चाहिए। फिर प्रत्येक क्षेत्र या पहलू से सबंधित समग्र जानकारी प्राप्त करने-हेतु केस की विशेषता को ध्यान मे रखकर पद्धतियों और उपकरणों का चयन करना चाहिए। फिर केस की प्रकृति को दृष्टि मे रखकर इन पद्धतियो और उपकरणों के उपयोग का क्रम निर्धारित करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी समस्यात्मक बालक का अध्ययन करना है तो दत्त सकलन की पद्धतियां, उपकरण और सामग्रियां होंगी - साक्षात्कार (बालक से, माता-पिता से, अध्यापकों से, मित्रों आदि से जोकि उपयोगी जानकारी दे सकें), मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं (बुद्धि-परीक्षा, अभिवृत्ति-परीक्षा, रुचि-परीक्षा, व्यक्तित्व-परीक्षा आदि), प्रेक्षण, संचित अभिलेख, शैक्षिक उपलब्धि आदि। यह निश्चित करना चाहिए कि पहले किस पद्धति या उपकरण का उपयोग किया जाए।

उसके पश्चात् किस पद्धति या उपकरण का। उदाहरण के लिए यदि समस्यात्मक बालक बहुत अधिक संकोची है तो साक्षात्कार से (बालक से) दत्त संकलन प्रारम्भ करना अनुपयोगी होगा क्योंकि अपरिचित व्यक्ति से साक्षात्कार ऐसे बालक का एक निराशाजनक अनुभव होगा और वह शेष परीक्षाओं को देते समय अवरोधित (इनहिबिटेड) हो जाएगा। अत: सबसे पहले चित्र सम्बन्धी पद्धति का उपयोग बालक से विश्वासपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने मे तथा खुलकर बात करने के लिए प्रेरित करने मे सहायक होगा। इसके विपरीत किसी उद्दण्ड बालक का केस-अध्ययन यदि मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के उपयोग से किया जाएगा तो विद्रोही प्रवृत्ति के कारण वह मनोयोग से परीक्षा नहीं देगा। हो सकता है वह गलत सूचना दे। परन्तु यदि प्रारम्भ में साक्षात्कार कर उसकी कठिनाइयो, शिकायतो और समस्याओ को ध्यानपूर्वक और सहानुभूति से सुना जाएगा तो वह अनुसन्धानकर्ता के प्रति आकर्षित हो सकता है। स्पष्ट है, केस की प्रकृति के अनुरूप सावधानी से पद्धतियों और उपकरणो का चयन और उपयोग का अनुक्रम निर्धारित करना चाहिए। केस अध्ययन एक सुनियोजित खोज है।

प्रत्येक केस स्वयं मे अद्वितीय है। इसलिए कोई एक रूपरेखा सब केसों के लिए नहीं बताई जा सकती। कोई भी दो व्यक्ति एक से नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति का अद्वितीय विकासात्मक इतिहास है। अत. यह कहा नहीं जा सकता कि केस अध्ययन मे कौन-कौन से पद सब के लिए होने चाहिए तथा एकत्रित दत्त सामग्री को किस आकार मे व्यवस्थित करना चाहिए? कोई भी पद तथा कोई भी रूप जो समस्या के लिए उपयुक्त हो अपना लेना चाहिए। नमूने के रूप में किसी भी अपराधी छात्र के केस अध्ययन के सोपान, एकत्र की जाने वाली दत्त सामग्री के प्रकार और केस अध्ययन के विवरण की रूपरेखा नीचे दी गई है।

सोपान :

(१) छात्र के व्यक्तित्व और पर्यावरण से सम्बन्धित सभी पहलुओं की सूची तैयार करना।

(२) इन पहलुओं के बारे मे दत्त संकलन-हेतु पद्धतियों और उपकरणों का चयन करना तथा उनके उपयोग का क्रम निर्धारित करना। उपलब्ध लेख्यों का अध्ययन करना।

(३) निर्धारित क्रम के अनुसार छात्र के बारे में दत्त संकलन करना।

(४) दत्त का विश्लेषण करना, अर्थात् उचित कोटियो में वर्गीकृत करना। भिन्न-भिन्न स्रोतों से प्राप्त दत्त सामग्री की तुलना करना।

(५) छात्र के बारे मे सम्पूर्ण एकत्रित सामग्री को ध्यान मे रखकर प्रत्येक प्रकार के दत्त का अर्थापन (इण्टरप्रिटेशन) करना। भिन्न-भिन्न स्रोतों से प्राप्त दत्त सामग्री के अर्थापनों के बाद उनमें संगति (कॉसिस्टेन्सी) का अध्ययन करना। सम्पूर्ण

दत्त और व्यक्तित्व की अर्थापन संगति पूर्ण होनी चाहिए। यह विश्वसनीयता का द्योतक है। भिन्न-भिन्न दत्तो मे लक्षणविशेष के द्योतकों (इण्डीकेटर्स) को अलग-अलग कर लेना चाहिए और सम्पूर्ण व्यक्तित्व का संगतिपूर्ण चित्र प्रस्तुत करना चाहिए।

(६) समस्या का निदान करना।

(७) उपचार के लिए कार्यक्रम का प्रस्ताव रखना।

(८) कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए अनुवर्ती अध्ययन (फॉलोअप स्टडी) करना चाहिए।

केस-अध्ययन एक व्यावहारिक आवश्यकता है। उसी को ध्यान में रखकर ऊपर के पद लिखे हुए हैं। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि जिस क्रम से यह लिखे हैं समय की दृष्टि से भी वही क्रम इन सोपानों का होना चाहिए। अध्ययन की आवश्यकता के अनुसार एक से अधिक पदों का कार्य एकसाथ एक दूसरे के पूरक के रूप में हो सकता है। कभी-कभी केस-अध्ययन अध्यापकों द्वारा बालक के बारे में बताई गई गम्भीर समस्या के अध्ययन के लिए किया जाता है। परन्तु गहराई में घुसने पर पता लग सकता है कि जो समस्या बताई गई है वह तो एक परिणाम या चिह्न मात्र है और मूल समस्या तो भिन्न है। मूल समस्या की जानकारी तो सम्पूर्ण सम्बन्धित दत्त संकलन और विश्लेषण के बाद मालूम होती है।

नव अनुसन्धानकर्ता को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी केस को खुले मन से देखना चाहिए। पहले से ही कोई निश्चित मत नहीं बना लेना चाहिए। अनुसन्धान के द्वारा प्रकाश मे आए तथ्यों के अनुसार अपने चिन्तन को बदलने के लिए तैयार रहना चाहिए। संक्षेप में, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। होता यह है कि समस्याएं अध्यापक या माता-पिता बताते हैं जो मनोवैज्ञानिक नहीं हैं, अतः उनके मत और निष्कर्ष गलत हो सकते हैं। उनके द्वारा अभिव्यक्त मतों का प्रभाव नव अनुसन्धानकर्ता के मन पर नहीं पड़ना चाहिए। उसका लक्ष्य तो तथ्यों की खोज करना है; अध्यापकों के मत की पुष्टि करना नहीं है।

दत्त सामग्री के प्रकार :

समस्या बनाए जाने के बाद यह पता करना चाहिए कि किन स्थितियों में अपराधी व्यवहार होता है। अपराधी व्यवहार की प्रकृति तथा जिन परिस्थितियों मे यह व्यवहार होता है उनके बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। विगत घटनाएं एकत्रित करनी चाहिए। समस्या का इतिहास मालूम करना चाहिए। सबसे पहले कब अपराधी व्यवहार हुआ ? उसके कारण क्या थे ? उसको ठीक करने के लिए उस समय क्या किया गया ? उसके बाद से सुधारने के लिए क्या-क्या किया जाता रहा है ? अपराधी छात्र के सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रकार की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

आर्थिक-सामाजिक स्तर तथा घर के सदस्यों का शैक्षिक स्तर और वर्तमान अध्ययन के प्रति उनका दृष्टिकोण। उनके द्वारा प्राप्त सहयोग। माता-पिता और बालक के सम्बन्ध (क्या बालक अतिरक्षित (ऑवरप्रॉटेक्टेड) अथवा तिरस्कृत है? क्या उसके आचरण को सुधारने के लिए माता-पिता दण्ड का अधिक उपयोग करते हैं? माता-पिता द्वारा बालक को अनुशासित करने के तरीकों की बालक में क्या प्रतिक्रिया होती है? बालक की माता-पिता के प्रति अभिवृत्ति, इत्यादि)।

माता-पिता की संवेगात्मक प्रकृति। माता-पिता की अध्यापकों, विद्यालय तथा गृहकार्य के प्रति अभिवृत्ति, *माता-पिता का पड़ोसियों से सम्बन्ध, बालक के* पड़ोसियों से सम्बन्ध (किस प्रकार के मित्र हैं?) घर के मकान की तथा पड़ौस में जीवन-निर्वाह की दिशाएं (मनोरंजन की सुविधाएं, आदि)।

(६) स्कूल का पर्यावरण :

कक्षा में सहपाठियों से समजन (समाजमिति (सोसिअमेट्री) के परिणाम : कक्षा में उसकी सामाजिक प्रस्थिति; क्या वह उपेक्षित है? लोकप्रिय है? छात्रों की उसके प्रति अभिवृत्तियां; स्कूल की क्रियाओं में छात्र का भाग-ग्रहण।

छात्र की मित्र मण्डली के क्रियाकलाप; अध्यापकों की बालक के प्रति अभिवृत्ति; अन्य कोई विशेष बात।

केस-अध्ययन का विवरण :

आधुनिक प्रवृत्ति संक्षिप्त केस-विवरण प्रस्तुत करने की है। केस-अध्ययन का विवरण वास्तव में एक मनोवैज्ञानिक द्वारा लिखा एक व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रतिवेदन है। अतः अनुसन्धानकर्ता को मनोवैज्ञानिक के समान विवरण प्रस्तुत करना चाहिए। विवरण का निश्चित स्वरूप क्या हो? सबके लिए बिल्कुल एक समान रूप तो नहीं हो सकता। परन्तु मोटे तौर में चार उपशीर्षकों में सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है जो निम्न लिखित हैं—

(१) समस्या :　　(केस अध्ययन की समस्या को एक वाक्य में यहां पर लिखना चाहिए ताकि अनुसन्धान का उद्देश्य मालूम हो सके।

(२) परिचयात्मक : (यहां पर निम्नलिखित प्रकार से छात्र के बारे में सम्पूर्ण जानकारी संक्षेप में दे देनी चाहिए)

नाम[१]........................ आयु........................ लिंग........................

जाति........................ धर्म........................ वर्ग........................

---

१. यदि विवरण गुप्त न हो तो भी वास्तविक नाम नहीं लिखना चाहिए क्योंकि केस को अथवा उसके संबंधियों को आपत्ति हो सकती है। *मानहानि का दावा कर* सकते हैं। अनुसन्धानकर्ता का लक्ष्य तथ्यान्वेषण है। परिचयात्मक जानकारी तो अनुवर्ती अध्ययन तथा उपचार के लिए तथा पाठकों के लिए आवश्यक होती है। अतः सांकेतिक नाम (जैसे 'क') अथवा बदला नाम लिखना चाहिए।

स्कूल........................कक्षा........................

पिता का व्यवसाय....................आयु...... ......

माँ की आयु...............

[1]भाई-बहिन : उससे बड़े भाई.......आयु.......उससे छोटी बहिन.......आयु.......

उससे छोटे भाई.......आयु.......उससे बड़ी बहिन.......आयु.......

उपलब्धि-अभिलेख : ....

बुद्धि लब्धि..

बताई गई समस्या : (मूर्त घटनाओं का उल्लेख करते हुए समस्या के इतिहास का वर्णन करना चाहिए। कब पहले पहल देखी गई? उस समय क्या उपाय किया गया? फिर कौन-कौन सी घटनाएं घटीं? किन-किन परिस्थितियों में अपराधी व्यवहार होता है? क्या क्या उपाय किए जाते रहे हैं? समस्या बताने वालों के शब्दों को उद्धृत कर संक्षेप में वस्तुनिष्ठ वर्णन करना चाहिए। अपना कोई अभिमत नहीं लिखना चाहिए)।

(३) अध्ययन की प्रविधि :

(अब यहां पर प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जिस क्रम से केस-अध्ययन किया गया उसी क्रम का नाम लिख देना चाहिए जैसे पहला पद छात्र से साक्षात्कार करना था दूसरा पद संचित अभिलेखों का अध्ययन था, तीसरा पद माता-पिता से साक्षात्कार था) इन्हें निम्नलिखित प्रकार से लिखना चाहिए—

पद—१ : छात्र से साक्षात्कार

पद—२ : संचित अभिलेखों का अध्ययन

पद—३ : माता-पिता से साक्षात्कार

इसी प्रकार अन्य पदों के नाम अंकित किए जाने चाहिएं। प्रत्येक पद के तर्क प्रस्तुत करने चाहिएं। किन-किन पद्धतियों का चयन किया गया? क्यों चयन किया गया? उनके उपयोग के क्रम के पीछे हेतु क्या था? इत्यादि भी लिखना चाहिए।

(४) केस के सम्बन्ध में संकलित दत्त, उसका विश्लेषण और अर्थापन :

जिन स्रोतों से दत्त एकत्रित किया गया है उनका पृथक् पृथक् उल्लेख कर विश्लेषण और अर्थापन प्रस्तुत करना चाहिए। पद्धतियों और उपकरणों के शीर्षकों के नीचे संक्षेप में परिणाम लिखकर उनका अर्थापन किया जा सकता है। एक दूसरा तरीका भी हो सकता है। ऊपर दत्त सामग्री के नीचे लिखे हुए शीर्षकों (शारीरिक स्वास्थ्य, शैक्षिक स्तर, बौद्धिक स्तर, व्यक्तित्व आदि) के अनुसार भी दत्त प्रस्तुत कर

१. भाइयों और बहिनों की संख्या और आयु ताकि केस का अपने परिवार में स्थान का पता लगे।

पर्यापन किया जा सकता है। परन्तु दत्त सामग्री मुख्य विवरण में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए। मूल दत्त सम्पूर्ण विवरण के अन्त में परिशिष्ट के रूप में देना चाहिए। सभी मूल दत्त देना आवश्यक नहीं। केवल वही देना चाहिए जिसका पर्यापना विवरण में है और जिसको देखे बिना पर्यापन स्पष्ट नहीं हो सकता।

(५) निदान :

सम्पूर्ण उपलब्ध प्रमाणों (दत्त) के आधार पर समस्या के कारणों का वर्णन करना चाहिए। यह बहुत कठिन कार्य है इसमें बहुत अनुभव की आवश्यकता होती है। इसलिए निदान करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए।

(६) उपचार :

उपचार के लिए सुझाव प्रस्तुत करने चाहिए और अनुवर्ती अध्ययन की योजना भी प्रस्तुत कर देनी चाहिए।

(७) प्रतिवेदन का सारांश :

ऊपर लिखे सम्पूर्ण विवरण का ऐसा सारांश प्रस्तुत करना चाहिए जिसके पढ़ने से व्यक्तित्व के सम्बन्ध में संक्षेप में सभी जानकारी हो जाए। समस्या के निदान और उपचार के लिए सुझाव लिखने चाहिए। यह सारांश साधारणतया पौन पृष्ठ से अधिक नहीं होना चाहिए।

विकासात्मक अध्ययन :

विकासात्मक अध्ययन का लक्ष्य है गर्भ धारण के समय से जीवन पर्यन्त तक के मनुष्य के विकास का अध्ययन करना। विकास के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया जाता है जैसे, शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, नैतिक अथवा धार्मिक पहलू। विकासात्मक अनुसन्धान में केवल किसी एक पहलू का अथवा केवल एक लक्षण विशेष के विकास का अध्ययन भी किया जा सकता है, अथवा व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का एकसाथ अध्ययन भी किया जा सकता है। यदि सभी पहलुओं का एक-साथ अध्ययन किया जाता है तो विकासात्मक अध्ययन केस-अध्ययन का रूप ले लेता है।

विकासात्मक अध्ययन अनुसन्धान की कोई विधि नहीं है वरन् अनुसन्धान का एक क्षेत्र है। विकासात्मक अनुसन्धान के लिए अनुसन्धान की अनेक विधियों का उपयोग किया जा सकता है। सर्वेक्षण-विधि और प्रायोगिक-विधि के द्वारा विकासात्मक अध्ययन हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रेक्षणात्मक विधि भी विकासात्मक व्यवहार के अध्ययन के लिए बहुत उपयुक्त है।

शिक्षा की प्रगति के लिए विकासात्मक अनुसन्धान एक धुरी है। बालक की शिक्षा की प्रत्येक प्रक्रिया उसके विकासात्मक स्तर के अनुकूल होनी चाहिए। विकासात्मक स्तर (डेवेलॉपमेण्टल लेवल) की समुचित जानकारी के बिना किसी भी शिक्षा की योजना नहीं हो सकती। अध्यापन-विधि बालक के विकास के अनुकूल होनी

चाहिए। इसी प्रकार पाठ्यक्रम की रचना, अनुशासित करने के तरीके, प्रशासनिक योजनाएं, सभी के लिए विकासात्मकस्तर की जानकारी आवश्यक है। व्यक्ति का विकास शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों के ही अध्ययन का विषय है।

विकासात्मक अनुसन्धानों के परिणामस्वरूप अनुसन्धान की दो पद्धतियाँ उभर आई हैं। एक है, प्रशान्तर खण्डात्मक पद्धति (क्रॉस सेक्सनल स्टडी) और दूसरी है लम्बात्मक-पद्धति दोनों का विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रशान्तर खण्डात्मक-पद्धति :

अनुसन्धान के इस विधान के द्वारा समान आयु के व्यक्तियों की जनसंख्या के प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श (रिप्रजेंटेटिव सेम्पल) का मापन किया जाता है।

उदाहरणस्वरूप पांच वर्ष के बच्चों के प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श की लम्बाई, भार अथवा व्यक्तित्व का कोई भी लक्षण अथवा सभी लक्षणों का मापन किया जा सकता है और केन्द्रीय प्रवृत्तियों की गणना की जा सकती है। ये गणनाएं पांच वर्ष की आयु की सामान्य लम्बाई, सामान्य भार अथवा लक्षण विशेष की सामान्य विशेषताएं मानी जाएगी। इस प्रकार प्रशान्तर-खण्डात्मक विधान के द्वारा विकास के सामान्य-स्तर मालूम किए जा सकते हैं। किसी आयु विशेष अथवा अवस्था विशेष में सामाजिक व्यवहार, संवेगात्मक व्यवहार, नैतिक व्यवहार आदि की सामान्य विशेषताएं ज्ञात की जाती हैं। दूसरे शब्दों में आयु अनुसार (वर्षानुसार या मासानुसार) अथवा कक्षानुसार विकासात्मक प्रवृत्तियों का पता लगाया जाता है। प्रशान्तर खण्डात्मक विधान के द्वारा एक ही समय में भिन्न-भिन्न आयु के बारे में एकत्रित दत्त का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। यह इस विधान का बहुत बड़ा लाभ है। इसमें एक साथ यह पता लग जाता है कि समय बीतने के साथ-साथ क्या-क्या परिवर्तन होते जाते हैं। परन्तु यह जानकारी इस मान्यता पर आधारित है कि समय बीतने के साथ-साथ अन्य बातें समान रहती हैं। उदाहरण के लिए, तीन वर्ष के बच्चों से उसी प्रकार के दत्त छः वर्ष के बाद एकत्रित होंगे जो इस समय नौ वर्ष की आयु के बच्चों के द्वारा प्राप्त हुए हैं। इसके विपरीत इस विधान की यह भी मान्यता है कि नौ वर्ष के बच्चे छः वर्ष पूर्व उसी प्रकार के दत्त प्रस्तुत करते जो इस समय तीन वर्ष के बच्चों ने प्रस्तुत किए हैं। परन्तु छः वर्ष पूर्व जो पर्यावरण था उससे भिन्न आज का पर्यावरण है। अतः समय बीतने के साथ-साथ पर्यावरण बदलता रहता है। बदले हुए पर्यावरण के अनुसार सामान्य स्तर भिन्न-भिन्न आएगे। यह बात भी सत्य है कि किसी आयु विशेष में सामान्यतः सब बालकों में कुछ समान विशेषताएं पाई जाती हैं।

लम्बवत् अनुसन्धान-पद्धति :

लम्बवत्-पद्धति के द्वारा उन्हीं व्यक्तियों का भिन्न-भिन्न समयों में मापन किया जाता है। उदाहरण के लिए, चार वर्ष के बच्चों का मापन पाँच वर्ष में पुनः किया जाएगा, फिर छः वर्ष में किया जाएगा, फिर दस वर्ष की आयु में किया

जाएगा। सम्बवत् अध्ययन दो प्रकार का है। एक अल्पकालीन और दूसरा दीर्घकालीन। अल्पकालीन लम्बवत् अध्ययन मे उसी आयु के व्यक्तियों का पुनः मापन अल्पकाल के बाद होता है। दीर्घकालीन लम्बवत् अध्ययन मे अनुसन्धानकर्ता पहली बार दत्त सकलन करने के बाद अन्तिम बार दत्त संकलन के लिए कई वर्ष तक रुका रहता है अथवा कई वर्षों तक लगातार दत्त सकलन करता रहता है। इस प्रकार के अध्ययन में बहुत धैर्य की आवश्यकता है। इसीलिए अल्पकालीन अध्ययन अधिक हुए हैं और दीर्घकालीन बहुत ही कम। दीर्घकालीन अध्ययनों मे टर्मन के द्वारा प्रतिभाशाली व्यक्तियों का २५ वर्ष तक किया गया अध्ययन प्रसिद्ध है। उन्होंने अपना अध्ययन १९२० में प्रारम्भ किया। एक सहस्र प्रतिभाशाली बालकों के बौद्धिक और व्यक्तित्व सम्बन्धी लक्षणों का मापन किया फिर उन्हीं का पाँच वर्ष बाद, पच्चीस वर्ष बाद और पचपन वर्ष बाद मापन किया। उनके अनुसन्धान प्रतिवेदन के पाँच भाग प्रकाशित हो चुके हैं। यह अध्ययन बडे परिश्रम से नियोजित और कार्यान्वित लम्बात्मक अनुसन्धान है जिसके द्वारा प्रतिभाशाली व्यक्तियों के बारे मे अवबोध बढा है। दूसरा महत्वपूर्ण लम्बात्मक अनुसन्धान बेली द्वारा किया गया। उन्होंने बारह वर्ष के अन्तर में उन्ही व्यक्तियों की बुद्धियों का पुन. मापन किया।

अल्पकालीन अध्ययन की कमी यह है कि अल्पकाल में परिवर्तन अधिक नहीं होते। दूसरी कठिनाई यह है कि यदि हम शिक्षा के किसी विशेष कार्यक्रम के प्रभाव का मूल्यांकन करना चाहें तो अल्पकालीन अध्ययन अनुपयोगी होगा क्योंकि व्यक्तित्व के स्थाई लक्षणों के विकास मे समय लगता है। शिक्षा के लक्ष्य भी अल्पकालीन नहीं हैं। जिस प्रकार का वयस्क नागरिक बना हुआ हम देखना चाहते हैं उसके लिए धैर्य चाहिए। दीर्घकालीन लम्बात्मक अध्ययन की मुख्य कठिनाई यह है कि शिक्षा की किसी भी नवीन योजना का मूल्यांकन करने के लिए अनेक वर्षों तक रुकना सम्भव नहीं होता। नवीन कार्यक्रम की उपयोगिता के सम्बन्ध में तथा उसको लागू करने के लिए शीघ्र निर्णय लेने की आवश्यकता पडती है। दीर्घकालीन अध्ययन की दूसरी कठिनाई यह है कि अनेक वर्षों के बाद पुन उन्हीं व्यक्तियों से सम्पर्क करना तथा उनको एकत्रित कर परीक्षाएं करना कठिन हो जाता है। उन्हीं व्यक्तियों का बार-बार मापन अनेक वर्षों तक करने से उनमे परीक्षा देने की चतुरता बढ़ जाती है। यह चतुरता परिणामों की तुलना में बाधक होती है। इन बाधाओं के होते हुए भी यह स्पष्ट है कि लम्बात्मक अध्ययन एक या कुछ व्यक्तियों का तो हुआ है परन्तु बहुत बड़े पैमाने पर नहीं हुआ है। यह दुर्भाग्य का विषय है।

-प्रसान्तर खण्डात्मक और लम्बात्मक पद्धतियों की तुलना :

दोनों ही पद्धतियों से लाभ हैं, और दोनों की ही अपनी-अपनी सीमाएं हैं। प्रसान्तर खण्डात्मक अध्ययन का मुख्य लाभ यह है कि कम समय में अनेक प्रतिनिधि प्रतिदर्शों की तुलना कर विकासात्मक अध्ययन पूर्ण किया जा सकता है। इस पद्धति के

उपयोग से दो वर्ष में यह कार्य किया जा सकता है जिसे लम्बात्मक-पद्धति द्वारा करने में दस वर्ष लगेंगे। इसके अतिरिक्त प्रथम बार की परीक्षाएं देने के अवसर आने से परीक्षा देने की चतुराई विकसित नहीं हो सकती और उसका अनुचित प्रभाव परिणामों पर नहीं पड़ सकता। परन्तु इसकी सबसे अधिक दुर्बलता यह है कि व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न आयुओं की तुलना एक दृष्टि से विकासात्मक प्रवृतियों का उचित द्योतक नहीं है, क्योंकि जिनकी आयु अधिक है उनकी वही विशेषताएं पहले नहीं रही होंगी जो अब छोटी आयु के व्यक्तियों की हैं। समाज का पर्यावरण बदलता जा रहा है। परिस्थितियों का सामाजिक विकास, नैतिक विकास, बौद्धिक विकास और संवेगात्मक विकास पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्तान्तर समूह पूरी प्रकार से तुलना के योग्य नहीं हो सकते। मान लीजिए कि आठ वर्ष के बच्चों की बुद्धि की तुलना अठारह वर्ष के व्यक्तियों से की जाती है। यदि स्कूलों और कॉलेजों से विद्यार्थी छांटे जाते हैं तो प्रतिदर्शों की तुलना नहीं की जा सकती। स्कूल जाने वाली जनसंख्या का कुछ भाग हायरसेकण्डरी उत्तीर्ण करने पर या उसके बाद पढ़ाई छोड़ देता है। अतः तुलना के लिए प्रतिदर्श समान नहीं होंगे।

लम्बात्मक अनुसन्धान का एक प्रबल पक्ष यह है कि प्रतिदर्श पूर्ण रूप से तुलना के योग्य होता है क्योंकि प्रतिदर्श में वही व्यक्ति भिन्न-भिन्न आयुओं में रहते हैं। स्पष्ट है कि दोनों प्रकार के अध्ययनों के परिणाम एक से नहीं आ सकते। इस बात के प्रमाण भी हैं। उदाहरण के लिए, अन्तान्तर खण्डात्मक अध्ययनों से यह पता लगा है कि बीस वर्ष से अधिक आयु बढ़ने पर बुद्धि के प्राप्तांक घटने लगते हैं। बहुत समय तक मनोवैज्ञानिकों का यही विश्वास था कि बीस वर्ष हो जाने पर बुद्धि का बढ़ना केवल रुकता ही नहीं है, घटने भी लगता है। परन्तु १९५३ में ओवन[1] के तीस वर्षीय अनुवर्तीय अध्ययन (फॉलो-अप-स्टडी) के परिणामों ने इस मत का खण्डन किया। १२७ व्यक्तियों की पहली बुद्धि परीक्षा १६ वर्ष की आयु में ली गई थी और उन्हीं व्यक्तियों की दूसरी बुद्धि परीक्षा ५० वर्ष की अवस्था में ली गई। प्राप्तांक पहले से बढ़ गए थे। इसके पश्चात् नैनसी बेली[2] के द्वारा किए गए लम्बात्मक अनुसन्धान के परिणाम भी इसी प्रकार के आए। १२ वर्ष के अन्तर से एक हजार व्यक्तियों की दो बार बुद्धि परीक्षा ली गई। १२ वर्ष के पश्चात् दूसरी परीक्षा में सबके प्राप्तांक बढ़े हुए थे। लम्बात्मक अनुसन्धानों की प्रमुख आलोचना यह है कि

1 Owens, W. A.: "Age and Mental Abilities: A Longitudional study" Genetic Psychological Monography No. 48, 1953, pp. 3-54.

2. Baley, N: "On the Growth of Intelligence. "American Psychologist, Vol. 10, 1955, pp. 805-818.

एक बार परीक्षा देने का अनुभव हो जाता है और कुशलता में वृद्धि हो जाती है।

लम्बात्मक अध्ययनों का एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि यदि वर्षानुवर्ष पुनः-पुनः मापन किया जाय तो भिन्न-भिन्न वर्षों के दत्तों में क्रमिकता रहती है और विकासात्मक अध्ययन के परिणाम वास्तविकता के निकट अधिक होंगे क्योंकि प्रतिवर्ष वही व्यक्ति प्रतिदर्श में होंगे, परन्तु एक हानि यह है कि काफी समय बीतने नवीन एवं अधिक परिष्कृत यन्त्रों के आविष्कारों के कारण अनुसन्धानकर्ता संकट में पड़ जाएगा। यदि नवीन यन्त्रों का उपयोग करता है तो परिणामों की तुलना पहले के दत्तों से नहीं की जा सकती क्योंकि पहले के दत्त पुराने यन्त्रों के उपयोग के परिणाम थे। पुराने यन्त्रों का उपयोग अब नई खोजों से पता लगी उनकी दुर्बलताओं के कारण वह नहीं कर सकता।

प्रत्यान्तर खण्डात्मक अध्ययन की हानि यह है कि बड़े पैमानों के अध्ययन में व्यष्टित्व की उपेक्षा हो जाती है। क्योंकि समूह का मापन करने पर केवल औसतांक लिए जाते हैं। इसके विपरीत लम्बात्मक अनुसंधानों के द्वारा विकास की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का पता लगता है। यदि उन्हीं व्यक्तियों के सभी पहलुओं का बार-बार मापन किया जा रहा है तो विकास के गतिशील तत्वों और कारकों का अच्छी प्रकार पता लग सकता है।

सारांश

केस-अध्ययन एक केस का सबसे अधिक गहन और व्यापक मूल्यांकन है। उपलब्ध सभी उपयुक्त विधियों, पद्धतियों और उपकरणों का यथासम्भव उपयोग कर केस की वर्तमान परिस्थिति के सम्बन्ध में सभी प्रकार की जानकारियों और उस परिस्थिति को निर्धारित करने वाले कारक तथ्यों का पता लगाया जाता है।

केस-अध्ययन व्यक्तित्व अध्ययन के लिए तथा विकृत व्यवहार के निदान और उपचार के लिए बहुत ही लाभकारी विधि है। सामान्यतः सम्पूर्ण मनोचिकित्सा शास्त्र, व्यक्ति अध्ययनों और उनके सफल उपचारों के परिणामस्वरूप विकसित हुआ है।

केस-अध्ययन की मुख्य कठिनाई यह है कि सामाजिक विज्ञानों में व्यक्ति अध्ययन के लिए उपलब्ध सभी उपकरण और सभी पद्धतियाँ वैज्ञानिक नहीं हैं। कुछ विषयनिष्ठ पद्धतियाँ हैं। केस के इतिहास की जानकारी बहुत कुछ मनुष्यों की स्मृतियों और मतों पर निर्भर करती है। सभी तथ्य नहीं मिलते हैं। अच्छे केस-अध्ययन के लिए सिद्धान्तवादों की जानकारी आवश्यक है। अतः नौसिखिया इसे नहीं कर सकता है।

केस के बारे में सभी प्रकार के दत्त संकलन के लिए सबसे पहले केस के

पहलुओं की सूची तैयार कर लेनी चाहिए, फिर केस की प्रकृति को ध्यान में रखकर पद्धतियों का चयन करना चाहिए और उनका क्रम निर्धारित करना चाहिए। फिर निर्धारित क्रम से दत्त-संकलन कर उसका विश्लेषण और अर्थापन करना चाहिए और केस की समस्याओं के निदान तथा उपचार के लिए कार्यक्रम प्रस्तावित करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो बाद में अनुवर्ती अध्ययन भी करना चाहिए। प्रत्येक केस स्वयं मे अद्वितीय है। अतः सब केसों के अध्ययनों के लिए एक सी रूपरेखा नहीं हो सकती, परन्तु नमूने के रूप मे कहा जा सकता है कि एक अपराधी बालक के केस अध्ययन के लिए छः प्रकार की दत्त सामग्रियाँ एकत्रित करनी चाहिए वे हैं : (१) शारीरिक स्वास्थ्य (२) शैक्षिक स्तर (३) बौद्धिक स्तर (४) व्यक्तित्व (५) घर तथा पड़ोस का पर्यावरण (६) स्कूल का पर्यावरण।

केस-अध्ययन के प्रतिवेदन के चार शीर्षक हो सकते हैं। (१) परिचयात्मक जानकारी (२) प्रविधि (३) संकलित दत्त का विश्लेषण और अर्थापन (४) निदान तथा उपचार। अन्त मे प्रतिवेदन का सारांश भी लिख देना चाहिए।

विकासात्मक अध्ययन

विकासात्मक अध्ययन के अन्तर्गत गर्भधारण के समय से जीवन के अन्त तक के विकास का अध्ययन आता है। विकासात्मक अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है। (१) अक्षान्तर खण्डात्मक पद्धति द्वारा, (२) लम्बात्मक पद्धति द्वारा। पहली पद्धति मे एक ही समय में भिन्न आयु की जनसंख्या के प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्शों के बारे मे एकत्रित दत्त का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। अन्ववत्-पद्धति मे व्यक्तियों का उनकी भिन्न-भिन्न आयु में मापन किया जाता है। अनेक वर्षों तक उन्हीं व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है। दोनों ही पद्धतियों के लाभ हैं और उनकी अपनी-अपनी सीमाएं हैं। अक्षान्तर खण्डात्मक अध्ययन मे समय की बचत होती है और एक ही समय में भिन्न-भिन्न आयुओं की विशेषताओं का मापन और तुलना हो जाती है, परन्तु इसकी कमी यह है कि भिन्न-भिन्न आयुओं की तुलना विकासात्मक प्रवृत्ति का द्योतक नहीं है और प्रतिदर्श परस्पर तुलनीय नहीं होते। लम्बात्मक अध्ययन में प्रतिदर्श पूर्णरूप से तुलनीय होता है क्योंकि प्रतिदर्श मे वही व्यक्ति भिन्न-भिन्न आयुओं में रहते हैं। इस कारण भिन्न-भिन्न आयुओं के दत्तों में क्रमिकता रहती है और विकास की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का पता लगता है। परन्तु हानि यह है कि परिस्थिति के बदलने के साथ-साथ तथा नई खोजों के परिणामस्वरूप पुराने यंत्र उपयुक्त नहीं रहते।

अभ्यास-कार्य

१. केस-अध्ययन किसे कहते हैं ? केस-विधि और केस-कार्य से यह किस प्रकार

भिन्न हैं? केस-अध्ययन अनुसन्धान की अन्य विधियों से किस प्रकार भिन्न हैं?

२. केस-अध्ययन की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए बताइए कि केस दत्त का संगठन और अर्थापन किस प्रकार किया जाना चाहिए?

३. कक्षा से भागने वाले बालक का केस-अध्ययन आप कैसे करेंगे? प्रारंभ से अन्त तक सभी सोपानों का उल्लेख कीजिए।

४. यदि आप बाल विकास का अध्ययन करना चाहेंगे तो कौनसी विधि का उपयोग करेंगे और क्यों? अनुसन्धान की रूपरेखा तैयार कीजिए।

७

प्रायोगिक विधि

प्रायोगिक विधि ज्ञान प्राप्त करने की सबसे शक्तिशाली वैज्ञानिक विधि है क्योंकि इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान उच्च कोटि की प्रामाणिकता पर आधारित और प्रशुद्ध होता है। जनसाधारण में एक भ्रान्त धारणा है। वे प्रायोगिक विधि को *वैज्ञानिक विधि का पर्याय समझ लेते हैं और इसे एकमात्र वैज्ञानिक विधि समझते हैं।* परन्तु वास्तव में वैज्ञानिक विधि का व्यापक अर्थ है जिस पर हम प्रथम अध्याय में चर्चा कर चुके हैं। प्रयोग तो वैज्ञानिक विधि का एक रूपमात्र है परन्तु यह रूप सबसे अधिक परिष्कृत एवं नियन्त्रित है। यह भविष्योन्मुख है। ऐतिहासिक विधि भूतकाल की घटनाओं का अध्ययन करती है ताकि वर्तमान का उचित परिप्रेक्ष्य में अवबोध हो सके। सर्वेक्षण-विधि प्राकृतिक पर्यावरण में किसी ज्ञेय (तथ्य) की वर्तमान दशाओं अथवा प्रस्थिति का अध्ययन करती है। प्रायोगिक विधि किसी भी ज्ञेय के घटन (ओकुरेन्स) को प्रभावित करने वाले कारकों की खोज करती है ताकि उसको (घटन को) नियन्त्रित किया जा सके और उसकी (घटन की) प्रागुक्ति की जा सके। प्रायोगिक विधि में ऐसी नयी दशाएं और नई स्थितियां उत्पन्न की जाती हैं कि जिनका अस्तित्व पहले कभी नहीं था। *अर्थात्, प्रायोगिक स्थितियों का सृजन किया जाता है।* दूसरे शब्दों में, प्रयोगकर्ता प्राकृतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करता है। किसी भी प्राकृतिक स्थिति में किसी भी ज्ञेय (तथ्य या घटना) को अनेक कारक प्रभावित

करते हैं। उस ज्ञेय के घटित होने में इन सब कारकों में से प्रत्येक कारक का उचित प्रभाव जानने के लिए प्रयोगकर्ता ऐसी प्रायोगिक स्थिति की रचना करता है कि जिसमे एक बार मे केवल एक ही कारक क्रियाशील रहता है और शेष अन्य सब कारक स्थिर रहते हैं। दूसरे शब्दो मे, वह शेष सबको नियंत्रित करता है। नियंत्रण वैज्ञानिक विधि का केन्द्रीय और प्रबल पक्ष है। मान लीजिए कि एक कृषि वैज्ञानिक यह जानना चाहता है कि किसी रासायनिक तत्व का किसी पौधे के विकास मे क्या प्रभाव पडता है? किसी भी पौधे के विकास को प्रभावित करने वाले कारक हैं: सूर्य की किरणें, वायु, नमी, जल, मिट्टी के पोषण तत्व, इत्यादि। वह वैज्ञानिक एक ही जाति तथा एक ही आकार (वायु) के दो पौधे लेगा और उनको काँच की दो ट्यूबों में रखेगा। उनमे से हवा निकाल देगा और नमी भी निकाल देगा तथा उन्हें अन्धकार मे रखेगा। उस प्रकार प्रभावित करने वाले सब कारक हटा देगा। फिर वह उन पौधों मे से एक में उस रासायनिक तत्व को डालेगा जिसका प्रभाव वह जानना चाहता है। अब इस पौधे मे जो परिवर्तन होगा उसका वह मापन करेगा। यह परिवर्तन जो दूसरे पौधे मे नही होगा उस नवीन रासायनिक तत्व के प्रभाव का द्योतक होगा। इस प्रकार इस प्रयोग को उसी जाति के अन्य पौधों पर बार-बार दोहरा कर वह इस रासायनिक तत्व के प्रभाव का मापन करेगा। यदि सब प्रयोगों के परिणाम एक से आएगे तो उस रासायनिक तत्व का उस पौधे पर पड़ने वाले प्रभाव के परिमाण का निश्चित पता लग जायगा। प्रायोगिक अनुसन्धान का लक्ष्य किसी ज्ञेय का वर्णन और व्याख्या है तथा उसके घटन को नियंत्रित कर उसके भावी घटन की प्रागुक्ति करना है। ये लक्ष्य तभी पूर्ण हो सकते हैं जबकि हमें उन सारे कारकों की जानकारी हो जाए जो उस ज्ञेय के घटन को प्रभावित करते हैं। सब कारकों की जानकारी भौतिक विज्ञान में भी कठिन होती है, सामाजिक विज्ञान में तो अत्यधिक कठिन है क्योंकि प्रेरणा, रुचि, अभिवृत्ति, पूर्वानुभव आदि आन्तरिक कारकों पर नियन्त्रण दुष्कर है।

प्रयोगकर्ता यह खोज करना चाहता है कि किसकी उपस्थिति मे कोई ज्ञेय प्रकट होगा और किसकी उपस्थिति में वह नहीं प्रकट होगा। कार्य-कारण-संबध जानने के लिए दोनों ही पहलुओं का वह अनुसन्धान करता है। प्रायोगिक विधि की आधारभूत मान्यता है कि यदि "का" (कारक) के उपस्थित होने पर "ज्ञ" (ज्ञेय) घटित होता है और "का" के अनुपस्थित रहने पर "ज्ञ" घटित नहीं होता है तो "ज्ञ" और "का" दोनो एकसाथ ही उपस्थित और अनुपस्थित रहने चाहिएं। यदि "ज्ञ" का कारण 'का' है, तो "ज्ञ" और "का" मे किसी निश्चित गणितीय सिद्धान्त के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। यह परिवर्तन प्रत्यक्ष विलोम अथवा अन्य किसी प्रकार का हो सकता है। दूसरे शब्दो में, प्रायोगिक विधि अभिन्न सम्बन्धों का पता लगाना चाहती है।

स्वतन्त्र परिवर्ती, निर्भर परिवर्ती और मध्यवर्ती परिवर्ती :

स्वतन्त्र परिवर्ती (इण्डेपेण्डेंट वेरिएबल) और निर्भर परिवर्ती (डिपेण्डेंट वेरिएबल) के बीच इसी अभिन्न संबंध का पता लगाने के लिए ही प्रायोगिक अनुसन्धान किया जाता है। स्वतन्त्र परिवर्ती वह तत्व है जिसका मूल्यांकन प्रयोग के द्वारा किया जाता है। ऊपर दिए गए कृषि वैज्ञानिक के प्रयोग के उदाहरण में वह रासायनिक तत्व स्वतन्त्र परिवर्ती है। निर्भर परिवर्ती वह आधार या कसौटी है जिसके द्वारा स्वतन्त्र परिवर्ती के व्यवहार का मूल्यांकन किया जाता है। उक्त प्रयोग में पौधे की वृद्धि या ह्रास निर्भर परिवर्ती है क्योंकि इस वृद्धि अथवा ह्रास के द्वारा ही उस रासायनिक तत्व के प्रभाव का पता लगेगा। निर्भर परिवर्ती वह तत्व है जो प्रयोग-कर्ता द्वारा स्वतन्त्र परिवर्ती को प्रायोगिक स्थिति में प्रविष्ट करने अथवा हटाने या परिवर्तित करने के साथ ही साथ क्रमश: प्रकट होता है अथवा लुप्त होता है या परिवर्तित होता है। दूसरे शब्दों में, स्वतन्त्र और निर्भर परिवर्तियाँ वे परिवर्तियाँ हैं जिनमें अभिन्न सम्बन्ध है। यदि प्रयोग का विधान इस प्रकार किया गया है कि यह सम्बन्ध प्रत्यक्ष या सीधा है तो प्रयोग के उपरान्त जो भी परिवर्तन निर्भर परिवर्ती में होंगे वे स्वतन्त्र परिवर्ती के कारण हुए समझे जाएंगे। सामाजिक और शैक्षिक अनुसन्धानों में इस प्रकार के आदर्श प्रयोग की रचना करना बहुधा दुष्कर होता है। बहुत से अन्य परिवर्ती स्वतन्त्र परिवर्ती और निर्भर परिवर्ती के बीच आ जाते हैं जिनके कारण स्वतन्त्र परिवर्ती द्वारा निर्भर परिवर्ती पर पड़ने वाले प्रभाव को मापना दुष्कर हो जाता है। बीच में आने वाले इन परिवर्तियों को मध्यवर्ती परिवर्तियाँ (इण्टरवेनिंग वेरिएबल) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि उक्त प्रयोग में किसी एक ट्यूब में थोड़ी सी हवा निकलनी रह जाय अथवा कोई नमी रह जाय तो परिणाम सही नहीं आएगा। यदि अनुसन्धान का विषय दो अध्यापन-विधियों के द्वारा उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन है तो छात्रों की प्रेरणाएं, अध्ययन के प्रति उनकी अभिवृत्ति, इन दो भिन्न विधियों से पढ़ाने वाले अध्यापकों की पढ़ाने के प्रति रुचियों में अन्तर, इत्यादि ऐसे तत्व हैं जिन पर प्रयोगकर्ता नियन्त्रण नहीं रख सकता। अतः यह मध्यवर्ती परिवर्तियाँ हैं। इस उदाहरण में स्वतन्त्र परिवर्ती अध्यापन-विधियाँ हैं और निर्भर परिवर्ती उपलब्धि है। मध्यवर्ती परिवर्तियाँ वे तत्व हैं जो प्रायोगिक स्थिति में स्वतन्त्र परिवर्ती और निर्भर परिवर्ती के सम्बन्धों को एकाकी [1] बनाने में बाधा उत्पन्न करते हैं।

---

1. Isolate :— अर्थात् यही सम्बन्ध अकेला प्रायोगिक स्थिति में रहे अन्य कोई सम्बन्ध इसके साथ मिश्रित न रहे। यदि मिश्रित होगा तो इस सम्बन्ध का (अर्थात् स्वतन्त्र परिवर्ती और निर्भर परिवर्ती के मध्य सम्बन्ध का) मापन करना कठिन होगा।

किसी भी प्रायोगिक अनुसन्धान में स्वतन्त्र परिवर्ती को पहचानना साधारणतया सरल होता है क्योंकि समस्या की प्राक्कल्पना मे इसका उल्लेख रहता है, परन्तु स्वतन्त्र परिवर्ती के अंकों को पहचानना और प्रायोगिक अनुसन्धान का विधान इन अगों के पृथक्-पृथक् प्रभाव को पहचानने के लिए कठिन होता है। ऊपर दो अध्यापन-विधियों पर प्रयोग के उदाहरण में यह बिल्कुल स्पष्ट है कि स्वतन्त्र परिवर्तियाँ दो अध्यापन-विधियां हैं। परन्तु इन विधियों के घटकों के निर्धारण के लिए व्यावहारिक परीक्षण की आवश्यकता है तथा कक्षा-कक्ष में अन्तक्रिया के विश्लेषण [1] की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त अध्यापन-प्रक्रिया के सप्रत्यय का अच्छा बोध होना चाहिए। इस सबके लिए सबंधित साहित्य के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। बहुपरिवर्तीय मूल्य विश्लेषण [2] के द्वारा इन सभी घटकों के प्रभावों का अध्ययन करना पड़ेगा। प्रयोग के प्रारम्भ में ही सभी निर्भर परिवर्तियों को पहचान कर उनकी सूची बना लेनी चाहिए। पहचानने के लिए समस्या पर हुए सभी महत्वपूर्ण चिन्तनों का अध्ययन आवश्यक है। इस सूची को मिला कर एक मापन का रूप देना चाहिए जिससे स्वतन्त्र परिवर्ती का मूल्यांकन हो सके। मुख्य रूप से कठिनाई अनेक निर्भर परिवर्तियों के मापन की है। यह परिवर्तियां हैं—अभिवृत्ति, अध्ययन के प्रति रुचि, प्रेरणाएं, आदि। अत. प्रयोगकर्ता कुछ ही निर्भर परिवर्तियों को प्रयोग में ले सकता है। परन्तु उसे ध्यान मे रखना चाहिए कि निर्भर परिवर्तियों द्वारा स्वतन्त्र परिवर्ती का मूल्यांकन हो रहा है अथवा नहीं ? ऊपर के उदाहरण में केवल उपलब्धि नामक निर्भर परिवर्ती पर अध्यापन-विधियों के पड़ने वाले प्रभावों के मापन तक प्रयोग को सीमित किया गया है।

मध्यवर्ती परिवर्तियों का प्रयोग के प्रारम्भ में ही पता लगाकर एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए। ये परिवर्तियाँ सामान्य अनुभव की वस्तु हैं जैसे, ऊपर दिए गए उदाहरण मे मध्यवर्ती परिवर्तियां हैं—छात्रों की भिन्न-भिन्न आयु, उनके आर्थिक-सामाजिक स्तर, उनके लिंग-भेद, उनके पूर्वानुभव, इत्यादि। यदि प्रयोग हेतु *लिए गए सब छात्र इन सब दृष्टियों से समान नहीं हैं तो कुछ काल तक उन अध्यापन-विधियों* द्वारा पढ़ाए जाने के पश्चात् छात्रों की उपलब्धियों में भिन्न-भिन्न मात्रा में वृद्धियां होंगी। परिणामस्वरूप स्वतन्त्र परिवर्तियो (अध्यापन-विधियों) के प्रभाव का मापन करना सम्भव नहीं होगा, परन्तु इसके विपरीत यदि लिंग, सामाजिक *स्तर आदि की भिन्नताओं के होते हुए भी सब छात्रों मे एक अध्यापन-विधि के परिणामस्वरूप* समान रूप से उपलब्धि मे वृद्धि हो रही है तो इसका अर्थ है कि स्वतन्त्र परिवर्ती (अध्यापन-विधि) के द्वारा निर्भर परिवर्ती (उपलब्धि) पर पड़ने वाले

---

1. Class-room interaction analysis.
2. Multi-Variate analysis

प्रभाव के मापन में मध्यवर्ती परिवर्ती कोई बाधा नहीं पहुँचा रहे हैं। जब सब मध्यवर्ती परिवर्तियां असंगतिपूर्ण ढंग से स्वतन्त्र परिवर्ती और निर्भर परिवर्ती की अन्तःक्रिया के बीच आ जाते हैं तो दत्त सामग्री विकृत हो जाती है। प्रयोगकर्ता मध्यवर्ती परिवर्तियों की ओर तब ध्यान देना आवश्यक नहीं समझेगा जबकि वे एक समान ढंग से प्रयोग के सब विषयों पर कार्य करते हैं। यदि यह स्थिति नहीं है तो उसे उनकी क्रियाशीलता (प्रभाव) का मापन कर सकना चाहिए अन्यथा संकलित दत्त विकृत होगा।

मध्यवर्ती परिवर्तियों के द्वारा निर्भर परिवर्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों को रोकना :

मध्यवर्ती परिवर्तियों के प्रभावों को रोकने का एक सरल तरीका है। इन परिवर्तियों को प्रायोगिक स्थिति में एक समान बना दिया जाए अर्थात् इन्हें स्थिर कर दिया जाए। उदाहरण के लिए, एक प्रयोग में एक ही आयु के, एक ही लिंग के, समान सामाजिक स्तर के छात्रों को लिया जाय, इत्यादि। परन्तु इस तरीके की कमी यह है कि प्रयोग का क्षेत्र सीमित हो जाता है क्योंकि किसी भी कक्षा में भिन्न-भिन्न बुद्धि, आयु, लिंग और सामाजिक स्तरों के छात्र पढ़ते हैं।

दूसरा तरीका यह है कि प्रायोगिक स्थितियों की संख्या मध्यवर्ती परिवर्तियों की संख्या के समान बना दी जाए और प्रत्येक समूह में केवल एक मध्यवर्ती परिवर्ती स्थिर रखा जाए। यह आवश्यक नहीं है कि इन समूहों पर प्रयोग अलग-अलग समय में पृथक्-पृथक् किया जाए। प्रयोग एक ही साथ किया जा सकता है अथवा दो या तीन बड़े भागों में किया जा सकता है, परिणामों की तुलना करने में समूहों को पृथक्-पृथक् रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार से पहले तरीके की कमी दूर हो जाएगी।

तीसरा तरीका है कि प्रायोगिक स्थिति में सभी समूहों में व्यक्तियों को यादृच्छिक (रैण्डम) रूप से बाँट देना। इसका अर्थ यह है कि मध्यवर्ती परिवर्तियों का (सामाजिक स्तर, लिंग आदि) का जो प्रभाव होगा वह समान रूप से बँट जाएगा।

चौथा तरीका है, सह-परिवर्तन का विश्लेषण[1] नामक सांख्यकीय विधि का उपयोग करना। प्रायोगिक समूहों में जो भिन्नता मध्यवर्ती परिवर्तियों के कारण होती है उसका प्रभाव इस विधि के द्वारा नगण्य कर दिया जाता है। कुछ ऐसे मध्यवर्ती परिवर्ती होते हैं जिनको स्थिर करना व्यावहारिक समस्या हो जाती है। उदाहरण के लिए, कुछ अधिकारी वर्ग प्रयोग के लिए कक्षा को विभाजित करना पसन्द नहीं करते हैं।

प्रायोगिक अनुसन्धान के विधान :

स्वतन्त्र और निर्भर परिवर्तियों की सूची बनाने के पश्चात् प्रयोगकर्ता को

---

1. Analysis of covariance.

यह निर्णय करना होगा कि प्रयोग का विधान कौनसा होना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोगों के क्रियान्वयन की कठिनाइयों और सीमाओं के कारण प्रयोगात्मक अनुसन्धानों की संख्या बहुत कम रही है। शिक्षा के सिद्धान्तवाद को प्रयोगों का योगदान भी बहुत कम रहा है। परन्तु कठिनाइयों और सीमाओं के होते हुए भी प्रयोगों के कई प्रकार के विधानों का आविष्कार हुआ है। मुख्य रूप से इन विधानों को चार वर्गों में रखा जा सकता है। एकमेव समूह-विधान (सिंगल ग्रुप डिज़ाइन) अनेक समूह-विधान (मल्टि ग्रुप डिज़ाइन) सह-यमज-नियमण विधान (कोट्विइन कैन्ट्रोल-डिज़ाइन) तथा सांख्यकीय विधान।

(१) एकमेव समूह विधान :

यह सबसे सरल प्रायोगिक विधान है। इसके दो रूप उपयोग में आए हैं : उत्तर-परीक्षा-मात्र विधान (पोस्ट-टेस्ट डिज़ाइन) और पूर्व-उत्तर-परीक्षा विधान (प्री-पोस्ट टेस्ट डिज़ाइन)।

उत्तर-परीक्षा-मात्र विधान :

इस विधान की आयोजना तब करनी पड़ती है जबकि प्रयोगकर्ता परीक्षा का उपयोग केवल एक ही बार करना चाहता है। चित्र सम्बन्धी कुछ परीक्षाएं ऐसी होती हैं जिनका एक बार उपयोग करने के बाद परीक्षा की अन्तर्वस्तु याद रहती है और दूसरी परीक्षा के परिणाम को प्रभावित कर सकती है। इसके अतिरिक्त अनेक बार प्रयोगकर्ता को केवल सत्र के अन्त में ही परीक्षा के उपयोग की सुविधा मिलती है। अतः उत्तर-परीक्षा-विधान में प्रयोगकर्ता प्रायोगिक स्थिति में स्वतन्त्र परिवर्ती के उपयोग से उत्पन्न दत्त को संकलित करता है फिर अन्त में वह स्वतन्त्र परिवर्ती के प्रभाव का परीक्षण करता है और इस परीक्षा के परिणामों की तुलना पिछले सत्र के अन्त में ली गई परीक्षा के परिणामों से करता है। उदाहरण के लिए, यदि सातवीं कक्षा में अंग्रेज़ी-अध्यापन की कोई नवीन विधि पर प्रयोग करना है तो सत्र के अन्त में इस विधि के उपयोग के परिणामस्वरूप हुई उपलब्धि का वह परीक्षण करेगा, फिर इस परीक्षा के परिणाम की तुलना छठी कक्षा की वार्षिक परीक्षा के परिणामों से करेगा। इस विधि के उपयोग में सावधानी से यह देख लिया जाता है कि दोनों परीक्षाओं के दत्त तुलनीय हैं अथवा नहीं। अर्थात् वही छात्र दोनों परीक्षाओं में बैठे थे। *यदि बिल्कुल वही छात्र नहीं होंगे तो परिणाम विश्वसनीय नहीं* होंगे। क्योंकि यदि इस वर्ष के नए छात्र अधिक बुद्धिमान हैं या उनकी आयु अधिक है तो अंग्रेज़ी-अध्यापन की नवीन विधि अनुपयुक्त होने हुए भी छात्रों का उपलब्धिस्तर पिछले वर्ष की तुलना में अधिक हो सकता है।

पूर्व तथा उत्तर परीक्षा-विधान :

इस प्रकार के विधान के भी दो रूप हैं। इन दोनों रूपों में प्रायोगिक समूह एक ही रहता है परन्तु दो प्रकार के दत्त संकलित होते हैं, एक तो स्वतन्त्र परिवर्ती,

की क्रिया से पूर्व और दूसरा उसकी क्रिया के पश्चात्। फिर पूर्व-दत्त और उत्तर-दत्त की तुलना कर स्वतन्त्र परिवर्त्य के प्रभाव का मापन कर लिया जाता है, परन्तु पूर्व परीक्षा के प्रभाव को दूर करने के लिए उत्तर दत्त की तुलना पिछले वर्ष के दत्त से की जाती है। दोनों प्रकार की तुलनाओं के अन्तर को देखकर पूर्वपरीक्षा के कुप्रभाव, यदि कोई हों तो उनका मापन किया जा सकता है।

एकमेव समूह विधान की आधारभूत मान्यता यह है कि प्रायोगिक समूह के व्यक्ति एक वर्ष पूर्व तथा एक वर्ष बाद बिल्कुल एक से रहेंगे। वयस्कों के बारे में यह सही हो सकता है क्योंकि उनके व्यक्तित्वों की रचना साधारणतया स्थाई रहती है परन्तु बच्चों के बारे में यह बात सत्य नहीं हो सकती; विशेषकर छोटे बच्चों के बारे में जिनमें विकासात्मक परिवर्तन तीव्रगति से होते हैं। उनमें सीखने की तत्परता में वृद्धि तथा अवबोध में वृद्धि तीव्र गति से होती है जो परिणामों को विकृत कर सकती है। इसके अतिरिक्त पिछले वर्ष के दत्त से इस वर्ष के दत्त की तुलना के पीछे मान्यता यह है कि दोनों प्रकार के दत्त जिन दो परीक्षाओं के परिणामों से एकत्र किए गए हैं उनकी अन्तर्वस्तु[1] बिल्कुल एक समान है। यह मान्यता गलत हो सकती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगकर्ता से तथा प्रायोगिक व्यक्तियों से संबंधित अनेक त्रुटियां रह सकती हैं जिनका वर्णन इस अध्याय के अगले अनुभाग में किया गया है। परन्तु इस एकमेव समूह-विधान का लाभ यह है कि यह सरल विधि है और वही समूह दो परीक्षाओं में होने के कारण प्रयोग की वैधता बढ़ जाती है।

(२) अनेक समूह-विधान :

इस प्रकार के विधान में दो या दो से अधिक समूहों का चयन किया जाता है। इन समूहों को जितना अधिक एक समान रखना सम्भव होता है, रखा जाता है। दो में से एक समूह पर स्वतन्त्र परिवर्त्य की क्रिया प्रारम्भ की जाती है, या उसे ही समूह से हटा लिया जाता है अथवा उसमें कुछ हेर फेर (परिवर्तन) किया जाता है।[2] दूसरे समूह पर इस प्रकार की कोई क्रिया नहीं की जाती। प्रथम समूह को प्रायोगिक समूह कहते हैं क्योंकि स्वतन्त्र परिवर्त्य का प्रयोग इसी समूह पर होता है दूसरे समूह को नियंत्रण समूह कहते हैं। प्रायोगिक समूह में स्वतन्त्र परिवर्त्य के प्रयोग के कारण परिवर्तन हो सकता है। परन्तु नियंत्रण समूह में ये परिवर्तन नहीं होते क्योंकि स्वतन्त्र परिवर्त्य का प्रयोग नहीं किया गया है। अतः प्रयोग के अन्त में दोनों

1. अन्तर्वस्तु का अर्थ पाठ्यसामग्री नहीं है वरन् तार्किक योग्यता, स्मृति, अवबोध स्तर आदि से है। दो उपलब्धि परीक्षाओं में उच्च वैधता के लिए उनके द्वारा एक सी योग्यताओं का मापन होना चाहिए।
2. स्वतन्त्र परिवर्त्य के साथ प्रयोगकर्ता के ये व्यवहार किसी भी प्रकार के प्रयोग में हो सकते हैं।

समूहों का मापन करने के पश्चात् यदि दोनों के समान प्राप्तांक आते हैं तो इसका अर्थ है कि स्वतन्त्र परिवर्ती का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नियंत्रण समूह के प्राप्तांकों के आधार पर ही यह निर्णय लिया जा सकता है। इसी प्रकार यदि प्रायोगिक समूह और नियन्त्रण समूह के प्राप्तांकों में अन्तर आता है तो वह स्वतन्त्र परिवर्ती के प्रभाव का द्योतक (मापक) होगा।

किसी भी प्रयोग में एक से अधिक प्रायोगिक समूह हो सकते हैं तथा एक से अधिक नियंत्रण समूह हो सकते हैं। अनेक-समूह-विधान के चार प्रमुख रूप हैं: एक नियन्त्रण समूह सहित उत्तर-मापन-विधान,[1] एक नियन्त्रण समूह सहित पूर्व और उत्तर मापन विधान,[2] बहु-नियन्त्रण समूह-विधान[3] और क्रमावर्तित समूह-विधान।[4]

एक नियन्त्रण समूह सहित उत्तरमापन-विधान :

इस विधान में केवल दो समूह होते हैं: एक प्रायोगिक समूह और दूसरा नियन्त्रण समूह। प्रयोगकर्ता प्रयोग के अन्त में मापन कर दोनों ही समूहों से दत्त संकलित करता है। दोनों समूह एक समान रखे जाते हैं। इस कारण मापन के द्वारा प्रायोगिक समूह के जो प्राप्तांक (अथवा विशेषताएं) नियन्त्रण समूह से भिन्न आएंगे वे स्वतन्त्र परिवर्ती के कारण होंगे। यह इस विधान की आधारभूत मान्यता है। स्वतन्त्र परिवर्ती के प्रायोगिक समूह पर प्रयोग (अथवा हटाने या अन्य परिवर्तन) करने से पहले ही प्रायोगिक समूह और नियन्त्रण समूह का मापन करना विद्यालयों में सदा सम्भव नहीं होता तथा उपयोगी भी नहीं होता। यदि किसी अध्यापन-विधि पर प्रयोग करना है तो सत्र के प्रारम्भ में अर्थात् जुलाई मास में उपलब्धि-परीक्षा लेना अनुपयोगी होगा, क्योंकि पिछली वार्षिक परीक्षा के समय जितना याद होता है उसका अधिकांश भाग छात्र ग्रीष्मावकाश में भूल जाते हैं। फिर पढ़ाई शुरू होने पर उन्हें पर्याप्त भाग शीघ्र याद आने लगता है। इसके अतिरिक्त परीक्षा देने की वह तत्परता तथा अभिवृत्ति नहीं होती जो वर्ष के अन्त में वार्षिक परीक्षा से पूर्व होती है इसलिए यदि जुलाई मास की परीक्षा और अप्रेल मास की परीक्षा के परिणामों में अन्तर अधिक आते हैं तो इन परिणामों से धोखा हो सकता है। एक बात और है कुछ परीक्षाएं अथवा मापन-यन्त्र ऐसे होते हैं जिनकी अन्तर्वस्तु का प्रभाव बना रहता है जो परिणामों को विकृत कर सकता है।

नियन्त्रण-समूह के रखने के कारण प्रयोग की रचना अधिक वैज्ञानिक हो सकती है, यदि दोनों ही समूह (प्रायोगिक और नियन्त्रण) सभी निर्णायक मध्यवर्ती

1. Post measure design with one control group.
2. Pre and post measure design with one control group.
3. Multiple control group design.
4. Rotated group design.

मापन की तुलना उसके नियंत्रण समूह के मापनों से की जानी चाहिए। अन्त में दोनों ही प्रकार के समूहों के परिणामों की तुलना कर पूर्व परीक्षा के द्वारा स्वतन्त्र परिवर्ती पर पड़ने वाले प्रभाव (यदि कोई है तो) का मापन किया जा सकता है।

क्रमावर्तित-समूह :

ऊपर के इन तीन विधानों को समानान्तर समूह विधान भी कहा जाता है अथवा तुल्य समूह की संज्ञा भी दी जाती है। इन तुल्य समूहों के विधान का दोष यह है कि शुद्ध रूप में ये तुल्य नहीं हो सकते। भौतिक विज्ञान के विधानों के समान बिल्कुल एक ही आकार प्रकार के दो समूह नहीं हो सकते। अनेक मध्यवर्ती परिवर्तियों में वे समान हो सकते हैं परन्तु कुछ भिन्नता अवश्य रहती है। मनुष्यों पर प्रयोग करने में यह बहुत बड़ी कठिनाई है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए क्रमावर्तित समूह-विधि का विधान किया गया है। इस विधि में प्रयोग की दो अवस्थाएं हैं। पहली अवस्था में समानान्तर-समूह-विधान के समान ही एक प्रायोगिक समूह होता है और दूसरा नियंत्रण-समूह। प्रयोग पूर्ण होने के बाद (अर्थात् स्वतन्त्र परिवर्ती का प्रयोग कर उसके प्रभाव के मापन करने के पश्चात्) इन दोनों समूहों के कार्य बदल दिए जाते हैं। अर्थात्, जो पहले प्रायोगिक समूह था उसे अब नियंत्रण समूह बना दिया जाता है और जो पहले नियंत्रण समूह था उसे अब प्रायोगिक समूह बना दिया जाता है। इसके पश्चात् प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रयोग और द्वितीय प्रयोगों के परिणामों की तुलना कर ली जाती है। इस क्रमावर्तित विधान का सबसे बड़ा लाभ यह है कि उन मध्यवर्ती परिवर्तियों, जिनका मापन नहीं हो सकता अथवा नहीं हो पाया है (जैसे, सीखने की तत्परता, अध्ययन के प्रति अभिवृत्ति, इत्यादि) के प्रभाव को समान बना दिया जाता है। इससे परिणाम अधिक शुद्ध आते हैं।

२ सह-यमज नियंत्रण-विधान :

दो व्यक्तियों में अथवा व्यक्तियों के दो समूहों में सबसे अधिक एकरूपता सह यमज-नियंत्रण के द्वारा लाई जा सकती है। इस विधान का विकास १९२९ में परिपक्वीकरण और सीखने पर प्रयोग करने के लिए किया गया। तब से इस विधान का उपयोग वंशानुक्रम और पर्यावरण के सापेक्षिक प्रभाव का अध्ययन करने के लिए किया जाता रहा है। सह-यमज विधान के अन्तर्गत समान यमजों (आइडेण्टिकल ट्विन्स) को प्रयोग के लिए लिया जाता है। समान यमज वे हैं जिनकी उत्पत्ति एक ही युग्मनज (जाइगोट) से हुई है। अतः उनका वंशानुक्रम बिल्कुल एक समान है। (युग्मनज माँ के अंडाणु और पिता के शुक्राणु के संयोग से बना एक कोश है जो गर्भ-धारण के समय मनुष्य का प्रथम रूप है। एक ही युग्मनज के दो भाग होने पर जब दो बालक गर्भ में विकसित होते हैं तो वे समान यमज कहलाते हैं और उनका वंशानुक्रम बिल्कुल समान रहता है।) इस प्रकार वंशानुक्रम को स्थिर कर पर्यावरण के या

सीखने के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। दो यमजों में से एक "नियंत्रण" का कार्य करता है और दूसरे पर स्वतन्त्र परिवर्ती का उपयोग किया जाता है।

यदि मध्यवर्ती परिवर्ती पर पूर्ण नियंत्रण सम्भव है तो प्रयोग के परिणाम भौतिक-विज्ञान के परिणामों के समान निश्चित और परिशुद्ध होंगे। ऐसी स्थिति में नियंत्रण-विषय (व्यक्ति) और प्रायोगिक विषय (व्यक्ति) की संख्या केवल एक-एक होना ही पर्याप्त है। और प्रयोग के परिणाम (सामान्यीकरण) की प्रयोज्यता (एप्लिकेबिलिटी) भी व्यापक होगी। इसी कारण गैसेल[1] ने परिपक्वीकरण और सीखने के प्रयोग में केवल दो समान यमज लिए जिनके परिणाम सर्वस्वीकृत हैं।

परन्तु सह-यमज कम संख्या में होते हैं तथा प्रयोग में हर बार उन्हें ले सकना कठिन होता है। छोटी अवस्था में तो पर्यावरण का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। अतः इस विधि का उन पर प्रयोग करना अधिक वैज्ञानिक है। इसी कारण गैसेल और थौम्पसन[2] ने छियालीस सप्ताह के दो समान यमज लिए। इनमें से एक को छः सप्ताह तक सीढ़ी पर चढ़ने में प्रशिक्षित किया और दूसरे को कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया। अर्थात्, दूसरे बच्चे ने नियंत्रण-विषय का कार्य किया। प्रथम बच्चे को छः सप्ताह तक प्रशिक्षण देने के पश्चात् दोनों बच्चों को सीढ़ी पर चढ़ने को कहा गया। प्रथम बच्चा प्रशिक्षण के पश्चात् भी दूसरे से जल्दी चढ़ न पाया। यह निष्कर्ष निकला कि शरीर के परिपक्व होने के पूर्व सिखाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

बार, डेविस और जौह्नसन ने सुझाव दिया है कि समान यमज अध्यापकों का उपयोग करने से दो विपरीत शैक्षिक उपचारों के प्रभावों का अध्ययन अधिक अच्छी प्रकार किया जा सकता है।[3] यह महत्वपूर्ण सुझाव है।

वंशानुक्रम तो एक परिवर्ती है। अनेक परिवर्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करती हैं। अतः किसी प्रयोग को सफल बनाने के लिए ऐसे समान यमज ढूँढने पड़ेंगे जो प्रयोग की समस्या से संबंधित सभी मध्यवर्ती परिवर्तियों में समान हों। यह कठिन कार्य है। फिर अन्य किसी मध्यवर्ती परिवर्ती को वंशानुक्रम के समान ही बिल्कुल बराबर परिमाण में दो यमजों में ढूँढना कठिन है। परिणाम-स्वरूप यमजों के समूह ढूँढने पड़ेंगे। परन्तु यमजों की संख्या कम है। अतः प्रतिचयन की त्रुटियां रह सकती हैं।

1&2. Gessell, A and Thompson, "*Learning and Growth in Identical Twins*," Genetic Psychological Monographs, 1929, 6: 1-24.

3. Barr, A. S., Davis, R. A. and Johnson, P. O. Educational Research Appraisal, *J. B. Lippicott Co., NewYork, 1953*, p. 233.

४. कारक विश्लेषणात्मक विधान :

कारक-विश्लेषण सांख्यकीय विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी आविष्कार है। इसके कारण सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान विधानों की एक जटिल समस्या का समाधान हो गया है। मानव व्यवहार को अनेक कारक (परिवर्ती) प्रभावित करते हैं। इनका प्रभाव पृथक्-पृथक् ही नहीं पड़ता वरन् इनका अन्तर्क्रियात्मक[1] प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त परिवर्तियों के भी घटक होते हैं। प्रत्येक घटक किसी परिवर्ती में अधिक या कम मात्रा में रह सकता है। उदाहरण के लिए बुद्धि नामक परिवर्ती के कई घटक हैं जैसे, शाब्दिक योग्यता, स्मृति, निगमनात्मक तर्क, प्रत्यक्षीकरणात्मक गति, आदि। ये घटक किसी व्यक्ति की बुद्धि में भिन्न-भिन्न मात्रा में रहते हैं। प्रत्येक परिवर्ती भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्रा में रहती है। इन सब वस्तुस्थिति के कारण सामाजिक संसार में प्रायोगिक अनुसन्धान एक दुष्कर कार्य है। प्रायोगिक अनुसन्धान में किसी कृत्रिम स्थिति को उत्पन्न कर यदि मध्यवर्ती परिवर्ती को स्थिर किया जा सके तो वास्तविकता का पता नहीं लगेगा अथवा कम लगेगा। कारक विश्लेषण ने इन समस्याओं को बहुत कुछ सुलझा दिया है। कारक विश्लेषण वह सांख्यकीय पद्धति है जिसके द्वारा प्रत्येक परिवर्ती के स्व-तन्त्र प्रभाव तथा अन्तर्क्रियात्मक प्रभाव का मापन किया जाता है। परिवर्तियों के विभिन्न स्तरों के विभिन्न प्रभाव का भी मापन किया जाता है। कारक विश्लेषण सम्बन्धी विधान सरल से सरल दो परिवर्तियों तथा इनके दो स्तरों से सम्बन्धित हो सकते हैं। जटिल विधानों में अनेक परिवर्ती हो सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में तो चार से अधिक परिवर्तियों का उपयोग कर कारक विश्लेषणात्मक अनुसन्धान बहुत कम हुए हैं परन्तु मनोविज्ञान में बहुत हुए हैं।

कारक विश्लेषण में गणनात्मक क्रियाएं बहुत होती हैं। अनेक परिवर्तियों के कारक विश्लेषण में इस भाग का समय हाथ से गणना करने में लग जाता है। इसी कारण परिगणन यन्त्रों के आविष्कार से पूर्व अनुसन्धानों में कारक विश्लेषण का उपयोग इस अत्यधिक नीरस परिश्रम तथा अधिक समय के लगने के कारण कम किया जाता था। परन्तु अब शिक्षा के क्षेत्र में विदेशों में (विशेष कर अमेरिका में) शायद ही कोई शिक्षात्मक अनुसन्धान होगा जिसमें कारक विश्लेषण का उपयोग न

---

[1] Interactive अर्थात् एक-दूसरे पर क्रिया सम्बन्धी। परिवर्तियां परस्पर एक-दूसरे की क्रियाशीलता या कार्य को प्रभावित करती हैं। जैसे, अभिवृत्ति का सीखने की योग्यता पर प्रभाव पड़ता है। प्रतिकूल अभिवृत्ति के कारण हम कम सीख पाते हैं। दूसरी ओर सीखने की योग्यता के कारण हमारी अभिवृत्ति बनती है या उसमें परिवर्तन होता है। ज्ञान हो जाने पर हम अपनी अभिवृत्ति बदल देते हैं।

किया जाता हो।[1] कारक विश्लेषण से एक लाभ यह है कि परिवर्तियों के घटकों की जानकारी हो जाती है। उदाहरण के लिए, कारक विशेषण के परिणामस्वरूप बुद्धि के अनेक घटक प्रकाश में आए हैं। अत: कारक विश्लेषण से संप्रत्ययों का विकास किया जा सकता है और उनका स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

सम-समूह बनाने के तरीके :

प्रायोगिक अनुसन्धान के लिए अनेक-समूह-विधान या चयन करने पर यह निर्णय करना होगा कि इन समूहों को समान कैसे बनाया जाए। प्रायोगिक समूह और नियन्त्रण समूह जितने अधिक समान होंगे परिणामों की उतनी ही अधिक प्रयोज्यता बढ़ जाएगी। समान बनाने के मुख्यरूप से चार तरीके हैं—व्यक्ति का व्यक्ति से मिलान, समूह का समूह से मिलान, यादृच्छिकरण और यरिष्ठता-अंक-क्रम मिलान।

(१) व्यक्ति का व्यक्ति से मिलान :

इसका अर्थ है कि ऐसे व्यक्तियों को छांटना जो निर्णायक परिवर्तियों में समान हों। यदि प्रायोगिक स्थिति में केवल दो ही समूह हैं—प्रायोगिक और नियन्त्रण—तो व्यक्तियों के ऐसे जोड़े छांटने होंगे जो बिल्कुल समान हों। फिर प्रत्येक जोड़े में से एक व्यक्ति को प्रायोगिक समूह में रखना होगा और दूसरे को नियन्त्रण समूह में। अर्थात्, यदि तीन परिवर्तियों, आयु, लिंग और बुद्धि की दृष्टि से समान समूह बनाने है तो व्यक्तियों के ऐसे जोड़े छांटने होंगे जिनकी एक सी आयु, एक ही लिंग और समान बुद्धि-लब्धि हो। फिर इस प्रकार के हर जोड़े में से एक व्यक्ति दोनों समूहों में बँट जाएगा। इस पद्धति का लाभ यह है कि दोनों समूह अधिक समान हो जाते हैं और परिणामों की चरितार्थता बढ़ जाती है। इसी कारण इसे 'परिशुद्धता नियन्त्रण (प्रेसिजन कण्ट्रोल)' भी कहा गया है। परन्तु इसकी हानि यह है कि बड़ी संख्या में से पर्याप्त व्यक्ति ऐसे निकलेंगे जिनको किसी जोड़े में नहीं रखा जा सकता। इसमे प्रतिचयन प्रतिनिध्यात्मक बनाने में कठिनाई होगी। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह है कि व्यक्तियों का मिलान कितना निकट किया जाय ? यदि मिलान करने में चार या पाँच बुद्धि-लब्धि बिन्दुओं का अन्तर है तो मिलान अधिक परिशुद्ध होगा। परन्तु यदि बुद्धि-लब्धि में १०–१२ का अन्तर है तो मिलान शुद्ध नहीं होगा। यही बात आयु, उपलब्धि और अन्य परिवर्तियों के सम्बन्ध में भी है। अधिक निकट मिलान करने से मिलान किए हुए व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होगी। यदि प्रयोग में समूहों की संख्या दो के स्थान पर तीन है अथवा चार है या अधिक है तो मिलान किए हुए जोड़ों के स्थान पर मिलान किए हुए तीन चार या अधिक व्यक्तियों के समूह छांटने पड़ेंगे। इस चयन में प्रायोगिक विषयों की संख्या और घटेगी तथा मिलान करना भी

---

1. Fox, Daird. J : The Research Process in Education, Holt, Rinehart, & Winston, Inc, NewYork, 1969, p. 681.

अधिक कठिन होगा।

एक समस्या यह है कि ऐसे समूह (दो या दो से अधिक) बनाने के पश्चात् उन्हें प्रयोगों के समूहों में किस क्रम से बाँटा जाए? *याहच्छिक चयन का उपयोग* अधिक उपयुक्त है। जैसे, सिक्के उछाल कर एक व्यक्ति को प्रायोगिक समूह में रखना और दूसरे को नियन्त्रण समूह में रखना।

(२) समूह से समूह का मिलान :

इस विधि के अन्तर्गत किसी भी परिवर्ती की दृष्टि से व्यक्तियों का मिलान करने के स्थान पर *समूह का मिलान समूह से किया जाता है।* समूह का मिलान करने के लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति और परिवर्तनशीलता का मापन किया जाता है। इन दोनों मापनों में समूहों को समान बनाया जाता है। यदि समूहों के ये मापन एक समान नहीं आते तो प्रयोगकर्ता व्यक्तियों को एक समूह से दूसरे समूह में बदल कर उनके इन मापनों को समान बनाता है।

(३) याहच्छिक-करण :

याहच्छिक-करण में उपलब्ध सभी विषयों (व्यक्तियों) को प्रायोगिक समूह तथा नियन्त्रण समूह में, याहच्छिक सारिणी का उपयोग कर, रक्खा जाता है। सब विषयों की एक सूची बना ली जाती है फिर *याहच्छिक सारिणी* से पहला अंक देखकर सूची से उसी क्रमांक के व्यक्ति को एक समूह में रखा जाता है। फिर सारिणी में दूसरे अंक को देखकर सूची में उसी क्रमांक वाला व्यक्ति को दूसरे समूह में रखा जाता है। यही क्रम चलता रहता है। सब विषयों (व्यक्तियों) की सूचियां वर्णमाला-क्रमानुसार बन सकती हैं अथवा बिना क्रम के जिस रूप में व्यक्तियों के नाम आएं उसी प्रकार सूची बनाई जा सकती है।

(४) वरिष्ठता-अंक-क्रम मिलान :

इस पद्धति के अन्तर्गत सब विषयों को मिलान किए जाने वाले परिवर्ती के *प्राप्तांकों के अनुसार वरिष्ठता-अंक-क्रम से रखा जाता है।* अर्थात्, सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाले का नाम पहले और उससे कम प्राप्त करने वाले का नाम दूसरा रखा जाता है। इसी क्रम से आगे नाम रखे जाते हैं। फिर याहच्छिक विधि का उपयोग (जैसे, सिक्का फेंक कर) कर एक नाम को प्रायोगिक समूह में रखा जाता है और दूसरे को नियन्त्रण समूह में। इसमें यह ध्यान नहीं रखा जाता कि सिक्का उछालने पर यदि नीचे के क्रम वाले का नाम ऊपर आ जाता है तो उसी को पहले एक समूह में रक्खा जाता है और दूसरे को दूसरे समूह में। इस पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि सभी व्यक्तियों को प्रयोग में सम्मिलित किया जा सकता है। यद्यपि व्यक्ति से व्यक्ति-मिलानपद्धति के *समान परिशुद्धता नहीं आ सकती,* परन्तु प्रतिनिधित्व अधिक अच्छा हो सकता है।

यदि एक परिवर्ती से अधिक का मिलान करना है तो इन सब परिवर्तियों के

प्राप्तांकों का एक संमिश्र प्राप्तांक (कम्पोजाइटस्कोर) बना लेना चाहिए। संमिश्र प्राप्तांक बनाने का सरल तरीका है प्रत्येक परिवर्ती के प्राप्तांक को मानक प्राप्तांक (स्टैंडर्ड स्कोर) में बदल देना। फिर इन सब मानक-प्राप्तांकों को जोड़ देना। यह संमिश्र प्राप्तांक होगा। दूसरा अधिक परिशुद्ध तरीका है, प्रत्येक मिलान किए जाने वाले परिवर्ती या निर्भर परिवर्ती से सह-सम्बन्ध निकाल कर बहु-समाश्रयण समीकरण मल्टिप्ले रिग्रेशन इक्वेशन बनाना। तदुपरान्त इस समीकरण में सभी मिलान किए जाने वाले परिवर्तियों के प्राप्तांकों के बल के अनुसार विषयों (व्यक्तियों) की वरिष्ठता-क्रम-क्रम-सूची तैयार करना। यह सूची बनाने के बाद यादृच्छिक विधि से समूहों में विषयों (व्यक्तियों) को रख देना।

यदि एक मिलान किए जाने वाले परिवर्ती का सह-सम्बन्ध अन्य मिलान किए जाने वाले परिवर्तियों से उच्च है (८०) तो फिर संमिश्र प्राप्तांक बनाने की आवश्यकता नहीं है। उस एक मिलान किए जाने वाले परिवर्ती के आधार पर व्यक्तियों को समूहों में रखना पर्याप्त होगा। परिणाम उतने ही सही आएंगे जितने कि संमिश्र प्राप्तांक बनाकर आते।

प्रयोग में विकृतियों के स्रोत :

जड़ पदार्थ को तथा निम्न श्रेणियों के प्राणियों (पशु, पक्षी, आदि) को नियंत्रित करना सरल है। इसलिए उन पर हुए प्रयोगों में परिशुद्ध नियंत्रण रहा है। परन्तु मानव को नियंत्रित करना बहुत कठिन है। अत: ऊपर बताई गई पद्धतियों का उचित प्रकार से पालन करते हुए प्रयोग के विधान की रचना करने के पश्चात् भी प्रयोगात्मक दत्त विकृत हो सकता है। दत्त को विकृत करने वाले चार स्रोत हैं—स्वयं प्रयोगकर्ता, मापक यंत्र, प्रायोगिक विषय (व्यक्ति) और प्रयोग का संचालन।

(१) स्वयं प्रयोगकर्ता :

प्रयोगकर्ता स्वयं अपने व्यवहार से प्रायोगिक विषयों (व्यक्तियों) को अनजाने में अवाछनीय रूप से प्रभावित कर सकता है। यदि किसी नवीन अध्यापन-विधि पर प्रयोग करना है तो वह इस अध्यापन-विधि से पढ़ाने में विशेष उत्साह दिखा सकता है। अनजाने में अपनी चिन्ता, मुखाकृति आदि द्वारा प्रायोगिक समूह को नियंत्रण समूह की तुलना में अधिक प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार के कुप्रभाव से प्रायोगिक समूह को बचाने का एक तरीका यह है कि प्रयोगकर्ता स्वयं दत्त संकलन न करे; वरन् अन्य व्यक्तियों से कराएं जिनकी प्रयोग में कोई रुचि नहीं है।

इसी प्रकार की दूसरी विकृति तब आ सकती है जबकि भिन्न-भिन्न प्रायोगिक समूहों को पढ़ाने वाले अध्यापकों की कुशलताओं में अन्तर हो अथवा, भिन्न-भिन्न प्रायोगिक समूहों का संचालन करने वाले व्यक्तियों की कुशलताओं और व्यक्तित्वों में अधिक अन्तर हो। सबसे उपयुक्त तरीका तो यह है कि प्रयोगकर्ता स्वयं वस्तुनिष्ठ

दृष्टिकोण अपनाए। जहाँ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों (अध्यापकों, इत्यादि) का उपयोग करना है वहाँ समूहों को क्रमावर्तित (रोटेट) कर देना चाहिए।

(२) मापक यंत्र :

भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अनेक परिशुद्ध तथा संवेदनशील यंत्र बने हुए हैं जिनसे मापन अशुद्ध होता है और उनका संसार भर में उपयोग हो सकता है। उदाहरण के लिए, भौतिक तुला ले लीजिए। संसार में सभी स्थानों पर इसका उपयोग कर सकते हैं। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में तथा सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में इस प्रकार के मापक यंत्र नहीं बन सकते। उदाहरण के लिए, उपलब्धि का मापन ले लीजिए। कक्षा के भेद से, जिला के भेद से, विद्यालय के भेद से और देश के भेद से उपलब्धि मापक यंत्र पृथक्-पृथक् होंगे। यहाँ तक कि एक विषय के भिन्न भागों के मापक उपकरण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। ऐसी स्थिति होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में उपकरण-विकास लगभग प्रत्येक अनुसन्धान का एक मुख्य कार्य हो जाता है। परम्परागत विधि और नवीन विधि से जो विषय पढ़ाया जाएगा उसमें उपलब्धि का मापक उपकरण ऐसा होना चाहिए जो दोनों विधियों के आधारभूत तत्वों को ध्यान में रखकर बना हो। एक प्रयोग के लिए मानकीकृत उपलब्धि मापक यंत्र बनाने के लिए एक पृथक् अनुसन्धान कार्य करना होगा। यदि पुरानी परीक्षा के प्रश्नपत्रों का उपयोग किया जाता है तो उससे नवीन विधि की अन्तर्वस्तु की ओर दुर्लक्ष्य हो जायगा। यदि नवीन मापक यंत्र बनाया जाता है तो प्रयोगकर्ता अपने अनुसन्धान के लक्ष्य प्राप्ति की व्यग्रता में नवीन विधि की अन्तर्वस्तु को अधिक महत्व दे सकता है। नवीनता की ओर मनुष्य का स्वभावतः आकर्षण होता है। अतः इस दोष को दूर करने के लिए उपकरण के निर्माण तथा चयन में ऐसे विशेषज्ञों (जजेज) का उपयोग उपकरण की अन्तर्वस्तु और एकांशों के निर्धारण के लिए कर लेना चाहिए कि जिनकी रुचि इस अनुसन्धान में न हो।

(३) प्रायोगिक विषय :

प्राकृतिक विज्ञानों के विपरीत सामाजिक विज्ञानों में अनुसन्धान के विषय मनुष्य होते हैं जिनमें उत्सुकताएँ होती हैं और जो विचारों का परस्पर आदान-प्रदान कर सकते हैं। इस कारण नियंत्रण समूह के विषय (व्यक्ति) प्रायोगिक विषयों (व्यक्तियों) से प्रत्यक्ष पूछ कर अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सुनकर प्रायोगिक समूह की क्रियाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेते हैं जिससे परिणामों में विकृति आ जाती है। इस विकृति को दूर करने का एक तरीका यह है कि प्रायोगिक समूह और नियंत्रण समूह के संचालक भिन्न-भिन्न रखे जाएं। वे अपने समूह से पृथक्-पृथक् मिलें और अपने-अपने विषयों को प्रयोग सम्बन्धी कोई जानकारी न दें। वास्तव में यदि ऐसा किया जाय और विषय (व्यक्ति) बिल्कुल अनभिज्ञ रहें तो प्रयोग बिल्कुल प्राकृतिक स्थिति में होगा। इसके लिए विद्यालय के अधिकारी तथा अध्यापकों को

भी प्रयोग के उद्देश्य बताकर उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त करना चाहिए। दूसरा तरीका यह है कि प्रयोग करने से पूर्व प्रयोग के सभी विषयों को स्पष्ट रूप से उद्देश्य बता दिए जाएं और प्रयोग की जानकारियों के आदान-प्रदान से होने वाली हानि और विकृति से उन्हें अवगत करा दिया जाए। इसके अतिरिक्त प्रयोग के उचित कार्यान्वयन से होने वाले लाभों (जो उन्हें भी होंगे) को बताकर उन्हें प्रेरित करना चाहिए।

प्रयोग का संचालन :

यदि भिन्न-भिन्न समूहों के संचालनों में थोड़ी सी भिन्नता होगी तो परिणामस्वरूप दत्त में विकृति आ सकती है। एक समूह की परीक्षा प्रातःकाल ली जाय (अथवा प्रातःकाल पढ़ाया जाय) और दूसरे समूह की दोपहर परीक्षा की जाय (अथवा दोपहर पढ़ाया जाय) तो विषयों (व्यक्तियों) के प्रत्युत्तरों में भिन्नता आ सकती है। इसी प्रकार दो भिन्न-भिन्न प्रकार के समूहों के पर्यावरणों में थोड़ी सी भिन्नता विकृति लाएगी। एक समूह के द्वारा परीक्षा देते समय कमरे के बाहर ध्वनि का होना जिससे विषयों का ध्यान बँटे या अन्य किसी प्रकार से ध्यान बँटे, जबकि दूसरे समूह की परीक्षा के समय कमरे के बाहर शान्ति रहने से परिणाम पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

सारांश

प्रायोगिक विधि के अन्तर्गत ऐसी स्थिति की रचना की जाती है जिसमें किसी ज्ञेय के घटन को प्रभावित करने वाले कारकों में से केवल एक कारक ही क्रियाशील रहता है और शेष सब कारक स्थिर रहते हैं। ऐसा करने से उस कारक के द्वारा उक्त ज्ञेय के घटन पर पड़ने वाले प्रभाव का निश्चित मापन सम्भव होता है। उक्त कारक विशेष को, जिसके ज्ञेय पर प्रभाव के मूल्यांकन के लिए प्रयोग किया जा रहा है, स्वतन्त्र परिवर्ती कहते हैं। स्वतन्त्र परिवर्ती की क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप जो तत्व घटता, बढ़ता या लुप्त होता है, निर्भर परिवर्ती कहलाता है। स्वतंत्र परिवर्ती की क्रियाशीलता के कारण निर्भर परिवर्ती पर पड़ने वाले प्रभाव के मध्य यदि अन्य परिवर्ती भी आकर प्रभाव डालते हैं तो उन्हें मध्यवर्ती परिवर्ती कहते हैं। मध्यवर्ती परिवर्ती के प्रभाव को यदि रोका नहीं जायेगा तो प्रयोग के परिणाम विकृत होंगे। यदि सब मध्यवर्ती परिवर्तियों का प्रभाव सुसंगतिपूर्ण ढंग से पड़ रहा है तो स्वतंत्र परिवर्ती के प्रभाव का मापन किया जा सकता है। परन्तु यदि विभिन्न मध्यवर्ती परिवर्तियों का निर्भर परिवर्तियों पर प्रभाव असंगतिपूर्ण ढंग से पड़ रहा है तो स्वतंत्र परिवर्ती के प्रभाव को अलग छाँटना कठिन हो जाएगा। अतः मध्यवर्ती परिवर्तियों द्वारा निर्भर परिवर्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों को रोकने के लिए अनेक उपाय

निकाले गए हैं।

प्रायोगिक अनुसन्धानों के मुख्य रूप से चार विधान हैं। एक तो एकमेव समूह विधान जिसके अन्तर्गत एक ही समूह चयन कर स्वतंत्र परिवर्ती की क्रियाशीलता के उस समूह पर प्रभाव का मापन किया जाता है। स्वतंत्र परिवर्ती के उपयोग से पूर्व और पश्चात् मापनो के अन्तर से यह प्रभाव ज्ञात किया जाता है। यदि मापन यंत्र ऐसा है कि दुबारा प्रयोग करने पर प्राप्तांक भिन्न आएंगे तो स्वतंत्र परिवर्ती के प्रयोग के पश्चात् ही मापन करना उपयुक्त होगा। दूसरा विधान है अनेक समूह विधान जिसके अन्तर्गत दो या अधिक समान समूहों का चयन किया जाता है। जिस समूह पर स्वतंत्र परिवर्ती का प्रयोग किया जाता है उसे प्रायोगिक समूह कहते हैं और जिस पर नहीं किया जाता है उसे नियंत्रण समूह कहते हैं। किसी विधान में केवल एक नियंत्रण समूह और एक प्रायोगिक समूह हो सकता है अथवा एक से अधिक नियंत्रण समूह हो सकते हैं। यदि मापन यंत्र की अन्तर्वस्तु का प्रभाव परीक्षार्थियों पर अधिक काल तक रहता है तो मापन स्वतंत्र परिवर्ती के प्रयोग के पश्चात् ही होना चाहिए अन्यथा पहले और पश्चात् दोनों ही बार पहले के मापन के प्रभाव को दूर करने के लिए दो प्रायोगिक और दो नियंत्रण समूह रखे जा सकते हैं जिनमें से एक-एक का पूर्व मापन किया जाए तथा दूसरे दोनों प्रायोगिक और नियंत्रण समूहों का पूर्व और उत्तर मापन दोनों किए जाएं। फिर सभी समूहों की तुलना कर स्वतंत्र परिवर्ती के प्रभाव का निश्चित मापन किया जा सकता है। मनुष्यों के समूह एक समान बनाए नहीं जा सकते। अतः प्रायोगिक और नियंत्रण समूह के कार्यों को बदल के भी देखा जा सकता है। इसे समूहों का क्रमावर्तन भी कहते हैं। प्रायोगिक अनुसन्धान का तीसरे प्रकार का विधान है, सह यमज नियंत्रण विधान जिसमें यथानुक्रम के प्रभाव को नियंत्रित कर पर्यावरण के प्रभाव का मापन किया जाता है। चौथा विधान है कारक विश्लेषणात्मक विधान जिसके अन्तर्गत कारक विश्लेषण नामक सांख्यकीय-पद्धति द्वारा प्रत्येक कारक के प्रभाव का निश्चित मापन किया जाता है।

प्रायोगिक अनुसन्धान में यदि अनेक समूहों का चयन किया जाना है तो समान समूहों का चयन के चार तरीके हैं. (१) या तो बिल्कुल समान व्यक्तियों के जोड़ छांटे जाएं; प्रत्येक जोड़े में से एक-एक व्यक्ति क्रमश दो समूहों में रखा जाए (२) या ऐसे समूह छांटे जाएं जिनकी केन्द्रीय प्रवृति और परिवर्तनशीलता समान हो। (३) या व्यक्तियों की सूची बनाकर उनको क्रमांक में रख लिया जाए और फिर यादृच्छिक सारिणी का उपयोग कर अनेक समूह बना दिए जाएं। (४) या सभी व्यक्तियों को उनके प्राप्तांकों की वरिष्ठता के क्रम से समूहों में रखा जाए ताकि समान प्राप्तांकों वाले व्यक्ति सब समूहों मे रहें। प्रयोग के विधान की उचित रचना के बाद भी विकृतियाँ स्वयं प्रयोगकर्ता के कारण, मापक यंत्र की अशुद्धता के कारण, प्रायोगिक विषयों की उत्सुकता आदि विशेषताओं के कारण और भिन्न-भिन्न समूह पर प्रयोगों के

संचालन में थोड़ी सी भिन्नताओं के कारण आ सकती है।

अभ्यास-कार्य

१. प्रायोगिक विधि के आधारभूत संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिए। मध्यवर्ती परिवर्ती के प्रभावों का प्रायोगिक दत्त पर प्रभाव न पड़ने देने के लिए प्रयोगकर्ता को क्या करना चाहिए?
२. निम्नलिखित में से प्रत्येक विधान किस प्रायोगिक अनुसंधान के लिए उपयुक्त है? अनुसंधान के शीर्षक बताइए और तर्क से आपके अपने मत की पुष्टि तर्क सहित कीजिए।
   (क) बहु नियंत्रण समूह-विधान
   (ख) क्रमावर्तित समूह-विधान।
   (ग) सह सम्बन्ध नियंत्रण-विधान।
   (घ) कारक विश्लेषणात्मक-विधान।
३. किसी प्रायोगिक अनुसन्धान के शीर्षक का उल्लेख कर बताइए कि उस अनुसन्धान को शुद्धरूप में कार्यान्वित करने के हेतु आप प्रयोगात्मक दत्त को विकृत न होने देने के लिए क्या-क्या करेंगे? प्रत्येक का सुनिश्चित उत्तर दीजिए।
४. समूहों को समान बनाने का कौनसा तरीका आपको सबसे उपयुक्त लगता है? सकारण उत्तर दीजिए।

८

क्रियात्मक अनुसन्धान

क्रियात्मक अनुसन्धान का अर्थ :

क्रियात्मक अनुसन्धान की विचारधारा का उद्‌गम लगभग ५० वर्ष पूर्व हुआ है। इस नई विचारधारा के प्रवर्तकों में से प्रमुख हैं–कोलियर, मुडन, हेरिक तथा कोरी। क्रियात्मक अनुसन्धान से तात्पर्य उस प्रक्रम से है जिसके द्वारा किसी भी व्यावसायिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति स्वयं की समस्याओं का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करते हैं ताकि वे अपने क्रिया-कलापों एवं निर्णयों का मूल्यांकन कर सकें एवं उनमें सुधार ला सकें। इस परिभाषा को यदि शिक्षा के क्षेत्र में अनुप्रयुक्त किया जाए तो हम कह सकते हैं कि वह प्रक्रम जिसके फलस्वरूप शिक्षक, प्रधानाध्यापक, निरीक्षक एवं प्रशासक, अपनी समस्याओं का पता लगाकर उन्हें वैज्ञानिक ढंग से हल करने का प्रयास करते हैं तथा अपनी प्रचलित परिपाटियों में सुधार लाते हैं, उसे क्रियात्मक अनुसन्धान कहा जा सकता है। क्रियात्मक अनुसन्धान का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है, क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों द्वारा अनुसन्धान। इसमें मान्यता यह है कि अनुसन्धान केवल विश्वविद्यालयों में स्थित प्राध्यापकों अथवा अनुसन्धाताओं का सर्वाधिकार नहीं हो सकता। क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रत्येक कार्यकर्ता अपनी समस्याओं को पहिचान कर उन्हें वैज्ञानिक विधि से हल कर सकता है। या यों कहें कि क्षेत्र में कार्य करने वाला हर व्यक्ति अनुसन्धान कर सकता है। साथ ही इस विचारधारा को आगे बढ़ाने वाले शिक्षा शास्त्रियों का यह भी कहना है कि क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्ता द्वारा अपनी समस्या का खोजा हुआ हल, दूर स्थित किसी उच्चकोटि

के अनुसन्धाताओं द्वारा सुझाए गए हल की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

क्रियात्मक अनुसन्धान की पृष्ठभूमि :

कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने यह अनुभव किया कि विश्वविद्यालयों एवं अनुसन्धान केन्द्रों में इतना अनुसंधान होने के उपरांत भी इनका प्रभाव शालाओं के कार्यक्रमों पर दिखाई नहीं देता। पुस्तकालयों की कई अलमारियां अनुसन्धान-परिणामों से भरी पड़ी हैं किन्तु कितने परिणाम शिक्षकों तक पहुँच पाते हैं और जो पहुँच भी पाते हैं उनमें से कितने शिक्षकों द्वारा अपनाए जाते हैं ? जब अनुसन्धान, शाला के कार्यक्रमों में सुधार न ला सकें तो उनका पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाने के अतिरिक्त क्या लाभ है ? हमनें जिन विद्वानों के नाम का उपरोक्त अनुच्छेद में उल्लेख किया है उन्होंने अनुसन्धान एवं व्यवसाय की कार्य-प्रणाली में इस खाई के कारणों का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि—

१. अनुसन्धाता अपना कार्य केवल अनुसन्धान करना समझते हैं, और उनका कार्यक्षेत्र से सम्बन्ध नहीं रहता।
२. अनुसन्धाता की यह मान्यता होती है कि वे जिस समस्या को महत्वपूर्ण समझते हैं वह समस्या क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्ता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होनी चाहिए।
३. अनुसन्धाताओं की यह मान्यता होती है कि उनके अनुसन्धानों के परिणाम क्षेत्र तक अपनेआप पहुँच जाएंगे। और यदि न भी पहुँचे तो उनको इसकी चिन्ता नहीं रहती क्योंकि वे अपना कार्य तो अनुसन्धान करना समझते हैं चाहे उसका प्रभाव क्षेत्र पर हो या नहीं।
४. अनुसन्धाताओं की उपरोक्त मान्यता के कारण एवं क्षेत्र से सम्पर्क न होने के कारण अनेक बार अनुसन्धान-हेतु चुनी गई समस्याएं सैद्धान्तिक होती हैं।
५. कभी-कभी तो यह भी धारणा पाई जाती है कि अनुसन्धान करना तो केवल विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों अथवा अनुसन्धाताओं का ही सर्वाधिकार है। शिक्षक अथवा क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति अनुसन्धान कार्य को उनकी क्षमता के परे की बात समझते हैं।
६. शिक्षा-अनुसन्धान के रूप को यदि हम देखें तो विचित्र परिस्थिति हमारे सामने आती है। सामान्यतया शिक्षा-अनुसन्धान में किसी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक अथवा अन्य अनुसन्धाता के मस्तिष्क में एक समस्या आती है उस पर अनुसन्धान किया जाता है, परिणाम प्रकाशित हो जाते हैं और इनमें से भाग्य से कुछ शिक्षकों द्वारा भले ही अपना लिए जाएं अन्यथा अधिकतर पुस्तकालयों में संचित होते चले जाते हैं।

शिक्षा-अनुसन्धान की इस दयनीय स्थिति को देखकर तथा उपरोक्त वर्णित

विश्लेषण के सन्दर्भ में लुइन, कोनियर कोरी आदि शिक्षाशास्त्रियों ने क्रियात्मक अनुसन्धान की विचारधारा हमारे सम्मुख रखी। क्रियात्मक अनुसन्धान की प्रमुख मान्यता यह है कि यदि व्यावसायिक कार्यकर्ता अपनी समस्याओं को पहिचान कर उनका वैज्ञानिक हल ढूंढेंगे तो अधिक लाभ होने की समावनाएं हैं।

शास्त्रीय अनुसन्धान एवं क्रियात्मक अनुसन्धान में अन्तर :

(अ) मान्यताओं में अन्तर :

शास्त्रीय अनुसन्धान के पीछे यह मान्यता रहती है कि अनुसन्धान के परिणामों को पढ़ने से शिक्षकों के व्यवहारों में परिवर्तन आ जाएंगे। किन्तु कुछ विचारकों का यह कहना है कि यह कुछ परिस्थितियों में भले ही हो जाए किन्तु सदैव सम्भव नहीं होता। शास्त्रीय अनुसन्धान में सामान्य परिस्थितियों को ध्यान में रखकर शोध-कार्य किया जाता है। कई बार शालाओं की विशिष्ट समस्याएं होती हैं, विशेष परिस्थितियां होती हैं और उन परिस्थितियों में सामान्य निष्कर्ष लागू नहीं होते। शाला से भाग जाने की समस्या का यदि कोई सामान्य हल निकाला जाए तो वह प्रत्येक शाला के लिए कदाचित् उपादेय सिद्ध न हो। इस समस्या का निदान प्रत्येक शाला के शिक्षकों को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल करना होगा। यही आग्रह क्रियात्मक अनुसन्धान में रहता है। इस अनुसन्धान के पीछे यह मान्यता रहती है कि यदि शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल कार्य-परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निकालें तो वह निष्कर्ष अधिक उपादेय होगा। क्योंकि इस प्रक्रिया द्वारा खोजा गया हल शिक्षक का स्वयं का हल होगा अतएव इससे शिक्षक के व्यवहारपरिवर्तन की अधिक सम्भावना होगी।

(ब) अभिकल्पों में अन्तर .

शास्त्रीय अनुसन्धान का अर्थ ही यह है कि एक पूर्व नियोजित सुदृढ़ अभिकल्प के आधार पर किया गया अनुसन्धान। इस प्रकार के अनुसन्धान का अभिकल्प पूर्ण रूप से पूर्वनियोजित रहता है और अनुसन्धान के बीच इस अभिकल्प को नहीं बदला जाता। पुन: नए सिरे से अनुसंधान प्रारम्भ करने पर ही अनुसन्धान के अभिकल्प में परिवर्तन किया जा सकता है। अनुसन्धान-हेतु प्रतिदर्श चयन करते समय भी यह ध्यान रखा जाता है कि यह प्रतिदर्श पूर्णतया जनसङ्ख्या का प्रतिनिधित्व करता हो।

क्रियात्मक अनुसन्धान का अभिकल्प इतना अनम्य नहीं होता। अनुसन्धान प्रक्रम के दौरान भी यदि अनुसन्धाता आवश्यकता अनुभव करे तो अभिकल्प में परिवर्तन कर सकता है। अनुसन्धान के परिणाम क्योंकि सीमित परिस्थितियों में ही अनुप्रयुक्त करने होते हैं इस कारण न्यादर्श (साम्पल) चयन करते समय उसके प्रतिनिधित्व करने के गुण पर विशेष बल नहीं दिया जाता।

(स) उपादेयता की कसौटियों में अन्तर .

शास्त्रीय अनुसन्धान की एक कसौटी यह है कि उसके परिणाम ज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत करने में कितने सहायक हैं। तथा दूसरी कसौटी यह है कि परिणाम की अनुप्रयुक्तता कितनी व्यापक है। यदि शास्त्रीय अनुसन्धान के परिणाम कुछ ही बच्चों पर अथवा एक ही पाठशाला पर अनुप्रयुक्त हो सकें तो उस शास्त्रीय अनुसन्धान की उपादेयता सीमित समझी जाती है। जबकि क्रियात्मक अनुसन्धान के सफलता की कसौटी होती है कि उसके परिणाम वहां तक कार्यक्षेत्र के वर्तमान स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होते हैं। क्रियात्मक अनुसन्धान का उद्देश्य कभी यह नहीं होता कि इस प्रकार के परिणाम व्यापक रूप से अनुप्रयुक्त हो सकें। इस अनुसन्धान की सफलता तो इसी में मानी जाती है कि इसके फलस्वरूप एक विशिष्ट शाला की समस्याओं का हल निकल सके, अथवा एक विशिष्ट शाला की कार्य-प्रणाली में सुधार लाया जा सके। क्रियात्मक अनुसन्धान की विचारधारा के समर्थक इसी कारण कार्यक्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों को सचेत करते हैं कि एक पाठशाला द्वारा अपनी समस्या के खोजे गए हल का दूसरी पाठशाला के कार्यकर्ताओं को अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए क्योंकि क्रियात्मक अनुसन्धान के परिणामों की अनुप्रयुक्तता सीमित है।

क्रियात्मक अनुसन्धानों की अनुप्रयुक्तता जब सीमित है तो फिर इसकी क्या उपादेयता हो सकती है ? यह प्रश्न आपके मन में उठना स्वाभाविक है। इस शंका-समाधान-हेतु यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि यद्यपि क्रियात्मक अनुसन्धान की अनुप्रयुक्तता दूसरे विद्यालयों के लिए सीमित है तथापि एक दूसरी दृष्टि से इस अनुसन्धान की अनुप्रयुक्तता अत्यन्त व्यापक एवं महत्वपूर्ण है। उसी विद्यालय की परिस्थितियों में आने वाले अगले छात्रों के लिए यह परिणाम सार्थक सिद्ध हो सकते हैं। उदाहरणार्थ एक विद्यालय में बहुत दूर के गाँवों से विद्यार्थी पढ़ने आते हैं। उनके आने-जाने में इतना समय व शक्ति लग जाती है कि वे घर पर अध्ययन नहीं कर पाते अतएव उनका शैक्षिक स्तर गिर रहा है। इस समस्या का यदि कोई हल शाला ने निकाला है तो अपने वर्ष भी दूर गाँवों से आने वाले विद्यार्थियों के लिए यह हल काम में लिया जा सकता है। इस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि दूसरे अर्थ में क्रियात्मक अनुसन्धान के परिणामों की अनुप्रयुक्तता व्यापक हो सकती है।

क्रियात्मक अनुसन्धान के सफलता की पूर्वापेक्षाएं :

(अ) शोध-वृत्ति की आवश्यकता :

किसी भी शाला अथवा अन्य क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसन्धान तभी सफल हो सकता है जब वहाँ के कार्यकर्ताओं में शोधवृत्ति विद्यमान हो। कार्यकर्ता यह अनुभव करें कि वर्तमान परिस्थिति असन्तोषजनक है और समस्याओं का हल हम स्वयं

वैज्ञानिक विधि से ढूँढ कर निकाल सकते हैं। अनेक बार हमें निम्न स्तर से असन्तोष नहीं होता, जैसी भी परिस्थितियां हों उन्हें हम यथावत स्वीकार कर लेते हैं, उन्हें सुधारने की हममें जिज्ञासा नहीं होती ऐसी मनोवृत्ति होने पर क्रियात्मक अनुसन्धान का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। शोध वृत्ति का दूसरा आयाम है पूर्वाग्रहों का न होना। हम जो कार्य अनेक दिनों से करते हैं वह हमें अत्यन्त प्रिय लगता है और उनमें सब अच्छाइयां दिखाई देती हैं। यदि हम हमारे कार्यस्तर को ऊँचा उठाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि उनका हम तटस्थ होकर मूल्यांकन करें और उसकी कमियों को दूर करने का प्रयास करें। एक और परिस्थिति कभी-कभी देखने को मिलती है जोकि क्रियात्मक अनुसन्धान की सफलता के लिए उपादेय सिद्ध नहीं हो सकती। कई बार हम एक निर्णय लेते हैं या कोई कार्य करने की विधि अपनाते हैं और हम यह मान लेते हैं कि इसके परिणाम उत्तम होंगे। कुछ व्यक्ति तो निर्णयों अथवा विधियों की उपादेयता का मूल्यांकन किए बिना ही उन्हें उत्तम मानकर दूसरे व्यक्तियों पर थोपते रहते हैं। हमें विवृतमना होना चाहिए। किसी भी निर्णय अथवा विधि की उपादेयता की परीक्षा किए बिना ही उसे उत्तम नहीं मान लेना चाहिए।

(ब) प्रजातांत्रिक वातावरण

क्रियात्मक अनुसन्धान की सफलता बहुत सीमा तक प्रजातांत्रिक वातावरण पर निर्भर करती है। इसके *घटक तत्त्व हैं—प्रत्येक व्यक्ति को नई विधियों के परीक्षण की स्वतन्त्रता*, अपनी कमियों को स्वीकार करने की तैयारी, दूसरों के विचारों का सम्मान आदि। और इन्हीं तत्त्वों के आधार पर क्रियात्मक अनुसन्धान आगे बढ़ सकता है। यदि कार्यकर्ताओं को वर्तमान पद्धति में हेर-फेर करने की स्वतन्त्रता न हो तो नई कार्यविधियां खोज निकालने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। साथ ही यदि शाला परिवार के किसी कार्यकर्ता द्वारा कोई नया अच्छा तरीका ढूँढ निकाला गया हो तो उसे यदि हम कार्यान्वित न करें तो क्रियात्मक अनुसन्धान सफल नहीं हो सकता।

(स) कार्यकर्ताओं का पारस्परिक सहयोग

क्रियात्मक अनुसन्धान ही नहीं, शाला की किसी भी प्रवृत्ति में बिना आपसी सहयोग के सफलता नहीं मिल सकती। कोई भी अकेला शिक्षक अनुसन्धान द्वारा शाला की वर्तमान परिस्थिति में सुधार नहीं ला सकता। उसे अपने विषय के अन्य शिक्षकों का, प्रधानाध्यापक का, कुछ सीमा तक उसी कक्षा को पढ़ाने वाले अन्य शिक्षकों का सहयोग यदि प्राप्त न हो तो वह क्रियात्मक अनुसन्धान में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अच्छे कार्य में अन्य सहकर्मियों के प्रोत्साहन से भी बहुत सहायता मिलती है।

क्रियात्मक अनुसन्धान की समस्याओं के क्षेत्र :

क्रियात्मक अनुसन्धान की समस्याएं जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कार्य-क्षेत्र से ही प्राप्त होती हैं। शिक्षा का कार्य-क्षेत्र है विद्यालय। अतः शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान की समस्याएं विद्यालय-जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित होंगी। क्रियात्मक अनुसन्धान की समस्याओं के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हो सकते हैं—

१. पाठ्यक्रम से संबंधित समस्याएं।
२. अध्यापन-विधाओं से संबंधित समस्याएं।
३. अधिगम से संबंधित समस्याएं।
४. पाठ्य सहगामी क्रियाओं से संबंधित समस्याएं।
५. शाला प्रशासन एवं संगठन से संबंधित समस्याएं।
६. "शाला-समुदाय संबंध" के क्षेत्र की समस्याएं।
७. मूल्यांकन से संबंधित समस्याएं।

क्रियात्मक अनुसन्धान की समस्याएं किस प्रकार की होती हैं यह स्पष्ट करने हेतु उदाहरण के रूप में कुछ समस्याएं यहां प्रस्तुत की जा रही हैं। इनमें से अनेकों समस्याएं भारतीय विद्यालयों के शिक्षकों ने क्रियात्मक अनुसन्धान-हेतु ली हैं।

१. गृह कार्य संशोधन की विभिन्न प्रणालियों की उपादेयता का तुलनात्मक अध्ययन।
२. दत्त कार्य-पद्धति एवं व्याख्यान-पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन।
३. छात्रों के उच्चारण दोषों का अध्ययन एवं उन्हें दूर करने हेतु आवश्यक परिहारात्मक कार्य।
४. छात्रों में स्वाध्याय प्रवृत्ति कैसे विकसित की जाए ?
५. छात्रों के वाचन की गति कैसे बढ़ाई जाय ?
६. छात्रों के सामान्य ज्ञान की वृद्धि कैसे की जाए ?
७. अध्यापक-गोष्ठियों को अधिक प्रभावोत्पादक बनाना।
८. अध्यापकों की अनुपस्थिति में छात्र खाली कालांश का सदुपयोग कैसे करें ?

भारत में क्रियात्मक अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने का प्रयास :

भारतवर्ष में भी इस नई विचारधारा के महत्व को पूर्णतया स्वीकार किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रयास किया जा रहा है कि अधिकाधिक शिक्षक अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक हों तथा अपनी समस्याओं का हल स्वयं ढूंढने का प्रयास करें। इस उद्देश्य को सामने रखकर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (N.C.E.R.T.) ने कुछ वर्ष पूर्व "प्रयोगात्मक योजनाओं" की एक योजना प्रारम्भ की। इसके अन्तर्गत जो विद्यालय कुछ क्रियात्मक अनुसन्धान करना चाहते हैं उन्हें अल्प आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इसका प्रयोजन यह है कि

अधिकाधिक विद्यालयों को क्रियात्मक अनुसन्धान के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।

क्रियात्मक अनुसन्धान-योजना

क्रियात्मक अनुसन्धान की योजना बनाने के लिए निम्न रूपरेखा सहायक हो सकती है—

१. समस्या की व्याख्या।
२ सम्भावित कारण।
३. क्रियात्मक-प्राक्कल्पना।
४. अनुसन्धान-अभिकल्प।
५. मूल्यांकन।

उदाहरण के रूप में एक क्रियात्मक अनुसन्धान योजना यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

समस्या :

बच्चों में वाचन की आदत विकसित करना।

सम्भावित कारण :

१. बालकों के पास स्वयं की पुस्तकें न होने के कारण वे पढ़ने में रुचि नहीं लेते।
२. बालकों को कौनसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए इसका ज्ञान न होने से वे पढ़ने में रुचि नहीं लेते।
३. बालकों को पुस्तकालय से पुस्तकें सुविधा से उपलब्ध नहीं हो पाती।

क्रियात्मक प्राक्कल्पना

१. यदि बालकों को उनके स्तर के लिए उपयुक्त पुस्तकों की सूची प्राप्त हो सके तथा वे पुस्तकें उन्हें सुविधा से प्राप्त हो सकें तो उनमें पढ़ने की आदत विकसित हो सकती है।
२. यदि अध्यापक अध्यापन के दौरान छात्रों को सन्दर्भ साहित्य के सम्बन्ध में अवगत कराएं एवं ऐसे दत्तकार्य दें जिनमें पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त पुस्तकों को पढ़ने की आवश्यकता हो तो बालकों में वाचन की आदत विकसित हो सकती है।

अनुसन्धान-अभिकल्प

प्रथम चरण.

क्रियात्मक-अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व जिस कक्षा के बालकों पर प्रयोग किया जा रहा है, उन्होंने गत वर्ष औसतन एक माह में कितनी पुस्तकें पढ़ीं, यह पता लगाया जाएगा। पुस्तकालय से यह सूचना प्राप्त की जाएगी।

द्वितीय चरण :

विभिन्न विषय के अध्यापक अपने विषयों में उपलब्ध पुस्तकों का स्तरानुकूल

वर्गीकरण कर सूचियां तैयार करेंगे। ये सूचियां छात्रों में वितरित की जाएंगी।

तृतीय चरण :

अध्यापक पढ़ाते समय सन्दर्भ पुस्तकों की ओर बालकों का ध्यान आकर्षित करेंगे तथा ऐसी अध्यापन-विधाएं काम में लेंगे एवं दत्त कार्य देंगे जिनमें पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त पुस्तकें पढ़नी पड़ें।

चतुर्थ चरण :

शाला के कार्यक्रम में स्वाध्याय के लिए एक कालांश प्रतिदिन का प्रावधान होगा और इसमें छात्रों को पुस्तकें देने का प्रबन्ध होगा।

पंचम चरण :

छात्र अपने पास एक डायरी रखेंगे उसमें वे जो पुस्तकें पढ़ते हैं उनका साराश लिखेंगे।

षष्ठ चरण :

प्रयोग समाप्त होने के पश्चात् छात्रों ने औसतन एक माह में कितनी पुस्तकें पढ़ीं, यह ज्ञात किया जाएगा।

मूल्यांकन :

प्रयोग के पूर्व एक बालक औसतन एक माह में कितनी पुस्तकें पढ़ता था और प्रयोग के फलस्वरूप एक बालक की औसतन एक माह में पढ़ी हुई पुस्तकों की तुलना की जाएगी तथा यह ज्ञात किया जाएगा कि पुस्तकों की सख्या में कितनी वृद्धि हुई है और क्या यह वृद्धि सार्थक है? इन प्रश्नों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाएगा कि क्या उपर्युक्त समस्या प्रयोग में अपनाए गए तरीकों से हल हो सकती है।

सारांश

क्रियात्मक अनुसन्धान की पृष्ठभूमि में जो आधारभूत विचारधारा है वह यह कि अनुसन्धान केवल विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों की बपौती नहीं है। क्षेत्र में कार्यरत कार्यकर्ता भी अपनी समस्याओं के संबंध में चिन्तन करने का अधिकार रखते हैं और अपनी समस्याओं का हल वैज्ञानिक ढंग से ढूंढ निकाल सकते हैं। वह प्रक्रम जिसके फलस्वरूप शिक्षक प्रधानाध्यापक, निरीक्षक अथवा अन्य प्रशासक अपनी समस्याओं का पता लगाकर उन्हें वैज्ञानिक ढंग से हल करने का प्रयास करते हैं, क्रियात्मक अनुसन्धान कहलाता है। क्रियात्मक अनुसन्धान के अन्तर्गत कार्यकर्ता अपने वातावरण एवं विशिष्ट परिस्थितियों के सदर्भ में समस्या का समाधान ढूंढता है अतः क्रियात्मक अनुसन्धान के परिणामों की अनुप्रयुक्तता सीमित होती है। क्रियात्मक एवं शुद्ध अनुसन्धान की मान्यताओं, प्रविधियों एव परम्पराओं की कसौटियों में भी अन्तर होता है। क्रियात्मक अनुसन्धान की सफलता के लिए शोधवृत्ति, प्रजातांत्रिक वातावरण

एवं कार्यकर्तामों के पारस्परिक सहयोग की मावश्यकता होती है। भारतवर्ष में इस विचारधारा को प्रोत्साहन देने के लिए NCERT द्वारा किए गए प्रयास प्रशंसनीय हैं।

अभ्यास-कार्य

१. क्रियात्मक अनुसन्धान किन प्रमुख मान्यताओं पर आधारित है।
२. क्रियात्मक एवं शुद्ध अनुसन्धान के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
३. क्रियात्मक अनुसन्धान के परिणामों की अनुप्रयुक्तता सीमित होते हुए भी महत्वपूर्ण क्यों होते हैं ?
४. अपने अनुभव के आधार पर कुछ क्रियात्मक अनुसन्धान के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं के उदाहरण दीजिए।

महत्व अनुसन्धान-कार्य में इसी कारण है। इस प्राविधि के अनेक अन्य भी लाभ हैं जिनका यथास्थान वर्णन किया जाएगा। साक्षात्कार के इन लाभों का वर्णन करने से पूर्व इसके अर्थ का और अधिक स्पष्टीकरण करना अनुपयुक्त नहीं होगा।

साक्षात्कार का अर्थ जो भाषान्तर है "इन्टरव्यू" यह शब्द फ्रेंच शब्द "एन्टर-व्हाई" शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'एक झलक प्राप्त करना' शायद इसी कारण श्रीमती डॉ० इन्दु दवे ने अपने एक लेख में साक्षात्कार का अर्थ बताया है। इस प्रक्रम से जिसमे पारस्परिक संबंध स्थापित कर एक व्यक्ति दूसरे की झलक प्राप्त करता है। इसका आवश्यक परिणाम जानकारी प्राप्त करना होता है। हम्फरे तथा ट्रेवलर महोदय ने एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से प्रत्यक्ष भेंट को साक्षात्कार का एक आवश्यक अंग माना है। विघम तथा मूर महोदय साक्षात्कार को उद्देश्य आधारित वार्तालाप मानते हैं तथा पार्टेन महोदय ने साक्षात्कार-विधि उस विधि को बताया है जिसमे कुशल साक्षात्कारकर्ता कुछ व्यक्तियों से मिलकर उनसे जानकारी प्राप्त करते हैं। उप-रोक्त विभिन्न परिभाषाओं से साक्षात्कार के कुछ प्रमुख लक्षण हमारे सामने आते हैं, जो निम्नलिखित हैं।

१. साक्षात्कार में व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक होता है।
२. साक्षात्कार के अन्तर्गत हम साक्षात्कृत से कुछ विशेष उद्देश्य ध्यान मे रखते हुए वार्तालाप करते हैं।
३ इसके फलस्वरूप हम साक्षात्कृत से जानकारी प्राप्त करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि दो व्यक्ति मिलकर गप-शप कर रहे हैं तो उसे हम साक्षा-त्कार नही कहेंगे अथवा एक अध्यापक कक्षा मे कोई सूचनाएं दे रहा हो तो उसे साक्षात्कार नहीं कहेंगे। अनुसन्धान की भाषा मे साक्षात्कार एक सूचना प्राप्त करने की प्राविधि है। इसके अन्तर्गत अनुसन्धाता किसी व्यक्ति विशेष से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर पूर्व निर्धारित उद्देश्यो को ध्यान में रखते हुए कुछ सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

साक्षात्कार के लाभ :

१ साक्षात्कार प्राविधि का एक लाभ तो हम प्रारम्भ मे ही लिख चुके हैं और वह यह कि इसके द्वारा अनुसन्धाता ऐसी जानकारी प्राप्त कर सकता है जोकि कदाचित् अन्य प्राविधियों एवं उपकरणों द्वारा प्राप्त न हो सके। इसके अतिरिक्त भी साक्षात्कार के अनेक लाभ हैं जिनके कारण अनेक अनुसन्धानों में इस प्राविधि का प्रयोग किया जाता है।

२. प्रश्नावलियां भेजने पर एक कठिनाई हमारे सम्मुख यह आती है कि प्रतिदर्श में चयनित अनेक व्यक्ति उसका उत्तर नहीं देते जिस कारण प्रतिदर्श की यादृच्छिकता पर प्रभाव पड़ता है। साक्षात्कार मे क्योंकि हम व्यक्तियों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करते हैं इस कारण सहयोग न मिलने की अथवा

उत्तर न देने की समस्या खड़ी नहीं होती। इस कारण इस प्राविधि को काम में लेकर हम प्रतिदर्श की यादृच्छिकता को बनाए रख सकते हैं।

३. लिखित उत्तरों में प्राप्त सूचनाओं की अपेक्षा व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा प्राप्त सूचनाएं अधिक विश्वसनीय होती हैं। बशर्ते कि साक्षात्कारकर्ता एक प्रशिक्षित व्यक्ति हो।

४. साक्षात्कार के दौरान यदि किसी प्रश्न का उत्तर स्पष्ट न हो अथवा उत्तर के सम्बन्ध में हमें शंका हो तो अधिक प्रश्न पूछकर हम स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकते हैं।

५. साक्षात्कार में हम न केवल यह जान पाते हैं कि किसी व्यक्ति की अमुक विषय में क्या राय है अपितु हम यह भी पता लगा सकते हैं ऐसी राय बनने के पीछे क्या कारण निहित है।

६. इस प्राविधि को अन्य माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं को पूर्ण बनाने-हेतु भी एक पूरक प्राविधि के रूप में काम में लिया जा सकता है।

७. अन्य माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं की प्रामाणिकता स्थापित करने-हेतु भी इस प्राविधि का उपयोग किया जा सकता है।

८. प्रश्नावलियों में एक सम्भावना यह भी रहती है कि उत्तर देने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की राय लेकर उत्तर दे। यह सम्भावना साक्षात्कार में नहीं रहती क्योंकि जिस व्यक्ति का साक्षात्कार किया जा रहा है उसे इस बात का पूर्वाभास नहीं रहता कि उसे कौनसे प्रश्न पूछे जाने वाले हैं?

९. अनेक बार अधिक व्यस्त व्यक्तियों से हम लम्बी प्रश्नावलियों के उत्तर की अपेक्षा नहीं कर सकते। किन्तु स्वयं जाकर साक्षात्कार करने पर उनसे सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

१०. ऐसी परिस्थिति में जबकि हमें अनपढ़ व्यक्तियों से सूचनाएं प्राप्त करनी हो तो साक्षात्कार का उपयोग लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

साक्षात्कार की सीमाएं :

साक्षात्कार-प्राविधि के प्रयोग में क्या लाभ हो सकते हैं इसका वर्णन ऊपर किया गया है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह विधि पूर्णतया गुणों से ही युक्त है। इसके प्रयोग में कुछ कठिनाइयां भी आ सकती हैं जिन्हें जान लेना उपयुक्त सिद्ध होगा—

१. इस प्राविधि को अपनाने में अधिक धन एवं समय की आवश्यकता होती है विशेषकर जब साक्षात्कृत दूर-दूर स्थानों पर स्थित हों।

२. साक्षात्कारकर्ता जबतक कि पूर्णतया तटस्थ न हो उनके स्वयं के पूर्वाग्रहों का प्रभाव साक्षात्कार के अभिलेखों पर पड़ सकता है।

३. साक्षात्कारकर्ता यदि साक्षात्कार की प्राविधि में प्रशिक्षित न हो तो साक्षात्कार

द्वारा प्राप्त सूचनाएं अधिक विश्वसनीय नहीं होंगी।

साक्षात्कार के प्रकार :

साक्षात्कार के प्रमुख दो प्रकार हैं—संरचित साक्षात्कार एवं असंरचित साक्षात्कार। संरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता के पास साक्षात्कार के दौरान पूछे जाने वाले प्रश्नों की सूची रहती है और मूलतः वे ही प्रश्न पूछे जाते हैं। असंरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता के सम्मुख मूल उद्देश्य अवश्य रहते हैं किन्तु पूर्व निर्धारित प्रश्नों की सूची नहीं रहती। साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार के दौरान परिस्थितिनुसार प्रश्न पूछ सकता है। प्रश्नों की संख्या, भाषा आदि पूर्व निर्धारित नहीं होती।

संरचित साक्षात्कार के लाभ यह हैं कि समान प्रश्न विभिन्न व्यक्तियों से पूछे जाने के कारण प्राप्त उत्तरों की तुलना में सुविधा रहती है। प्रश्नों का प्रारूप पूर्व निर्धारित होने के कारण प्रश्नकर्ता के पूर्वाग्रह का प्रभाव इस प्रकार के साक्षात्कार में होने की संभावना कम रहती है।

असंरचित साक्षात्कार के पक्ष में जो बिन्दु हैं उनमें से प्रमुख यह है कि इस साक्षात्कार में नम्यता की अधिक सम्भावना रहती है। साक्षात्कारकर्ता परिस्थितिनुसार प्रश्नों को बदलकर महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त कर सकता है। व्यक्तिगत भिन्नताओं का भी समावेश इस साक्षात्कार में किया जा सकता है क्योंकि इसमें आवश्यक नहीं होता कि एक ही प्रश्न सब व्यक्तियों को पूछे जाए। कुशल साक्षात्कारकर्ता की व्यक्तिगत कुशलता के उपयोग की यहां अधिक सम्भावना रहती है।

साक्षात्कार को सफल बनाने-हेतु कुछ सुझाव :

वैसे तो साक्षात्कार की सफलता के लिए कोई सार्वभौमिक सूत्र प्रतिपादित नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक कुशल साक्षात्कारकर्ता की सूचनाएं प्राप्त करने की अपनी कला होती है। कई वर्षों के अनुभवों के पश्चात् एक साक्षात्कारकर्ता इस कला को हस्तगत कर सकता है। फिर भी नए साक्षात्कारकर्ता के मार्गदर्शन-हेतु कुछ सुझाव उपादेय सिद्ध हो सकते हैं।

(१) साक्षात्कार की तिथि एवं समय का निर्धारण

किसी भी साक्षात्कार की सफलता-हेतु सर्वप्रथम ध्यान रखने योग्य बिन्दु यह है कि किसी भी व्यक्ति से साक्षात्कार करने के लिए समय एवं तिथि उस व्यक्ति की सुविधानुसार निश्चित कर लेनी चाहिए। अन्यथा जिस समय हम साक्षात्कार-हेतु जाएंगे तो हो सकता है कि वह व्यक्ति किसी अन्य महत्वपूर्ण कार्य में व्यस्त हो अथवा वह हम से वार्तालाप के लिए मानसिक दृष्टि से तैयार न हो। साक्षात्कार का समय एवं स्थान व्यक्तिविशेष पर निर्भर करेगा। कुछ अधिकारियों से उनके कार्यालय में ही साक्षात्कार करना उपयुक्त हो सकता है जबकि अन्य व्यक्ति सम्भवतया साक्षात्कारकर्ता से घर पर ही मिलना पसन्द करें। ग्रामीण लोगों से साक्षात्कार का समय

संध्या होने पर ही उपयुक्त हो सकता है। यदि कोई साक्षात्कारकर्ता किसी ग्राम में दिन में जाएगा तो उसे शायद ग्रामीण महिलाएँ ही घर पर मिलें।

(२) साक्षात्कार में प्राप्त सूचनाओं की गोपनीयता का आश्वासन :

साक्षात्कारकर्ता किसी व्यक्ति से सूचनाएं प्राप्त करने में तभी सफल हो सकता है जब व्यक्ति को यह विश्वास हो कि उसके द्वारा दी हुई सूचनाओं को पूर्णतया गोपनीय रखा जाएगा तथा उन सूचनाओं का दुरुपयोग नहीं किया जाएगा। इसीलिए साक्षात्कारकर्ता का सर्वप्रथम कर्तव्य यह हो जाता है कि वह साक्षात्कृत में यह विश्वास उत्पन्न करे। यह विश्वास केवल मौखिक अभिव्यक्ति से ही उत्पन्न नहीं होता, साक्षात्कारकर्ता के आचरण से भी इस बात का आभास होना चाहिए। इसीलिए साक्षात्कार के समय अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति को टालना चाहिए। यदि साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कृत द्वारा दी गई सूचनाओं को उसी के सामने लिखे तो भी साक्षात्कृत के सचेत हो जाने की सम्भावना रहती है। साक्षात्कार के तुरन्त पश्चात् साक्षात्कार के निष्कर्षों को लिखा जा सकता है। इसके सम्बन्ध में कोई सामान्य नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता, व्यक्ति तथा परिस्थिति पर सूचनाओं के संकलन की विधि निर्भर करेगी।

३. साक्षात्कार के लिए उपयुक्त वातावरण :

साक्षात्कार ऐसे स्थान पर किया जाना चाहिए जहां शान्ति, गोपनीयता एवं एकान्त मिल सके। अर्थात् साक्षात्कार के समय अन्य किसी व्यक्ति की उपस्थिति वाञ्छनीय नहीं होती। साक्षात्कार के समय शोरगुल, टेलीफोन की घण्टी, आगन्तुकों के आने-जाने के कारण व्यवधान उपस्थित होने से साक्षात्कार का वातावरण बिगड़ जाता है। साक्षात्कृत व्यक्ति यदि साक्षात्कार के समय अन्य किसी कार्य में व्यस्त हो तो साक्षात्कार ठीक ढंग से आगे नहीं बढ़ सकता। अनेक बार यह देखा जाता है कि साक्षात्कार के समय अधिकारी पत्रों पर हस्ताक्षर करने में अथवा अन्य किसी कार्य में व्यस्त रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में कुशल साक्षात्कारकर्ता उचित प्रेरणा प्रदान कर साक्षात्कृत का ध्यान अपने प्रश्नों की ओर आकर्षित कर सकता है। साक्षात्कारकर्ता यदि यह अनुभव करे कि साक्षात्कृत जल्दी में है तो उससे साक्षात्कार के लिए कोई अन्य समय मांग लेना चाहिए क्योंकि ऐसे समय पर दी गई सूचनाएं पूर्णतया विश्वसनीय न होने की धारणा रहती है।

साक्षात्कार के मुख्य सोपान :

प्रथम सोपान—साक्षात्कृत से भेंट :

शिष्टाचार के सामान्य नियमों का पालन करना साक्षात्कार की सफलता के लिए आवश्यक है। साक्षात्कृत से भेंट होते ही शिष्टाचार के नाते नमस्ते करने तथा साक्षात्कृत के जीवन से संबंधित सामान्य प्रश्न पूछने से आत्मीयता प्रदर्शित होती है। सीधे अपने काम की बात प्रारम्भ कर देना शिष्टाचार के नियमों के विरुद्ध है। इन प्रारम्भिक बातों के पश्चात् साक्षात्कारकर्ता को अपने सम्बन्ध में जानकारी देनी

चाहिए तथा सम्भवतया कितना समय लग सकता है इसका स्पष्टीकरण कर देना चाहिए।

द्वितीय सोपान—साक्षात्कार के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण :

प्रारंभिक प्रस्तावना के उपरान्त साक्षात्कृत के सम्मुख साक्षात्कार के मूल उद्देश्य स्पष्ट करने चाहिएं तथा उनसे हमें क्या अपेक्षा है, इसके सम्बन्ध की चर्चा भी कर लेना उपयुक्त सिद्ध हो सकता है। इसी सोपान में साक्षात्कृत को यह विश्वास दिलाना आवश्यक है कि उससे प्राप्त सूचनाएं पूर्णतया गोपनीय रखी जाएगी तथा उनका कोई दुरुपयोग नहीं किया जाएगा। साक्षात्कृत को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि सूचनाएं केवल अनुसन्धान-हेतु प्राप्त की जा रही हैं तभी वह सही सूचनाएं देगा।

तृतीय सोपान—मूल साक्षात्कार :

उद्देश्यों के स्पष्टीकरण के पश्चात् साक्षात्कारकर्ता को तुरन्त साक्षात्कार के प्रश्नों पर आ जाना चाहिए क्योंकि अधिक व्यस्त व्यक्ति बहुत ज्यादा इधर-उधर की बातें पसंद नहीं करते।

संरचित साक्षात्कार मे तो प्रश्न पूर्व निर्धारित ही होते हैं इस कारण साक्षात्कारकर्ता को *विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता किन्तु असंरचित* साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता को प्रश्नों को मोटे रूप से सोच लेना चाहिए ताकि अनर्गल प्रश्नों में समय नष्ट न हो। अधिकतर परिस्थिति में तो साक्षात्कार सूची के आधार पर ही साक्षात्कार करना उपयुक्त होता है।

साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कृत का मत जानते समय पूर्वाग्रहयुक्त प्रश्न नहीं पूछने चाहिए।

साक्षात्कार के समय प्रश्नों को जितना अनौपचारिक ढंग से पूछा जाएगा उतना ही उत्तर भी स्वाभाविक होगा। यह तभी सम्भव है जब साक्षात्कारकर्ता को प्रश्न याद हों।

प्रश्नों के उत्तरों को लिखने से साक्षात्कृत का अधिक समय नष्ट होता है तथा प्रश्नों के बीच का अन्तर भी बढ़ जाता है। अतः प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर दूसरा प्रश्न पूछ लेना चाहिए व साक्षात्कृत जबतक दूसरे प्रश्न पर विचार करे साक्षात्कारकर्ता को प्रथम प्रश्न का उत्तर लिख लेना चाहिए। यदि उत्तरों को याद रखा जा सके व साक्षात्कार के उपरान्त तुरन्त लिख लिया जाय तो और भी अधिक अच्छा होगा। किन्तु यह प्रत्येक साक्षात्कार में सम्भव नहीं है। विशेषकर जब प्रश्नों की संख्या अधिक हो तथा प्रश्न तथ्यिक हों।

साक्षात्कारकर्ता यदि यह देखे कि साक्षात्कृत प्रश्नों के उत्तर देने में हिचकिचाहट अनुभव कर रहा है तो उचित ढंग से उसे प्रश्नोत्तर के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। प्रश्नों के उत्तर न देने के कई कारण हो सकते हैं। जैसे—

साक्षात्कार के परिणामों का अभिलेखन :

साक्षात्कार के परिणामों के अभिलेखन में ध्यान रखने योग्य एक बात है कि अभिलेखन में तथ्यों की 'प्रामाणिकता' बनी रहनी चाहिए। अभिलेखन की विधि ऐसी हो जिसके द्वारा साक्षात्कार के सब प्रमुख तथ्य सही-सही प्राप्त हो सकें। अभिलेखन हेतु साक्षात्कारकर्ता दो तरीके अपना सकता है। एक तो साक्षात्कार के दौरान ही तथ्यों का अभिलेख हो अथवा दूसरा साक्षात्कार के तुरन्त उपरान्त परिणामों का अभिलेखन कर लिया जाए। दोनों ही विधियों के अपने लाभ एवं कमियां हैं। यदि साक्षात्कार में बहुत अधिक तथ्यों का संकलन करना हो तब साक्षात्कार के दौरान ही अभिलेखन वाछनीय होता है।

साक्षात्कार में प्राप्त सूचनाएं कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हों उनका अभिलेखन यदि ठीक नहीं किया जाए तो उनका उपयोग अनुसन्धान में नहीं किया जा सकता। इसीलिए साक्षात्कारकर्ता को अभिलेखन की पूर्ण योजना पहले से ही बना लेनी चाहिए।

साक्षात्कार के परिणामों के अभिलेखन में निम्न बिन्दु ध्यान में रखने योग्य हैं—

१. अभिलेखन सुवाच्य, स्पष्ट एवं स्वच्छ होना चाहिए जिससे कुछ समय उपरान्त भी अभिलेखों का विश्लेषण किया जाए तो कठिनाई न पड़े।
२. अभिलेखन तटस्थतापूर्ण एवं प्रामाणिक होना चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को इस बात की सतर्कता बरतनी चाहिए कि उसके पूर्वाग्रहों का असर कहीं अभिलेखन पर न पड़े।
३. अभिलेखन में सम्पूर्ण तथ्यों को समाविष्ट करने-हेतु संकेतों का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ साक्षात्कारकर्ताओं ने तो अभिलेखन में शीघ्र-लिपि का भी प्रयोग किया है। जिन व्यक्तियों की स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी होती है वे केवल प्रमुख शब्दों को उतार लेते हैं तथा बाद में अभिलेख को पूरा कर लेते हैं।
४ साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कृत द्वारा बोले गए शब्द ही महत्वपूर्ण नहीं होते, उसके चेहरे की भावभंगिमा, उसके द्वारा किसी बिन्दु पर दिया गया बल आदि बातें भी अभिलेखन में समाविष्ट हो जानी चाहिएं।

(ख) प्रेक्षण

प्रेक्षण का उपयोग हम दैनंदिन जीवन में भी करते हैं। हम जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं उनका प्रेक्षण करते हैं। वे कैसा व्यवहार करते हैं, उनकी क्या रुचियां हैं, वे किन परिस्थितियों में बिगड़ जाते हैं ? आदि, अनेक बातों का हम प्रेक्षण करते हैं और इन्हीं अनुभवों के आधार पर हम अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में राय बनाते हैं। नए प्रेक्षणों के आधार पर हम अपनी राय भी बदलते रहते हैं।

प्रेक्षण का प्रयोग जिस प्रकार सामान्य जीवन में करते हैं वह एक सुव्यवस्थित प्रयोग नहीं है। शोध-कार्य में जब हम प्रेक्षण को दत्त संकलन की एक प्राविधि के रूप में काम में लेना चाहते हैं तो इसे अधिक सुनियोजित एवं उद्देश्य आधारित बनाना होगा। तभी इससे प्राप्त प्रमाणों को हम वैज्ञानिक शोध का आधार बना सकते हैं। प्रेक्षण तभी वैज्ञानिक हो सकता है जब उसमें निम्न गुण हों—

१. प्रेक्षण का एक पूर्व निर्धारित उद्देश्य होना चाहिए।
२. प्रेक्षण सुनियोजित होना चाहिए।
३. प्रेक्षण के अभिलेखन सुव्यवस्थित ढंग से होना चाहिए।
४. प्रेक्षण के परिणाम की विश्वसनीयता एवं वैधता को बढ़ाने हेतु कुछ नियंत्रण हों।

प्रेक्षण का उपयोग :

जब हमें किसी व्यक्ति एवं समूह के व्यवहार का अध्ययन किन्हीं निर्धारित परिस्थितियों में करना हो तो प्रेक्षण प्राविधि का उपयोग किया जाता है। जैसे बालक क्रोध के आवेग में आने पर किस प्रकार का व्यवहार करते हैं। इसका अध्ययन प्रेक्षण द्वारा किया जा सकता है। इसी प्रकार एक प्रधानाध्यापक अध्यापक मण्डल की बैठक का संचालन किस प्रकार करता है यह प्रेक्षण का विषय हो सकता है।

प्रेक्षण के लाभ

(१) प्रेक्षण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके द्वारा हम प्रत्यक्ष व्यवहार को देख सकते हैं। अन्य प्राविधियों में हम प्रत्यक्ष व्यवहार को न देखकर उसके सम्बन्ध का वर्णन प्राप्त कर पाते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई बालक शरारत करता है तो अध्यापक का क्या व्यवहार होता है इसे हम प्रेक्षण द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं। प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार में तो अध्यापक द्वारा कहे गए उत्तर पर ही हमें विश्वास करना पड़ता है। अनेक बार व्यक्ति के कथन में अथवा सोचने में एवं व्यवहार में अन्तर हो सकता है। एक शिक्षक पूछे जाने पर यह कह देगा कि बालक यदि शैतानी करता है तो सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार द्वारा उसके समस्यात्मक व्यवहार को ठीक करूंगा। किन्तु वास्तविक व्यवहार में शायद वही शिक्षक बालक द्वारा शैतानी करने पर शारीरिक दण्ड का सहारा ले। जब व्यक्ति किसी व्यवहार का वर्णन करता है तब वह वास्तविक रूप से उस परिस्थिति में न होने के कारण उस परिस्थिति के दबाव एवं तनावों से मुक्त रहता है। अतः उसका उत्तर स्वाभाविक न होकर कृत्रिम होने की संभावना रहती है।

होती हैं जिनमें हम व्यवहार का वर्णन शब्दों में नहीं कर सकते। जैसे वात्सल्य कितना है या क्रोध का आवेश कैसा है यह तो प्रत्यक्ष प्रेक्षण द्वारा ही पता लगाया जा सकता है। अनेक बार हम प्रायोगिक विधि में पशुओं अथवा शिशुओं के व्यवहारों को जानना चाहते हैं। ये अपने अनुभवों अथवा व्यवहारों का उल्लेख नहीं कर सकते। अतः हमें इनका प्रेक्षण ही करना पड़ता है।

कभी-कभी कुछ व्यक्ति प्रश्नों का उत्तर देने में संकोच अनुभव करते हैं अथवा वे अनुभव करते हैं कि उन्हें ही क्यों अलग छांटा जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में प्रेक्षण द्वारा ही हम दत्त सामग्री एकत्रित कर सकते हैं।

प्रेक्षण की सीमाएं :

कई बार कुछ घटनाएं ऐसे समय घट सकती हैं जब उनका प्रेक्षण करने के लिए हम तैयार न हों। जिस घटना का हम प्रेक्षण करना चाहते हैं आवश्यक नहीं कि वह हमारी इच्छानुसार निर्धारित समय पर ही घटे। कोई व्यक्ति नाराज होने पर कैसा व्यवहार करता है यह हमें यदि देखना हो तो हमें तबतक ठहरना पड़ेगा जब-तक कि वह व्यक्ति नाराज न हो जाय। कभी-कभी तो कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जो हमारे जीवन काल में न घटें। उदाहरणार्थ युद्ध, भूकम्प आदि ऐसी घटनाएं हैं जिनका प्रेक्षण हम आसानी से नहीं कर सकते।

कुछ व्यवहार सामान्यतया प्रेक्षित नहीं होते। पारिवारिक कलह, पति-पत्नी के संबंध आदि अनेकों ऐसी परिक्रियाएं हैं जिनका हम प्रेक्षण नहीं कर सकते।

प्रेक्षण की परिस्थिति में इतने तत्व क्रियाशील रहते हैं कि यह सिद्ध करना कठिन हो जाता है कि अमुक व्यवहार अमुक कारण से ही प्रभावित हुआ है। हां, नियंत्रित प्रेक्षण में यह अवश्य सम्भव हो सकता है जिसका कि उल्लेख हम आगे करेंगे।

प्रेक्षण की अवधि भी सीमित होने के कारण हम इसके द्वारा सीमित तथ्य ही प्राप्त कर पाते हैं।

नियंत्रित एवं अनियंत्रित प्रेक्षण :

प्रेक्षण के दो प्रकार हैं—नियंत्रित एवं अनियंत्रित। अनियंत्रित प्रेक्षण के अन्तर्गत जिस परिस्थिति में भी व्यवहार घटित होता है हम-उसी परिस्थिति में उसका प्रेक्षण करते हैं। किन-किन बातों का अभिलेखन होगा यह परिस्थिति पर ही निर्भर करता है।

नियंत्रित प्रेक्षण में हम जिन परिस्थितियों में व्यवहार का प्रेक्षण करना चाहते हैं उन सब परिस्थितियों की हमें पूर्व जानकारी होती है। उन वांछित परिस्थितियों को निर्माण करते हैं और उसमें विषयी को रखकर उसके व्यवहार का प्रेक्षण किया जाता है। इस प्रेक्षण में हमें पूर्णरूप से यह विदित होता है कि कौनसी परिस्थितियां किस प्रकार के व्यवहार को उत्तेजित कर रही हैं? इस प्रेक्षण

धारणा हमारे मस्तिष्क में होनी चाहिए।

२. प्रेक्षण के परिणामों के अभिलेखन-हेतु सुव्यवस्थित तरीका पहले से ही निर्धारित कर लेना चाहिए।
३. किसी भी घटना का सूक्ष्म प्रेक्षण कीजिए ताकि कोई महत्वपूर्ण बात छूट न जाए।
४. प्रेक्षण करते समय आत्मपरकता का प्रभाव नहीं होना चाहिए। कभी-कभी प्रेक्षक किसी संस्था से सम्बंधित होने के कारण उसकी कमियां लिखने में हिचकिचाता है।
५. प्रेक्षण में जो वस्तुस्थिति आपने देखी है केवल उसका वर्णन होना चाहिए। प्रेक्षक की राय नहीं। यदि आपने किसी प्रधानाध्यापक के किसी व्यवहार को देखा है तो उस व्यवहार का वर्णन मात्र कर दीजिए। यह मत कहिए कि यह प्रधानाध्यापक अप्रजातांत्रिक है। प्रेक्षण में यदि हम अपने व्यक्तिगत मत का भी समावेश कर देंगे तो वह प्रेक्षण आत्मपरक प्रेक्षण हो जाएगा। यदि हम प्रेक्षण के परिणाम ऐसे लिखें कि पढ़ने वाले व्यक्ति का पहले से दुराग्रह बन जाय तो फिर वह प्रेक्षण वैज्ञानिक नहीं होगा।
६. प्रेक्षण एवं अभिलेखन में कम से कम समयान्तर होना चाहिए। स्मृति पर आधारित प्रेक्षण-अभिलेख विश्वसनीय नहीं हो सकते।
७. प्रेक्षण के परिणामों की विश्वसनीयता की जाँच या तो दो प्रेक्षकों के प्रेक्षणों का मिलान करके कर लेनी चाहिए अथवा अन्य किसी उपकरण से प्राप्त तथ्यों से मिलान कर के भी की जा सकती है।

(ग) समाजमिति :

व्यक्ति जिस किसी क्षेत्र में काम करता है उसमें उसे उस क्षेत्र के अन्य व्यक्ति से सुखद सम्बन्ध स्थापित करने होते हैं क्योंकि उसकी कार्यकुशलता पर अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तर्सम्बन्धों का प्रभाव पड़ता है। यह तथ्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए लागू होता है चाहे वह व्यावसायिक जीवन हो, सामाजिक जीवन हो अथवा शालीय जीवन हो। शाला में यदि किसी बालक को उसकी कक्षा के अन्य बालकों के साथ अन्तर्सम्बन्ध ठीक नहीं होंगे तो उसकी शैक्षिक उपलब्धि पर इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। छात्रों के पारस्परिक संबंधों के इस महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक शिक्षक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह जिस कक्षा को पढ़ा रहा है उसके छात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करे। उसे यदि यह ज्ञात हो कि समूह का कौनसा बालक एकाकी है अथवा अस्वीकृत है तो वह ऐसे बालकों के पुर्नस्थापन-हेतु उचित कदम उठा सकता है। समाजमिति वह प्राविधि है जो हमें समूह के व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करने में सहायता प्रदान करती है। अतः शिक्षकों, मनोवैज्ञानिकों एवं अनुसंधाताओं को समाजमिति का ज्ञान होना आवश्यक है।

किसी समूह के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करने-हेतु समाजमिति का प्रयोग :

समाजमिति जैसाकि हम पहले लिख चुके हैं व्यक्तियों के अन्तर्सम्बंधों के अध्ययन की एक प्राविधि है। इस प्राविधि के अन्तर्गत हम समूह के व्यक्तियों से कुछ प्रश्न पूछते हैं और उन पर प्राप्त उत्तरों के आधार पर समूह के सदस्यों के अन्तर्सम्बन्धों का पता लगाते हैं। प्रश्नो के माध्यम से व्यक्ति के सम्मुख कुछ ऐसी परिस्थितियां रखी जाती हैं जिनमें वह अन्य व्यक्तियों के साथ सामान्यत: अन्योन्य क्रिया करता है। उदाहरण के लिए कुछ प्रश्न नीचे दिए जा रहे हैं—

१. आप कक्षा में अपने पास किसे बैठाना पसन्द करेंगे ?
२. आप किसी समिति में किस सदस्य के साथ काम करना पसन्द करेंगे ?
३. आप किसके साथ घूमने जाना पसन्द करेंगे ?
४. आप खेल में किसे अपना साथी बनाना पसन्द करेंगे ?

ऐसी अनेक परिस्थितियाँ और सोची जा सकती हैं जिनमें बालकों को अन्योन्य क्रिया की सहज सम्भावना दृष्टिगोचर होती हो। वे ही परिस्थितियां बालकों को उत्तर देने के लिए प्रेरित कर सकती हैं जिनमें सामान्यतया बालक अन्योन्य क्रिया करते हों। यदि हमें तिरस्कृत बालकों का पता लगाना हो तो नकारात्मक प्रश्न भी दिए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ—आप किस बालक को अपने पास बैठाना पसन्द नहीं करेंगे ?

समाजमितिक स्तर का पता लगाना :

उपरोक्त प्रश्नों पर समूह के प्रत्येक सदस्य के उत्तर माँग लिए जाते हैं। तत्पश्चात् प्रत्येक बालक को कितनी बार चाहा गया है इसकी आवृत्ति ज्ञात कर ली जाती है। इस आवृत्ति को हम समाजमितिक अंक कह सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य के समाजमितिक अंक ज्ञात किए जा सकते हैं। इन अंकों के आधार पर हम यह भी ज्ञात कर सकते हैं व्यक्ति का समूह में समाजमितिक स्तर क्या है ? जिस व्यक्ति को अत्यधिक व्यक्तियों ने चाहा है उसे हम लोकप्रिय कहते हैं। जिस व्यक्ति को समूह के किसी भी व्यक्ति ने किसी भी परिस्थिति में साथ रखना पसन्द नहीं किया है उसे हम एकाकी व्यक्ति कहते हैं तथा जिस व्यक्ति को अधिकतर सदस्यों ने साथ नहीं रखना चाहा है उसे हम अस्वीकृत व्यक्ति कहते हैं।

समाज-आलेख :

किसी समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों को चित्र के रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है जिसे समाज-आलेख कहते हैं। समाज-आलेख बनाने के लिए सर्वप्रथम समूह के प्रत्येक सदस्य से यह पूछा जाता है कि वह एक परिस्थिति में किन अन्य सदस्यों को अपने साथ रखना चाहेगा ? उदाहरणार्थ, "आपकी शाला में किसी समारोह के आयोजन-हेतु कुछ समितियों का निर्माण करना है, आप अपनी

समिति में जिन सदस्यों को रखना चाहते हैं उनके नाम नीचे लिखिए"। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति द्वारा चाहे गए व्यक्तियों के आधार पर समूह के व्यक्तियों के बीच के अन्तर्सम्बन्धों को ज्ञात किया जा सकता है तथा इन्हें निम्नांकित प्रकार के चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। निम्नांकित चित्र को समाज-अभिलेख कहा जाता है।
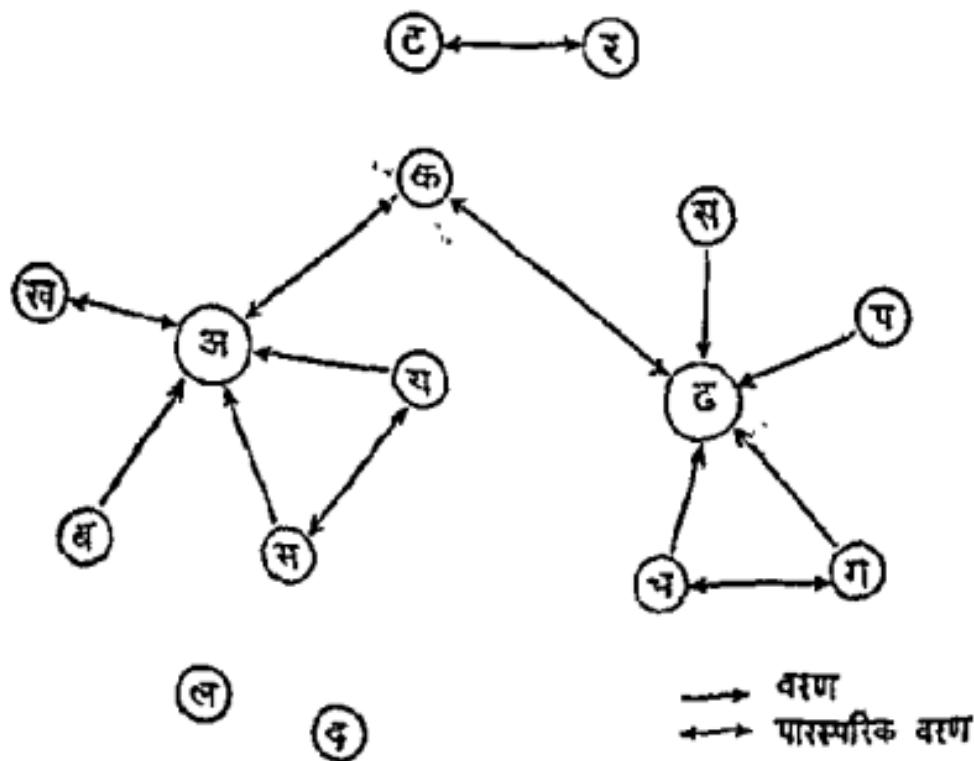
उपरोक्त चित्र को देख कर हमें समूह के समाजमितिक गठन का ज्ञान आसानी से हो सकता है।

इस समाज-अभिलेख से निम्न प्रमुख तथ्य सामने आते हैं—

सदस्य "ल" तथा "द" पूर्णतया एकाकी है जिन्हें समूह के किसी भी सदस्य ने नहीं चाहा है। सदस्य "ट" तथा "र" ने केवल आपस में एकदूसरे को चाहा है किन्तु वे समूह के अन्य सदस्यों द्वारा नहीं चाहे गए हैं। अतः इन दोनों सदस्यों को भी एकाकी कहा जा सकता है।

सदस्य "अ" तथा "ढ" समूह के लोकप्रिय सदस्य हैं क्योंकि इन्हें अत्यधिक व्यक्तियों ने चाहा है।

सदस्य "अ, ब, म, य, ख के मिलकर एक गुट बनाते हैं तथा "ढ, क, स, प, च, ग" मिलकर दूसरा गुट बनाते हैं।

उपरोक्त दो गुटों को निकट लाने-हेतु 'घ' तथा 'क' सदस्यों का प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार हम किसी भी समूह के सदस्यों के अन्तर्सम्बन्धों को समाज-अभिलेख द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं।

(घ) प्रश्नावली :

वास्तव में देखा जाए तो सामाजिक और शैक्षिक अनुसन्धानों में दत्त संकलन की सामान्यत. तीन ही प्रकार की विधियां हो सकती हैं। जानकारी एकत्रित करने के लिए हम तीन ही तरीके अपना सकते हैं। (१) हम लोगों से प्रश्न पूछ सकते हैं, (२) उनके व्यवहार का प्रेक्षण कर सकते हैं, (३) उनके बारे में अभिलेखों अथवा लेख्यों का अध्ययन कर सकते हैं। प्रश्नावली प्रथम प्रकार की विधि है। हम लोगों से प्रश्न या तो मौखिक रूप में पूछ सकते हैं या लिखित प्रश्न देकर उन्हें उत्तर देने को कह सकते हैं। साक्षात्कार करने के लिए अनेक बार पहले से विचार कर प्रश्नों की सूची तैयार करनी पड़ती है। इस दृष्टि से प्रश्नावली-विधि और साक्षात्कार-विधि में साम्यता है। इसी कारण सामाजिक और शैक्षिक अनुसन्धान के विधिशास्त्र पर लिखी कुछ पुस्तकों में दत्त-संकलन की प्रश्नावली-विधि का विवेचन "साक्षात्कार" नामक शीर्षक के अन्तर्गत किया है अथवा "साक्षात्कार और प्रश्नावली" नामक अध्याय के अन्तर्गत विवेचन किया गया है। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो, प्रश्नावली-विधि और साक्षात्कार-विधि दोनों में आधारभूत अन्तर है, जिसके कारण दोनों के द्वारा दत्त संकलन की प्रकृति बहुधा भिन्न होती है। कुछ लेखकों ने साक्षात्कार को भूल से "मौखिक प्रश्नावली" की संज्ञा दी है। परन्तु साक्षात्कार मौखिक प्रश्नावली के अतिरिक्त बहुत सी सामग्री संगृहीत करता है। मुख्य बात तो यह है कि साक्षात्कार में साक्षात्कारक और साक्षात्कारी में परस्पर गतिशील सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। यहां पर गतिशील शब्द का सम्बन्ध उन शक्तियों अथवा प्रेरणाओं से है जो व्यवहार के पीछे रहती हैं और जो व्यवहार को गति प्रदान करती हैं। साक्षात्कारक और साक्षात्कारी के मध्य सम्बन्धों का निर्धारण इन शक्तियों और प्रेरणाओं के द्वारा होता है। साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारक की साक्षात्कारी को प्रेरित कर सकने की योग्यता पर निर्भर करती है। यदि साक्षात्कारक और साक्षात्कारी में विश्वासपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं तो साक्षात्कारी अपनी उन गोपनीय बातों को भी बता देगा जिन्हें किसी अन्य व्यक्ति से साधारणतया नहीं कहता तथा जिन्हें उत्तर के रूप में लिखकर नहीं दे सकता। प्रश्नावली में इस प्रकार का कोई गतिशील अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। साक्षात्कार के समय साक्षात्कारी के व्यवहार का प्रेक्षण भी होता है। किस बात को कहने में वह अटक गया या हिचक गया? किस बात का उल्लेख करते समय आवेश में आ गया? इत्यादि, अनेक व्यवहारों के प्रेक्षण के अवसर आते हैं। प्रश्नावली से सामान्यतः प्रेक्षण के अवसर नहीं आते। बहुत सी

प्रश्नावलियां बड़े समूह से एकसाथ प्रशासित की जाती हैं, अथवा डाक द्वारा भेजी जाती हैं। अतः परिभाषा के रूप में हम कह सकते हैं कि प्रश्नावली किसी निर्धारित विषय पर पूछे गए लिखित प्रश्नों के विन्यास (सेट) के लिखित उत्तरों को प्राप्त करने की वह प्रणाली है जिसका उपयोग एक बड़े समूह पर एकसाथ ही एक समय में किया जा सकता है अथवा एक अकेले व्यक्ति पर भी किया जा सकता है और जिसे व्यक्तिगत रूप में प्रशासित (एड्‌मिनिस्टर) किया जा सकता है अथवा डाक के द्वारा भी भेजा जा सकता है।

प्रश्नावली की रचना :

एक अच्छी प्रश्नावली की रचना के क्रम में सात सोपान होने अत्यावश्यक हैं। सबसे पहले अनुसन्धानकर्ता को यह निर्णय कर लेना चाहिए कि प्रश्नावली द्वारा क्या-क्या दत्त सामग्री एकत्रित करनी चाहिए। इसके पश्चात् उसे यह निर्णय करना चाहिए कि प्रश्नों की रचना का कौनसा प्रकार अधिक उपयुक्त होगा। तीसरा, प्रश्नावली को प्रथम बार लिखकर सावधानी से दोहरा लेना चाहिए। चौथा, एक उपक्रम-अध्ययन (पाइलॉट स्टडी) करना चाहिए। पाँचवां, पूर्व-परीक्षण (प्री-टेस्ट) के रूप में प्रश्नावली का प्रशासन एक उपयुक्त समूह पर करना चाहिए। छठा, प्रश्नावली की विश्वसनीयता और वैधता का आंकन करना चाहिए और सातवां आकन का परिणाम अच्छा आने पर प्रश्नावली का सम्पादन करना चाहिए। सम्पादन में उसके उपयोग की प्राविधि से सम्बन्धित सभी आवश्यक बातों को लिख देना चाहिए।

निम्नांकित पंक्तियों में प्रत्येक सोपान का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रथम सोपान—यह निर्णय करना कि कौन-कौन सी जानकारी प्राप्त की जाए : अनुसन्धान के किसी भी उपकरण के निर्माण की यह अत्यधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। वस्तुतः सम्पूर्ण अन्वेषण का यह निर्णायक पहलू है क्योंकि प्राप्त करने योग्य जानकारियों की सूची बनाते समय यदि अनुसन्धानकर्ता कोई महत्वपूर्ण कारक सम्मिलित करना चूक जाए तो सम्पूर्ण अनुसन्धान विकृत हो सकता है। उदाहरण के लिए, किसी अनुसन्धान का विषय है "कॉलेज-छात्रों में व्याप्त अनुशासनहीनता को प्रभावित करने वाले कारक"। मान लीजिए कि अनुसन्धानकर्ता ने बहुत से कारकों को लिया है जैसे, अध्यापन-विधि, अध्यापक-व्यवहार, पाठ्यक्रम, प्रशासन, राजनैतिक तत्व, आर्थिक तत्व; परन्तु माता-पिताओं की शिक्षा के प्रति मनोवृत्ति नामक कारक का समावेश सूची में नहीं किया है, और मान लीजिए कि जिस समुदाय में विद्यालय स्थित है वहाँ की उप संस्कृति में माता-पिताओं की शिक्षा के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति मुख्य रूप से छात्रों में शिक्षा के प्रति तथा विद्यालय के प्रति घृणा और अरुचि के भाव उत्पन्न करती है। स्पष्ट है कि इस कारक को सूची में सम्मिलित न करने से परिणाम मूल कारक से भिन्न आएंगे। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि

द्वितीय सोपान : प्रश्नों के प्रकार का निर्धारण :

प्रश्न शाब्दिक उद्दीपक है और प्रत्युत्तर (रेसपॉन्स) की अनुवस्तु क्या होगी ? यह कुछ अंशों में उद्दीपक की प्रकृति या रचना पर निर्भर करती है। अतः प्रश्नों की रचना अथवा प्रश्नों के प्रकार पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रारंभिक जानकारी के अतिरिक्त प्रश्नावली का प्रत्येक प्रश्न एक प्राक्कल्पना है अथवा प्राक्कल्पना का एक भाग है क्योंकि इन प्रश्नों के द्वारा अनुसन्धानकर्ता की प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण होगा अथवा अनुसन्धान के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक जानकारी प्राप्त की जाएगी। जो कुछ अनुसन्धानकर्ता प्राप्त करना चाहता है वह तभी प्राप्त हो सकता है जबकि प्रश्नों की रचना इस प्रकार हो कि उसके मन में प्रश्नों का जो अर्थ हो उसी अर्थ में प्रत्युत्तर देने वाले को प्रश्न स्पष्ट हो जाए। प्रश्नों के निम्नलिखित प्रकार हैं—

१. प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रश्न :

यदि प्रश्न पूछने का उद्देश्य गुप्त रखा जाता है तो वह परोक्ष प्रश्न कहलाता है। यदि यह उद्देश्य गुप्त नहीं है और प्रश्न की रचना से पूछने का उद्देश्य स्पष्ट है तो प्रश्न की रचना प्रत्यक्ष है। कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका सही उत्तर देने में उत्तर देने वाले को संकोच हो सकता है, घबराहट हो सकती है। अतः सत्य वस्तु अथवा तथ्य को जानने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रश्न की रचना इस प्रकार हो कि वास्तविकता का पता चल जाए। परन्तु वास्तविकता बताने वाले को किसी प्रकार का संकोच, भय, या परेशानी न हो। उदाहरण के लिए, यदि अनुसन्धानकर्ता 'हाई स्कूल के विद्यार्थियों की माता-पिताओं के प्रति अभिवृत्तियों' का पता लगाना चाहता है तो एक सीधा प्रश्न यह भी हो सकता है "क्या तुम अपनी माँ को पसन्द करते हो ?" अथवा "क्या तुम अपनी मां से घृणा करते हो ?" सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध साधारणतया कोई भी छात्र पहले प्रश्न का उत्तर 'नहीं' और दूसरे प्रश्न का 'हां' के रूप में नहीं देना चाहेगा क्योंकि इससे प्रतिष्ठा गिरती है। अतः परोक्ष प्रश्न का स्वरूप निम्न प्रकार का हो सकता है। "क्या माताएं अपने बच्चों को अकारण मारती हैं ?" अथवा, प्रश्न का रूप यह भी हो सकता है : "अपने घर में घटी किसी ऐसी घटना का वर्णन करो जो तुम्हारे और तुम्हारी मां के बीच घटी हो।" उस घटना के वर्णन द्वारा उत्तर देने वाले की अभिवृति के बारे में निष्कर्ष निकाल सकते हैं। स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष प्रश्न तब पूछे जाने चाहिए जबकि प्रत्युत्तर देने वाले में सत्य बात कहने में किसी प्रकार का मानसिक अवरोध न हो। गुप्त-उद्देश्य-प्रश्न तब पूछे जाने चाहिएं जबकि उत्तर देने वाले के व्यक्तित्व, उसके विश्वासों, अभिवृत्तियों, जीवन-मूल्यों आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करनी हो।

२ व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत प्रश्न :

किसी बालक से हम सीधा प्रश्न पूछ सकते हैं "तुम्हारे विचार के अनुसार

तुम्हें क्या करना चाहिए ?" यह व्यक्तिगत प्रश्न है। अव्यक्तिगत प्रश्न है "एक बालक को क्या करना चाहिए ?" प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रश्नों के समान ही यह व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत प्रश्न भी हैं। अन्तर इतना ही है कि प्रत्येक व्यक्तिगत अथवा अव्यक्तिगत प्रश्न प्रत्यक्ष अथवा अपरोक्ष प्रश्न अवश्य होगा परन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक प्रत्यक्ष प्रश्न अथवा अप्रत्यक्ष प्रश्न व्यक्तिगत प्रश्न ही हो। जैसे "प्रधानाध्यापक के विषय में आपकी क्या राय है ?" अथवा "प्रधानाध्यापक के किसी व्यवहार का वर्णन करो जिसे तुमने देखा हो या जिसे किसी बालक ने देखा हो और तुम्हें बताया हो।" अव्यक्तिगत प्रश्न हैं।

३. प्राक्कल्पनिक तथा वास्तविक प्रश्न[1] :

प्रश्न किसी वास्तविक घटना पर भी पूछे जा सकते हैं और एक प्राक्कल्पनिक घटना पर भी। उदाहरणार्थ, हाईस्कूल के छात्रों से निम्नलिखित दो प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं—

वास्तविक प्रश्न.—"वह समय याद करिए जबकि आपके कक्षा अध्यापक ने कक्षा में आपको दण्ड दिया था, उस समय आपकी क्या प्रतिक्रिया हुई ?"

प्राक्कल्पनिक प्रश्न:—"कल्पना कीजिए कि आपके अध्यापक कक्षा में आपको दण्ड देते हैं तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी ?"

इस प्रकार के प्रश्नों की रचना करते समय अनुसन्धानकर्ता को विचार करना चाहिए कि क्या उत्तर देने वाला व्यक्ति प्रश्नों में निहित प्राक्कल्पनिक और वास्तविक स्थिति को एक ही दृष्टिकोण से देखेगा अथवा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से ? उत्तर देने वाले सब व्यक्तियों का किसी प्रकार का उत्तर देने का दृष्टिकोण एक ही होना चाहिए अन्यथा उत्तर से यह पता नहीं लगेगा कि उत्तर देने वाले ने किस दृष्टिकोण से उत्तर दिया। यदि अध्यापक के व्यवहारों के प्रति छात्रों की प्रतिक्रिया जानने के लिए प्रश्नों की रचना की गई है तो छात्र भिन्न-भिन्न मनोरचनाओं से उत्तर दे सकते हैं। एक विद्यार्थी, तो अपने कक्षाध्यापक को ध्यान में रख कर उत्तर दे सकता है। दूसरा छात्र, जो-जो अध्यापक उसे पढ़ाते हैं उन सब के व्यवहारों के सम्मिलित प्रभावों के आधार पर उत्तर दे सकता है। तीसरा छात्र, एक आदर्श अध्यापक की कल्पना कर अथवा जैसा अध्यापक को व्यवहार करना चाहिए वैसी कल्पना कर उत्तर दे सकता है। स्पष्ट है कि एक ही प्रश्न के उत्तरों के आधार भिन्न-भिन्न हैं। प्रश्नावली में संक्षिप्त उत्तरों से इन आधारों की कोई जानकारी अनुसन्धानकर्ता को नहीं हो सकती। भिन्न-भिन्न मनोरचनाओं से दिए गए उत्तरों की परस्पर तुलना करना भी गलत होगा। परिणाम अविश्वसनीय होंगे। इसी कारण प्रश्नों की रचना करते समय जितनी बारीकी से अनुसन्धानकर्ता विचार करता है उतना ही जटिल तथा निराशा उत्पन्न

1. Hypothetical and real questions.

करने वाला यह कार्य उसे प्रतीत होता है। अतः वास्तविक और प्राक्काल्पनिक स्थिति पर प्रश्न पूछते समय प्रश्नों की रचना निश्चित होनी चाहिए। आवश्यक हो तो मूर्त उदाहरण देकर अनुसन्धानकर्ता को अपना उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहिए।

(४) बन्द और खुले प्रश्न [1] :

बन्द प्रश्नों में उत्तरों के कुछ निश्चित विकल्प दिए रहते हैं जिनमें से किसी एक को निर्दिष्ट कर उत्तर देना होता है। इसलिए इस प्रकार के प्रश्नों को निश्चित-विकल्प वाले प्रश्न [2] भी कहते हैं। उदाहरण के लिए एक बन्द प्रश्न का नमूना नीचे दिया गया है —

यदि एक अध्यापक को यह पता लग जाता है कि अमुक छात्र ने उसकी कोई चीज चुराई है तो बताइए निम्नलिखित में से कौनसा उपाय उसे करना चाहिए ?

(१) उस छात्र से बात करनी चाहिए और पता लगाना चाहिए कि उसने ऐसा व्यवहार क्यों किया ?

(२) सम्पूर्ण कक्षा के सामने उस छात्र को फटकारना चाहिए।

(३) उसे कक्षा से कुछ दिन के लिए निकाल देना चाहिए।

(४) माता-पिता को एक पत्र द्वारा यह घटना सूचित करनी चाहिए।

इस प्रश्न के उत्तर के केवल चार ही विकल्प हैं। अतः उत्तर देने वाले को अनुसन्धानकर्ता के निर्देश के अनुसार किसी एक को अथवा एक से अधिक उत्तरों को चुनना पड़ता है। दूसरी ओर खुले प्रश्नों में इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं होता। जैसे उपर्युक्त विषय पर खुला प्रश्न हो सकता है —

"यदि एक अध्यापक को यह पता लगता है कि अमुक छात्र ने उसकी पुस्तक चुराई है तो उसके साथ उसे क्या व्यवहार करना चाहिए" ?

ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने वाले को खुली छूट रहती है कि वह किसी भी प्रकार अपने ही ढंग से अथवा अपने ही विशिष्ट दृष्टिकोण से उत्तर दे। उत्तर के आकार की सीमा भी नहीं रहती।

बन्द और खुले प्रश्नों के लाभ और हानियां

बन्द अथवा निश्चित-विकल्प वाले प्रश्न, उत्तरों को दिए गए कुछ विकल्पों तक ही सीमित कर देते हैं इसलिए विवादास्पद विषयों के लिए तथा उन विषयों के लिए जिनके बारे में संबंधित सभी व्यक्तियों के दृष्टिकोणों के सर्वेक्षण की आवश्यकता है ऐसे प्रश्न अनुपयुक्त हैं। इन विषयों के लिए खुले प्रश्न अथवा मुक्त उत्तर वाले

---

1. Closed and open questions (or open-ended questions)
2. Fixed-alternative questions.

प्रश्न पूछे जाने चाहिएं। मुक्त-प्रश्न का सबसे बड़ा लाभ यह है कि उत्तर देने वाले के मन की स्पष्ट जानकारी हो जाती है। वह स्वप्रेरित होकर प्रभावी ढंग से अपने-आपको व्यक्त कर सकता है। दूसरी ओर बन्द प्रश्नों की हानि यह है कि दिए गए विकल्पों के कारण उत्तर देने वाले में उल्टी प्रतिक्रिया हो सकती है क्योंकि इन दिए गए उत्तरों के रूप में उसने कभी सोचा ही नहीं।

मुक्त-प्रश्नों की मुख्य हानि यह है कि इनके प्रत्युत्तरों का विश्लेषण बहुधा कठिन होता है। एक ही प्रश्न के विभिन्न प्रकार के उत्तर होने के कारण उनका वर्गीकरण कठिन होता है। उचित वर्गीकरण के अभाव में गणनात्मक रूप में उत्तरों को व्यक्त नहीं कर सकते। परिणामस्वरूप एकरूपता और मानकीकरण सम्भव नहीं है। अतः ऐसी प्रश्नावली को वैज्ञानिक रूप नहीं दिया जा सकता। इनके अतिरिक्त मुक्त-प्रश्नों के द्वारा किसी प्राक्कल्पना का परीक्षण नहीं हो सकता क्योंकि उत्तर देने वाले विभिन्न मनोरचनाओं द्वारा और विभिन्न पहलुओं से उत्तर दे सकते हैं। किसी एक बिन्दु पर एक ही मनोरचना से सूचनाएं प्राप्त न होने के कारण व्यक्तियों की परस्पर तुलना भी नहीं की जा सकती। इनके अतिरिक्त बहुत से उत्तर अप्रासंगिक हो सकते हैं। अर्थात्, उत्तरों का अनुसन्धान के उद्देश्य से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए,[1] एक प्रश्न पूछा जाए कि "सामान्यतः आप सिनेमा कितनी बार देखते है ?" अब यदि उत्तरों के निश्चित विकल्प नहीं दिए गए हैं तो एक व्यक्ति उत्तर दे सकता है "जब मुझे समय मिलता है"। दूसरा उत्तर दे सकता है" "जब मैं कोई विशेष बात देखना चाहता हूँ।" तीसरे का उत्तर हो सकता है "जब लोग किसी चित्र की तारीफ करते हैं तब मैं देखता हूँ", आदि। परन्तु यदि उत्तरों के निम्नलिखित विकल्प दिए जाएं और उत्तर देने वाले से कहा जाए कि किसी एक को चिह्नित कर उत्तर दो—

(१) सप्ताह में कई बार
(२) सप्ताह में केवल एक बार
(३) महीने में एक बार
(४) महीने में दो बार
(५) कई महीनों में एक बार

तो विकल्पों के उत्तर देने वाले को निश्चित पता लग जाएगा कि अनुसन्धान-कर्ता क्या उत्तर चाहता है ? इस प्रकार के प्रश्नों से उत्तर देने वालों की उत्तर देने के लिए एक निश्चित मनोरचना बनती है।

---

1. Selltz, C., Johoda, M., Deutsch, M. and Cook, S. W.: Research Methods in Social Relations, Revised-One-Volume Edition, Methuen & Co., 1965 P. 258

बन्द प्रश्नों का एक लाभ यह है कि उत्तरों के विकल्पों के कारण प्रश्न में लिखे विशेष शब्दों और वाक्यांशों का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार का एक उत्तम उदाहरण सेलिट्ज जहोडा आदि[1] ने स्कूल सुपरिन्टेन्डेन्टों के रोल पर हुए एक अनुसन्धान का उदाहरण देकर लिखा है। अन्य बातों के अतिरिक्त अनुसन्धानकर्ता यह जानना चाहते थे कि सुपरिन्टेन्डेन्ट अपने रोल सम्बन्धी अन्तर्द्वंद्व का प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार करते हैं। अर्थात्, भिन्न-भिन्न समूहों द्वारा व्यक्त परस्पर विरोधी अपेक्षाओं का प्रत्यक्षीकरण वे किस प्रकार करते थे। मुक्त प्रश्न पूछने से जो उत्तर आए वे अप्रासंगिक थे। प्रश्नों की भिन्न-भिन्न रचना करने से भी प्रश्नों के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई। अन्त में उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्टों के अनेक निश्चित वैकल्पिक कार्यों का वर्णन किया—वे कार्य जो सुपरिन्टेन्डेन्ट कर सकते हैं। ऐसा करने से रोल अन्तर्द्वंद्व की स्थितियां उन्हें समझ में आ गयी और मुक्त तथा बन्द प्रश्नों के वांछनीय उत्तर प्राप्त हुए।

बन्द प्रश्नों का एक लाभ और है। इससे उत्तर देने वाले को अपना स्वयं मूल्यांकन करने में सुविधा होती है। व्यक्तित्व के बहुत से पहलू ऐसे होते हैं जिनके बारे में अनुसन्धानकर्ता से अधिक मूल्यांकन व्यक्ति स्वयं कर सकता है। मान लीजिए कि एक मुक्त प्रश्न है : "आप अपने अध्यापन के कार्य से कितने सन्तुष्ट हैं ?" एक अध्यापक उत्तर दे सकता है "अध्यापन में कुछ बातें हैं जो मुझे बहुत अच्छी लगती हैं परन्तु अन्य पेशों की तुलना में अध्यापन-कार्य में कुछ बन्धन अधिक हैं और सीमाएं भी अधिक हैं, इत्यादि"। स्पष्ट है कि अनुसन्धानकर्ता को अध्यापक के इस प्रकार के उत्तर को श्रेणी-क्रम-बद्ध-प्रमापनी (ग्रेज्युएटेड स्केल) में कोई निश्चित स्थान देने में कठिनाई अनुभव होगी। श्रेणी-क्रम बद्ध-प्रमापनी उक्त प्रश्न के उत्तरों के विभिन्न विकल्पों के रूप में निम्न प्रकार हो सकती है —

(१) अत्यधिक सन्तुष्ट

(२) असन्तोष की तुलना में अधिक सन्तोष मिला है।

(३) सन्तुष्ट मात्र

(४) सन्तोष की तुलना में अधिक असन्तोष मिला है।

(५) अत्यधिक असन्तोष।

इस प्रकार के सम्भावित उत्तरों को क्रमबद्ध श्रेणी में रखने से गणनात्मक रूप में परिणामों को व्यक्त करने में तथा सांख्यकीय विश्लेषण करने में सुविधा होती है।

---

1. Sellitiz, C., Jahodia, M., Deutsch, M., & Cook, S. W. : Research Methods in Social Relations, Revised Edition, Methuen and Co. 1959, PP. 258-59.

बन्द अथवा उत्तरों के निश्चित-विकल्प-युक्त प्रश्नों की हानियाँ भी हैं। उत्तर देने वाले को किसी ऐसे विषय पर अपना मत व्यक्त करने के लिए बाध्य होना पड़ सकता है जिसके बारे में उसने पहले कभी विचार न किया हो। बन्द प्रश्नावलियों में ऐसे अवसरों के लिए 'नहीं जानता' अथवा "कह नहीं सकता" विकल्प दिए रहते हैं जिन्हें वह चिह्नित कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि सब सम्भावित विकल्प नहीं दिए हैं तो प्राप्त जानकारी शुद्ध नहीं हो सकती।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि बन्द प्रश्न तभी प्रभावी होंगे जबकि—

(१) सब सम्भावित उत्तरों के विकल्प ज्ञात हैं।

(२) जब इन वैकल्पिक उत्तरों की संख्या सीमित है।

(३) जब इन वैकल्पिक उत्तरों को केवल कुछ शब्दों में तथा सरल और स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया जा सकता है।

(४) जब उत्तर देने वालों के द्वारा प्रेक्षित तथ्यों के बारे में ही उनसे जानकारी प्राप्त करनी है।

और (५) जब उन विषयों पर मत प्राप्त करने हैं जिनके बारे में उत्तर देने वालों के संप्रत्यय सुस्पष्ट हैं।

दूसरी ओर खुले प्रश्न तब उपयुक्त हैं जबकि—

(१) उत्तर देने वाले सभी व्यक्तियों की मनोरचनाओं की जानकारी अनुसन्धानकर्ता को नहीं है। अर्थात्, प्राप्त होने वाले उत्तरों के प्रकारों की जानकारी नहीं है।

(२) विषय या बिन्दु जटिल, गूढ़ अथवा विवादास्पद है।

(३) कारकों की परिपूर्ण सूची अनुसन्धान के लिए अथवा, अनुसन्धान के उपकरणों के निर्माण के लिए तैयार करनी है।

(४) प्रश्न में वर्णित स्थिति के सम्बन्ध में उत्तर देने वाले की प्रतिक्रिया के पीछे प्रेरणाओं की तथा उसके द्वारा उस स्थिति के मर्यापन की जानकारी प्राप्त करनी है।

(५) प्रश्नों के अन्य प्रकार :

प्रश्नों का वर्गीकरण अन्तर्वस्तु के आधार पर किया जा सकता है। जैसे, कुछ प्रश्न केवल प्रेक्षित तथ्यों पर पूछे जा सकते हैं, कुछ प्रश्न भावनाओं को व्यक्त करने के लिए पूछे जा सकते हैं; कुछ प्रश्न तथ्यों के बारे में लोगों के विश्वासों को जानने के लिए तथा कुछ प्रश्न विभिन्न सामाजिक स्थितियों में लोगों के व्यवहारों के स्तरों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी पूछे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त एक प्रश्न कुछ शब्दों का छोटा सा हो सकता है और इसके विपरीत प्रश्न किसी स्थिति के विस्तृत वर्णन के रूप में भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, मतपॉट के द्वारा निर्मित

"प्रभाविता-अधीनता प्रतिक्रिया अध्ययन"[1] नामक प्रश्नावली में इस प्रकार के कई प्रश्न हैं। नमूने के रूप में एक प्रश्न नीचे उद्धृत है।[2]

"किसी चर्च में, भाषण स्थल में, या मनोरंजन के कार्यक्रम में यदि आप कार्यक्रम के आरम्भ होने के बाद पहुँचते हैं और देखते हैं कि कुछ लोग खड़े हैं तथा यह भी देखते हैं कि आगे कुछ कुर्सियां खाली हैं जहां आप जाकर बैठें तो अशिष्टता न होगी परन्तु अधिकांश लोगों की दृष्टि आप पर पड़ेगी तो क्या ऐसी स्थिति में आप स्थान ग्रहण करते हैं।"

स्वभावतः.................
कभी-कभी.................
कभी नहीं.................

तृतीय सोपान—

प्रश्नावली का प्रारूप तैयार करना .

प्रश्नावली के प्रकारों का निर्धारण करने के बाद अनुसन्धानकर्ता को यह निर्णय करना चाहिए प्रश्नावली में *शीर्षकों का अनुक्रम क्या हो। प्रश्नावली में शीर्षकों को* तार्किक अनुक्रम में नहीं रखना चाहिए। उत्तर देने वाले की दृष्टि से सबसे उपयुक्त मनोवैज्ञानिक-अनुक्रम में प्रश्न रखे जाने चाहिए। दूसरे शब्दों में शीर्षकों का क्रम निर्धारित करते समय उत्तर देने वालों की मनोवैज्ञानिक प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि उत्तरों की प्रकृति पर अनुसन्धान के परिणाम का गुणात्मक स्तर निर्भर करता है। प्रश्नावली को प्रशासित करने का अर्थ है उद्दीपकों के एक समूह को क्रमशः प्रस्तुत करना। इसलिए प्रश्नों का क्रम निर्धारित करते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि किसी उद्दीपन का उसके बाद प्रस्तुत होने वाले उद्दीपकों के प्रत्युत्तरों पर अवांछनीय प्रभाव तो नहीं पड़ेगा। प्रश्नों की क्रमिकता के निर्धारण के लिए जो नियम सामान्यतः ध्यान में रखे जाते हैं वे निम्न प्रकार हैं—

१. विशिष्ट प्रश्नों से पहले सामान्य प्रश्न पूछे जाने चाहिएं। इसे फनेल पद्धति[3] कहते हैं। इस पद्धति का उद्देश्य परीक्षार्थी में ऐसी मनोरचना

1. Gordon Allport : Ascendance Submission Reaction study.
2. At a Church, Lecture, or an entertainment, if you arrive after the program has commenced and find that there are people standing but also that there are front seats available which might be secured without piggishnese, or discourtesy, but with considerable conspicuous, do you take the seats ?
Habitually-Occasionally-Never.
3. Funnel technique.

उनको प्राप्तांकों (स्कोरस्) में व्यक्त करना सम्भव है। इसके अतिरिक्त एकांशों पर सही का चिह्न लगाने अथवा उन्हें रेखांकित करने के स्थान पर उनके चारों ओर एक वृत्त खींचना अधिक अच्छा समझा जाता है। अन्यथा चिह्न के जरा अलग हटने से प्राप्तांक देने में भ्रम उत्पन्न होने लगता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित बहु-विकल्पी प्रश्न देखिए—

एंजिल्स के नियम का सम्बन्ध।

१. द्रव्य के चलने से है।

२. उपभोक्ता की बचत से है।

३. पारिवारिक व्ययों से है।

४. सीमान्त उपयोगिता से है।

यह पता नहीं लगता कि सही का चिह्न (३) पर लगा है या (४) पर। यदि वृत्त खींचने का निर्देश दिया जाए तो यह कठिनाई उत्पन्न न होगी। यथा—

एंजिल्स के नियम का सम्बन्ध।

१. द्रव्य के चलने से है।

२. उपभोक्ता की बचत से है।

३. पारिवारिक व्ययों से है।

४ सीमान्त उपयोगिता से है।

मशीनों से प्राप्तांक देने के लिए बिन्दु रेखाओं को काला इसीलिए किया जाता है ताकि इधर-उधर थोड़ा सा अलग हटकर लगने से भ्रम उत्पन्न न हो।

३. कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिए जिसका उत्तर दूसरे प्रश्न पर निर्भर करता हो।

ऐसे प्रश्न से जो हानि होती है वह एक अध्ययन के उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी। इस अध्ययन के अन्तर्गत एक प्रश्नावली पब्लिक स्कूल के अध्यापकों के पास भेजी गई। उसमें कुछ प्रश्न अध्यापकों द्वारा बालकों की योग्यताओं को पहचानने की क्षमता का आंकन करने के लिए पूछे गए थे। इस प्रकार के दो निम्नलिखित प्रश्न थे—

(क) क्या इस बालक की मानसिक योग्यता का विकास अधिक सम है, सामान्यतः सम है, असम है, अधिक असम है (रेखांकित कीजिए)।

(ख) यदि बालक की योग्यता का विकास असम है तो वह किस दृष्टि से—

१ अपनी आयु के औसत योग्यता वाले बालकों से अधिक श्रेष्ठ है?

२. अपनी आयु के औसत बालकों की तुलना में अधिक हीन है?

दूसरा प्रश्न पहले प्रश्न पर अवलम्बित है। इस अध्ययन में जितने अध्यापकों ने प्रश्नावली को भरा उनमें से पचास प्रतिशत से अधिक ने दूसरे प्रश्न का उत्तर "हाँ" अथवा "नहीं" के रूप में उत्तर देने का अनुबन्धन हो जाने के कारण वे "किस

रखना चाहिए। प्रश्नावली का भौतिक आकार अधिक पृष्ठों वाला भी नही होना चाहिए। आकार कम करने के कई तरीके हैं। एक ही प्रकार की रचना वाले भिन्न-भिन्न बिन्दुओं से सम्बन्धित प्रश्नों को एक ही प्रश्न के अन्तर्गत तालिका के रूप में रखा जा सकता है।[1] इससे आकार छोटा हो जाएगा। उदाहरण के लिए, यदि भूगोल के छात्राध्यापकों के अभ्यास पाठों से सम्बन्धित अनुसन्धान के लिए एक ही प्रकार के कई प्रश्न हों जैसे, "आप ग्लोब का कितनी बार प्रयोग करते है?" "प्रतिदिन", "सप्ताह में तीन-चार बार", "महीने मे दो-तीन बार", "महीने में एक बार" या "कभी नहीं"। इस प्रकार दूसरा प्रश्न है "आप मानचित्र कितनी बार उपयोग करते है?" "प्रतिदिन", "सप्ताह में तीन-चार बार", "महीने में दो-तीन बार", "महीने में एक बार", "कभी नहीं", इत्यादि, इत्यादि। इसी प्रकार के यदि पाँच प्रश्न हैं तो सबको एक तालिका के अन्दर रख सकते हैं। इससे आकार की बचत तालिका होगी। उदाहरण के लिए, प्रश्न इस प्रकार का हो सकता है।

नीचे बाईं ओर भूगोल की अध्यापन-सामग्रियो के नाम लिखे हैं। दूसरी ओर उनके उपयोग का समय लिखा है। प्रत्येक के सामने खाने मे सही का चिह्न लगाकर बताइए कि कितनी बार आप उपयोग करते हैं?

क्रमाङ्क	अध्यापन-सहायक सामग्री	अध्यापन-सामग्री का उपयोग					
		प्रतिदिन	सप्ताह में तीन-चार बार	सप्ताह में एक-दो बार	महीने में दो-तीन बार	महीने में एक बार	कभी नहीं
१.	छपे मानचित्र						
२	ग्लोब						
३	मूर्त वस्तुएं						
४	चल चित्र						
५	लपट फलक बनाए हुए चित्र आदि						

1. Fox, D. J.: The Research process in Education, Holt, Rinehart and winston, Inc. New York, 1961, pp 557-58

आकार की बचत के लिए तथा पृष्ठों की संख्या कम करने के लिए शब्द का आकार छोटा होना चाहिए। इतना हो कि सुविधा से पढ़ा जाए। कम पृष्ठ होने से पढ़ने वालों को सुविधा होगी। साथ ही अनुसन्धानकर्त्ता जिसे सैकड़ों या सहस्त्रों प्रश्नावलियों का विश्लेषण करना है, का समय बहुत बचेगा।

चतुर्थ तथा पंचम सोपान:—उपक्रम—अध्ययन और पूर्व परीक्षण :[1]

उपक्रम अध्ययन एक प्रकार का प्राथमिक अन्वेषणात्मक कार्य है और पूर्व परीक्षण अन्तिम तथा मुख्य अध्ययन का पूर्वाभ्यास मात्र है। चाहे किसी व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि कितनी ही विलक्षण क्यों न हो फिर भी प्रेक्षण और प्रत्यक्षानुभव की आवश्यकता बनी रहेगी। प्रकृति रहस्यमयी है। मनुष्य सर्वज्ञ नहीं है। अतः समस्या के कुछ निर्णायक पहलू अनुसन्धानकर्त्ता की कल्पना से छूट भी सकते हैं। इसलिए प्रश्नावली को अन्तिम रूप देने से पहले एक उपक्रम—अध्ययन आवश्यक है। अर्थात् इस प्रश्नावली को जिन व्यक्तियों पर प्रशासित करना है उनके समान ही कुछ अन्य व्यक्तियों को यह प्रश्नावली दी जानी चाहिए और उनसे साक्षात्कार करना चाहिए। ऐसा करने से प्रश्नावली के बारे में उनकी प्रतिक्रिया की विस्तृत जानकारी तो होगी ही, अनुसन्धानकर्त्ता को यह भी पता लगेगा कि उत्तर देने वाले किन-किन प्रश्नों का उत्तर एक ही मनोरचना से दे रहे हैं *किनका नहीं*। अनुपयुक्त प्राक्कल्पनाओं का भी पता लगेगा और नयी प्राक्कल्पनाओं की जानकारी भी होगी। उपक्रम अध्ययन का लक्ष्य किसी प्राक्कल्पना का परीक्षण नहीं है। वरन् प्राक्कल्पनाओं का स्पष्टीकरण तथा निर्माण है। इसके अतिरिक्त सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी समाप्त होगी जिससे प्रतिचयन के आयोजन में सुविधा हो सकती है। मान लीजिए कि एक अनुसन्धानकर्त्ता माध्यमिक विद्यालय के अध्यापकों की किसी समस्या का अध्ययन कर रहा है। यदि उपक्रम अध्ययन के निमित्त किये गए साक्षात्कारों के द्वारा उसे पता लगता है कि न केवल भिन्न भिन्न स्कूलों के अध्यापक उक्त समस्या को भिन्न भिन्न रूप में देखते हैं वरन् उच्च और निम्न आर्थिक-सामाजिक स्तरों के घरों से आने वाले अध्यापक भी समस्या को भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं। स्पष्ट है कि उसे इस उपक्रम अध्ययन से पता लगेगा कि स्तरबद्ध-प्रतिचयन[2] की आवश्यकता है।

उपक्रम अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् अनुसन्धानकर्त्ता को पूर्व परीक्षण के लिए तैयार हो जाना चाहिए। *पूर्व परीक्षा एक प्रकार की जांच है।* *मुख्य अनुसन्धान में* उपयोग करने से पूर्व एक छोटे से प्रतिचयन पर प्रशासित कर प्रश्नावली की जांच करना अच्छा है। पूर्व परीक्षा ठीक उसी प्रकार से की जानी चाहिए जिस प्रकार से

---

1. Pilot Study and Pretesting
2. *Stratified sampling.*

मुख्य अध्ययन किया जाएगा। अर्थात्, प्रश्नावली के मुख पृष्ठ पर लिखे हुए निर्देश, प्रतिचयन का स्वरूप (जो छोटा होगा), आदि बातें ठीक वैसे ही की जानी चाहिए जैसा कि मुख्य अध्ययन में किया जाएगा। जो कुछ दत्त सामग्री एकत्रित होगी उसको सारणी में रख कर विश्लेषण करना चाहिए, ताकि प्रश्नावली की कमियों का पता लगे। विश्लेषण के द्वारा उत्तरों में असंगति का पता लगेगा। यह भी पता लग सकता है कि एक विशिष्ट प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं हुई है तथा एक प्रश्न बढ़ा देने से इस अभाव की पूर्ति हो जाएगी। प्रश्नावली के प्रशासन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं की जानकारी भी होगी क्योंकि प्रश्नावली भिन्न भिन्न शैक्षिक योग्यता वाले व्यक्तियों तथा भिन्न भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति वाले व्यक्तियों के लिए उपयुक्त होनी चाहिए। सामाजिक विषय के वैज्ञानिकों ने पूर्व परीक्षण के परिणामों द्वारा दोषपूर्ण प्रश्नों को पहचान के लिए कुछ संकेत बताए हैं। ये संकेत तथा चिह्न निम्न प्रकार हैं—

(१) उत्तरों में व्यवस्था का अभाव :

केवल भौतिक संसार ही नहीं, सामाजिक संसार भी व्यवस्थित है। अर्थात्, मानव व्यवहार कुछ सिद्धान्तों अथवा नियमों द्वारा निर्धारित होता है। इसका अर्थ है कि किसी अनुसन्धान के उपकरण के प्रत्युत्तरों द्वारा किसी व्यवस्था की या प्रतिमान की जानकारी होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में उपकरण के प्रत्युत्तरों का वर्गीकरण तार्किक होना चाहिए और उनके वितरण से किसी विशेषता का पता लगना चाहिए। उदाहरण के लिए, बुद्धि के जनसंख्या में वितरण के कुछ विशिष्ट लक्षण हैं। एक लक्षण यह है कि निम्नतम बुद्धि से लेकर अधिकतम बुद्धि तक का क्रम सम्पूर्ण जनसंख्या में घण्टी के आकार[1] में वितरित है। यदि किसी व्यवस्था का पता उत्तरों की सारणी से नहीं लगता है तो हो सकता है कि उत्तर देने वालों में से कुछ ने प्रश्न को ठीक से समझा नहीं अथवा एक प्रश्न के भिन्न भिन्न अर्थ उत्तर देने वालों ने लगाए हैं। दूसरे शब्दों में उत्तर देने वालों के एक ही प्रकार के अनुभवों का आंकन वह प्रश्न नहीं कर रहा है।

(२) "सब" या "कोई नहीं" उत्तर

यदि सब ने "हां" अथवा "नहीं" को चिह्नित किया है या एक ही प्रकार से उत्तर दिया है तो इसका यह अर्थ है कि प्रश्न की पुनर्रचना की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति अनैतिक व्यवहार की आलोचना करता है। मोटे तौर पर सभी जानते हैं कि समाज में कौनसा व्यवहार वांछनीय समझा जाता है। इसलिए समाज जिसको अच्छा नहीं समझता उसका उत्तर सभी "नहीं" को चिह्नित कर देंगे। अतः प्रश्न की रचना गलत होने पर ही एक सा उत्तर आएगा। प्रश्न के द्वारा उत्तर देने वाले

1. Bellshaped.

की सही भावनाएं, प्रेरणाएं तथा अभिवृत्तियां प्रतिबिम्बित होनी चाहिए।

(३) "कह नहीं सकता" या "नहीं जानता" उत्तरों की अधिक संख्या :

"नहीं जानता" उत्तरों की कुछ संख्या तो सदा रहेगी। परन्तु इस उत्तर की संख्या अधिक है तो इसका अर्थ है कि या तो पूछा गया प्रश्न उत्तर देने वाले के अनुभव से संबंधित नहीं है। अर्थात् उसे जानकारी नहीं है। प्रतिचयन के आयोजन की कमी का भी यह परिणाम हो सकता है। उदाहरण के लिए, किसी प्रश्नावली में विद्यालय के प्रशासन तथा इतिहास के सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। यदि प्रतिचयन में सभी अध्यापक ले लिए गए हैं जिनमें नए अध्यापक भी हैं और स्थानान्तरित अध्यापक भी हैं तो ये नवीन और स्थानान्तरित अध्यापक "नहीं जानता" को चिह्नित करेंगे। प्रश्न अस्पष्ट होने के कारण व्यक्ति "कह नहीं सकता" को चिह्नित कर देते हैं।

(४) उत्तर न देने वालों की अधिक संख्या :

कुछ व्यक्ति तो कुछ प्रश्नों का उत्तर नहीं देंगे। परन्तु यदि किसी प्रश्न का उत्तर न देने वालों की संख्या सात प्रतिशत से अधिक है तो प्रश्न की रचना में परिवर्तन करना चाहिए। हो सकता है कि प्रश्न का उत्तर देने में भय लगता हो या संकोच होता हो। वह प्रश्न गोपनीय व्यक्तिगत बातों से अधिक सम्बन्धित हो सकता है। कोई भी व्यक्ति अधिकारी को अपने गुप्त सम्बन्धों को बताना नहीं चाहेगा। परिवार की सभी बातों को बताने की स्थिति में भी सब व्यक्ति नहीं हो सकते। कर्मचारी अपने अधिकारी के प्रति अथवा छात्र अपने अध्यापक के प्रति सही प्रतिक्रिया को नहीं व्यक्त करेंगे, यदि उन्हें पता लगे कि वे उनके लिखित उत्तरों को देख लेंगे। इस भय को दूर करने के लिए प्रश्नावली में उत्तर देने वालों का नाम नहीं लिखा जाना चाहिए। और उनके द्वारा हस्ताक्षर करने की आवश्यकता भी नहीं समझी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण उत्तर चिह्नों के रूप में ही होने चाहिए। इतनी अधिक गुप्तता रखने पर प्रश्नावली को समूह में दिए जाने पर सामान्यतः प्रवृत्ति सही प्रतिक्रिया व्यक्त करने की होगी क्योंकि असन्तुष्ट कर्मचारी चाहता है कि उसके अधिकारी का अनुचित व्यवहार प्रकाश में आए, इत्यादि, इत्यादि।

षष्ठम सोपान : प्रश्नावली की विश्वसनीयता और वैधता का आंकन :

अनुसन्धान-उपकरण की विश्वसनीयता और वैधता के मापन की विधियों का वर्णन इस पुस्तक में अन्यत्र किया हुआ है। यहां पर एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि प्रश्नावली की वैधता तथा विश्वसनीयता उत्तर देने वालों की सत्य बात कहने की प्रेरणाओं पर निर्भर करती है। सत्य कथन की प्रेरणा देने वाली प्रश्न की रचनाओं के बारे में इस अध्याय में पहले ही कुछ बिन्दुओं का विवेचन किया जा चुका है। उदाहरण के लिए, प्रश्न अव्यक्तिगत होने चाहिए, चयन पद्धति का उपयोग किया जाना चाहिए, उत्तर देने वाले का परिचय गोपनीय रखा जाना चाहिए, आदि,

आदि । इनके अतिरिक्त अन्य बिन्दु भी हैं जो जीवन के कोमल पक्षों के बारे में सत्य कथन के लिए प्रेरित करेंगे । दूसरे शब्दों में, जिनसे प्रश्नों की विश्वसनीयता और वैधता बढ़ेगी ।

१. प्रश्न के प्रारंभिक भाग से यह प्रकट होना चाहिए कि सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय व्यवहार अन्य लोग भी करते हैं ।

उदाहरणार्थ, प्रश्नावली का एकांश इस प्रकार का हो सकता है : "अधिकांश लोग आत्म हत्या के बारे में किसी न किसी समय अवश्य विचार करते हैं............" द्वितीय भाग में कुछ भी संबंधित बात लिखी जा सकती है ।

२. सामाजिक दृष्टि से वांछनीय व्यवहार और अवांछनीय व्यवहार समान रूप से प्रस्तुत करने चाहिए ।

जैसे, "कुछ विद्यार्थी सोचते हैं कि माता पिताओं के द्वारा किए गए अन्याय का प्रतिकार करना आवश्यक है जब कि कुछ विद्यार्थी सोचते हैं कि विद्यार्थियों को माता पिताओं का प्रतिकार नहीं करना चाहिए । आपका क्या विचार है ?" इस प्रश्न के आगे कई विकल्प दिए जा सकते हैं ।

३. सामान्य रूप से कहा जाय तो ऐसे शब्द जिनसे सामाजिक दृष्टि से अधिक अवांछनीय व्यवहार अथवा अधिक वांछनीय व्यवहार का पता लगाता है नहीं पूछे जाने चाहिए ।

जैसे 'अनुशासन' शब्द है । सभी इसके पक्ष में उत्तर देंगे । अनुशासन शब्द की जगह प्रशिक्षण शब्द का उपयोग किया जाय तो सच्ची भावनाएं प्रतिबिम्बित होंगी ।

सप्तम् सोपान:—प्रश्नावली का सम्पादन

सम्पादन के अन्तर्गत प्रश्नों के मध्य स्थान, उत्तरों के लिए स्थान, शब्दों का आकार, उपकरण का वाह्य रूप, तथा प्रश्नावली के उपयोग के लिए आवश्यक निर्देश आते हैं । प्रश्नावली का उपयोग सरल बनाया जाना चाहिए । उत्तर देने वालों की सुविधाओं का ध्यान रखना चाहिए । जब अनुसन्धानकर्ता उत्तर देने वाले औसत व्यक्ति की भाषा की योग्यता को अधिक समझने लगता है । परन्तु अनुभवी अनुसन्धानकर्ता जानते हैं कि अच्छे शिक्षित व्यक्ति भी निर्देशों को ठीक प्रकार नहीं समझते । निर्देश इस रूप में लिखने चाहिए कि मानो अनुसन्धान से अपरिचित व्यक्ति के लिए लिखे जा रहे हैं । पूर्व परीक्षण के समय उन व्यक्तियों को भी सम्मिलित करना चाहिए जिनकी शिक्षा कम हुई हो । निर्देशों को ठीक से न समझ सकने का कारण उत्तर देने वालों में उचित शिक्षा की कमी अथवा बुद्धि की कमी नहीं है । यह भी नहीं सोचना चाहिए कि अधिकांश व्यक्ति असहयोगी और बेईमान हैं । वास्तव में निर्देश ठीक प्रकार न समझने का कारण ध्यान की कमी है । उत्तर देने की तीव्र प्रेरणा उत्पन्न करने वाला कोई कारण उपस्थित नहीं रहता । अधिक व्यस्तता तथा

अन्य व्यक्तिगत समस्याओं की ओर अधिक ध्यान, आदि कारण बाधक होते हैं। अतः निर्देश सरल, स्पष्ट तथा यथा सम्भव संक्षिप्त होने चाहिए।

प्रश्नावली से लाभ तथा सीमाएं :

सीमाएं :

१. प्रश्नावली विधि की एक बड़ी कमी यह है कि इसका उपयोग सम्पूर्ण जनसंख्या के प्रतिनिधि-प्रतिदर्श[1] पर नहीं किया जा सकता। केवल जिनमें पढ़ने और लिखने की योग्यता है वे ही उत्तर दे सकते हैं। जटिल और उच्च स्तर की प्रश्नावलियों को जनसंख्या का एक छोटा सा भाग ही भर सकता है।

२. साक्षात्कार की तुलना में प्रश्नावली को भरने की प्रेरणा बहुत कम होती है। किसी समूह में प्रश्नावली भरते समय अधिक समय तक भरने वालों की रुचि बनाए रखना कठिन है। इसलिए प्रश्नावली लम्बी नहीं हो सकती।

३. अपने बारे में अच्छा भाव उत्पन्न करने की प्रेरणा के कारण गलत उत्तर देने की सम्भावना बनी रहती है।

४. व्यक्ति को अपने बारे में सही जानकारी नहीं होती। वह व्यक्तित्व के जटिल पहलुओं को समझ नहीं पाता है। अतः उनके मापन के लिए सामान्य व्यक्ति के उत्तरों पर विश्वास करना अनुपयुक्त है। इनके मापन के लिए प्रेक्षण विधियां अधिक उपयुक्त हैं।

५. डाक से भेजे जाने वाली प्रश्नावलियों के उत्तरों की संख्या कम रहती है। उत्तर देने वालों की संख्या १० से ५० प्रतिशत तक रहती है। ये अमेरिका के तथ्य हैं। उत्तर देने वालों की संख्या निम्न लिखित बातों पर निर्भर करती है।

   १. कौन प्रश्नावली भेज रहा है? यदि कोई विख्यात व्यक्ति या विख्यात संस्था भेजती है तो उत्तर देने वालों की संख्या ज्यादा होती है।
   २. आकार कैसा है? यदि आकार आकर्षक है। भरने में सुविधा जनक है तो भेजने वालों की संख्या ज्यादा होती है।
   ३. प्रश्नावली की लम्बाई कितनी होती है?
   ४. मुख पत्र की भाषा में मिठास कितना है?
   ५. किस प्रकार के लोगों को यह प्रश्नावली दी गई है?
   ६. उत्तर देने के लिए क्या आकर्षण है?

---

1. Representative sample.

लाभ :

१. अन्य विधियों की तुलना में प्रश्नावली को प्रशासित करना बहुत सरल है। साक्षात्कार, प्रेक्षण और प्रक्षेपण विधि के उपयोग के लिए एक उच्च प्रकार के विशेषीकृत कौशल की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का कोई विशेष कौशल प्रश्नावली के प्रशासन में नहीं चाहिए।

२. अन्य विधियों की तुलना में कहीं अधिक एकरूप[1] जानकारी प्रश्नावली के द्वारा प्राप्त होती है।

३. अन्य विधियों की तुलना में प्रश्नावली को प्रशासित करने की विधि एकरूप है। अर्थात्, भिन्न-भिन्न समूहों को मानकीकृत परिस्थितियों में प्रश्नावली दी जाती है। ऐसा अन्य विधियों में नहीं हो पाता।

४. प्रश्नावली के प्रत्युत्तरों पर प्राप्तांक देने की विधि वस्तुनिष्ठ होती है। अर्थात्, प्रश्नावली के उत्तरों को गणनात्मक रूप में व्यक्त कर सकते हैं और सांख्यकीय विश्लेषण भी किया जा सकता है। इस कारण यह विधि वैज्ञानिक बनायी जा सकती है। अन्य विधियां वैज्ञानिक नहीं हैं।

५. मानकीकृत सम्भव होने के कारण तथा भिन्न भिन्न समूहों के बारे में एकरूप सूचनाएं एकत्रित होने के कारण समूहों की तुलना तथा व्यक्तियों की तुलना वस्तुनिष्ठ रूप में प्रश्नावली द्वारा की जा सकती है।

अनुभाग ५ : अभिवृत्ति प्रमापनियां[2]

अभिवृत्ति किसे कहते हैं ? :

अभिवृत्ति कुछ विशेष स्थितियों, व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के प्रति संगतिपूर्ण[3] प्रत्युत्तरों[4] के लिए तत्पर[5] रहने की दशा[6] है। उदाहरण के लिए जब हम यह कहते हैं कि तामिलनाडु में रहने वाले अनेक भारतीयों में हिन्दी के प्रति घृणा की अभिवृत्ति है, तो इसका यह अर्थ है कि जब जब भारत सरकार हिन्दी को आदान-प्रदान की भाषा बनाने का प्रयत्न करेगी तब तब तामिलनाडु के व्यक्ति विरोधी प्रत्युत्तर देंगे। जब जब भारत सरकार हिन्दी को सरकारी कार्यों का माध्यम बनाएगी तब तब वे प्रतिकार करेंगे। इस प्रकार उनके प्रत्युत्तरों में संगति होगी। इसके अतिरिक्त हिन्दी के पक्ष में पग उठाने के प्रति (विरोधी) प्रत्युत्तर देने की तत्परता उनमें है। 'प्रत्युत्तर' शब्दों के रूप में भी हो सकता है, शारीरिक आक्रमणकारी व्यवहार के रूप में भी और अन्तरंग[7] व्यवहार के रूप में भी, जैसे, विरोधी चिन्तन।

---

1. Uniform
2. Attitude scales
3. Consistent
4. Response
5. Readiness
6. State
7. Covert.

अभिवृत्ति के तीन प्रमुख लक्षण हैं :

(१) अभिवृत्ति की एक वस्तु होती है। यदि हम कहें कि कुछ लोगों की अंग्रेजी के प्रति घृणा की अभिवृत्ति है तो इस अभिवृत्ति की वस्तु है अंग्रेजी। अतः प्रत्येक अभिवृत्ति की एक वस्तु अवश्य होती है। ये वस्तुएं सामाजिक भी हो सकती हैं, जैसे विद्यालय, सरकार, राजनीतिक दल, इत्यादि। इसके अतिरिक्त वस्तुएं मूर्त और अमूर्त भी हो सकती हैं जैसे, फल (मूर्त), राष्ट्रीयता (अमूर्त) आदि। प्रश्न उठता है कि कितने प्रकार की अभिवृत्तियां मनुष्यों में हो सकती हैं? तो इसका उत्तर है कि जितने प्रकार की वस्तुएं —भौतिक व अभौतिक—इस संसार में हैं।

(२) अभिवृत्ति की एक दिशा होती है। अभिवृत्ति व्यक्ति के व्यवहार को किसी वस्तु के पक्ष या विपक्ष में निर्देशित करती है। अभिवृत्ति एक झुकाव है, एक रुझान है, एक स्ववृत्ति[1] है जो व्यक्ति को किसी वस्तु के प्रतिकूल अथवा अनुकूल बनाती है।

(३) अभिवृत्ति की एक गहनता होती है। अभिवृत्ति एक हल्के रूप में भी विद्यमान रह सकती है और अत्यधिक गहन रूप में भी। अभिवृत्ति दुर्बल भी हो सकती और अत्यधिक शक्तिशाली भी। गहनता शक्ति (कम या अधिक) का द्योतक है। अभिवृत्ति की इस विशेषता के कारण उसका मापन करने के लिए प्रमापनियों या स्केलों का निर्माण किया गया है ताकि गहनता की विभिन्न श्रेणी वाली अभिवृत्तियों के अनुसार व्यक्तियों को नापा जा सके। जिस प्रकार एक फुटस्केल शून्य से लेकर बारह इंच तक की दूरी की निश्चित श्रेणियों में विभक्त होता है और उससे दूरी या लम्बाई नापी जा सकती है ठीक उसी प्रकार अभिवृत्ति की गहनता को कम या अधिक श्रेणियों के अनुसार लोगों को अभिवृत्ति की सातत्यक[2] रेखा के विभिन्न बिन्दुओं में रखा जा सकता है।

यह बात समझनी आवश्यक है कि अधिक गहन अथवा शक्तिशाली अभिवृत्तियां अधिक जटिल व्यवहारों की द्योतक हैं। अभिवृत्ति का प्रारम्भ किसी वस्तु तक पहुँचने अथवा उससे बचने के सरल व्यवहार के रूप में होता है परन्तु अधिक गहन अभिवृत्ति व्यक्तित्व की एक जटिल विशेषता है। इस तथ्य को न जानने के कारण अनुसन्धानों के असमान परिणाम आये हैं। प्रारम्भ में अनुसंधानकर्त्ताओं ने समझा था कि अभिवृत्ति की व्याख्या किसी वस्तु को पसन्द करने अथवा न करने के रूप में की जा सकती है या किसी वस्तु तक पहुँचने अथवा उससे बचने के रूप में की जा सकती है और अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति भावनाओं[3] के रूप में ही व्यक्त होती है। ऐसा समझ कर भावनाओं को व्यक्त करने वाले कथनों के माध्यम से अभिवृत्तियों का

---

1. Disposition 2. Continuum
3. Feelings

मापन किया गया। परन्तु अनेक परिणाम असंगत आये हैं[1] जिसके कारण सामाजिक मनोवैज्ञानिकों को यह शब्द असन्तोषजनक प्रतीत हुआ है। डूब ने यहाँ तक कहा है कि अभिवृत्ति सम्प्रत्यय को हटा ही देना चाहिए[2], कारण यह है कि जिन शब्दों के द्वारा जिस अभिवृत्ति का पता व्यक्ति में लगता है उसके विपरीत उसकी क्रियायें देखने में आती हैं। यह भी देखने में आया है कि किसी व्यक्ति में कोई अभिवृत्ति बहुत गहन होने पर भी उस अभिवृत्ति की वस्तु के बारे में उस व्यक्ति की जानकारी नगण्य पायी गयी है। अभी हाल ही में मनोवैज्ञानिकों ने अभिवृत्ति के कुछ घटकों का पता लगाया है। काट्ज और स्कॉटलेण्ड[3] ने बताया है कि अभिवृत्तियाँ केवल पहुँचने और बचने की प्रवृत्तियाँ मात्र नहीं हैं वरन् कई घटकों से मिल कर बनती हैं। उनमें निम्न-लिखित तीन घटकों में से प्रत्येक कम या अधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं—

(१) भावात्मक घटक[4]: अभिवृत्तियों के अन्तर्गत भावनायें और संवेग होते हैं। हम जानते हैं कि जब कभी हमारी अभिवृत्तियाँ जाग्रत होती हैं तो हम भावनायें अथवा संवेग व्यक्त करते हैं।

(२) संज्ञानात्मक घटक[5] : यह घटक अभिवृत्ति का वह पहलू है जो अभिवृत्ति की वस्तु के बारे में ज्ञान पर आधारित है। वस्तुओं के बारे में ज्ञान होने पर उनके प्रति अभिवृत्ति बनती है। यदि किसी देश के द्वारा किए गए अत्याचारों की कई घट-नाएं हम सुनते हैं तो उसके प्रति हमारी प्रतिकूल-अभिवृत्ति बनती है। किसी राज-नैतिक विचारधारा पर हम जब पर्याप्त अध्ययन कर लेते हैं तो उसके बारे में हमारा एक निश्चित दृष्टिकोण बनता है। हो सकता है कि उस विचार धारा के प्रति हमारी अभिवृत्ति का भावात्मक पहलू कम हो। कुछ अभिवृत्तियाँ ऐसी होती हैं जिनमें भाव-नात्मक पहलू अधिक होता है और ज्ञानात्मक पहलू बहुत कम। यही कारण है कि ऐसे लोग देखने मे आते हैं जिन्हें एक राजनैतिक विचार धारा बहुत पसन्द है परन्तु कारण पूछने पर बता नहीं सकते और उसके मूलभूत सिद्धान्तों से अपरिचित रहते हैं।

(३) क्रियात्मक घटक[6] : अभिवृत्ति के जाग्रत होने पर लोग प्रदर्शन करते हैं, नारे लगाते हैं या हड़ताल करते हैं। परन्तु यह क्रियाशीलता कुछ व्यक्तियों में नगण्य

---

1 & 2. Travers, R. M. W. : Essentials of Learning, The Macmillan Co., New York, 1963 P. 372.

3. Travers, R. M. W: Essentials of Learning, The Macmillan Co., New York, 1963, pp. 373–374.

4 Affective component

5. Cognitive component

6. Conative component.

हो सकती है। सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए अध्ययनों से पता लगा है कि व्यक्त अभिवृत्तियों का क्रिया से नगण्य सम्बन्ध हो सकता है। कुछ व्यक्तियों की धर्म के सम्बन्ध में गहन आस्था है, धर्म के प्रति प्रबल अभिवृत्ति होती है। उनकी बातों से पता लगता है। परन्तु वे धार्मिक क्रिया बहुत कम करते हैं। इसका अर्थ यह है कि अभिवृत्ति का क्रियात्मक घटक अन्य घटकों के प्रभाव से पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्र होता है। यही बात अन्य दो घटकों के बारे में भी है।

अभिवृत्तियां जन्मजात नहीं होती। वे अनुभव के परिणाम स्वरूप विकसित होती हैं। वे हमारी सीखी हुई विशेषताएं हैं। अर्थात्, अर्जित अनुभवों के परिणाम हैं। अभिवृत्तियां प्रत्यक्षीकरण, चिंतन और व्यवहार को निर्धारित करती हैं। अभिवृत्ति की इन विशेषताओं के कारण करलिंजर[1] ने अभिवृत्ति के बारे में लिखा है कि "अभिवृत्ति किसी संज्ञानात्मक वस्तु के बारे में विचार, भावानुभव, प्रत्यक्षीकरण, और व्यवहार करने की एक पूर्व स्ववृत्ति है।"

अभिवृत्ति प्रमापनियां :

अभिवृत्ति प्रमापनियां मुख्य रूप से तीन प्रकार की हैं। पहली है समान-प्रतीत-होने-वाली मध्यान्तर प्रमापनियां[2] जिसका विकास थर्सटन[3] ने किया। दूसरी है सर्वयोगकृत प्रमत प्रमापनियां[4] जिसका निर्माण लाइकर्ट[5] ने किया, और तीसरी संचयीप्रमापनियां[6] हैं जिनको गुट्मैन[7] ने विकसित किया।

थर्सटन की समान-प्रतीत-होने-वाली मध्यान्तर प्रमापनियां :

लगभग ४४ वर्ष पूर्व थर्सटन ने प्रमाप (स्केल) बनाने की एक नवीन विधि का निर्माण किया जिस पर अनेक अनुसन्धान हो चुके हैं। उसने स्केल का निर्माण इस मान्यता के आधार पर किया कि किसी व्यक्ति का अभिवृत्ति-सातत्यक[8] में स्थान

---

1. Kerlinger, F. N. : Foundations of Behavioral Research, Holt, Rinehart, and Winston, Inc., NewYork 1965, p. 483.
   मूल अंग्रेजी में निम्न लिखित प्रकार है—
   "An attitude,...., is a predisposition to think, feel, perceive, and behave toward a cognitive object."
2. Equal-appearing interval scales.
3. Thurston.
4. Summated rating scales.
5. Likert.
6. Cummulative scales.
7. Guttman.
8. Attitude continuum.

उस अभिवृत्ति की वस्तु के बारे में व्यक्त उसके सब मतों अथवा वक्तव्यों का औसत है। थर्स्टन-स्केल के निर्माण के पद निम्न प्रकार हैं:—

(१) किसी भी अभिवृत्ति की प्रमापनी तैयार करने के लिए उस अभिवृत्ति को व्यक्त करने वाले बहुत से कथनों को एकत्रित कर लिया जाता है। उस अभिवृत्ति के बारे में सभी प्रकार के वक्तव्य—सबसे अधिक प्रतिकूल से सबसे अधिक अनुकूल तक—तथा तटस्थ[1] कई वक्तव्यों को सकलित किया जाता है। कितने वक्तव्य एकत्रित किए जाएं? इसके लिए कोई नियम नहीं है। उदाहरण के लिए, थर्स्टन ने चर्च के बारे में अभिवृत्ति स्केल निर्माण करने में १३० वक्तव्य एकत्रित किए थे। ये वक्तव्य संक्षिप्त होने चाहिए, अनेकार्थक,[2] और अस्पष्ट नहीं होने चाहिए तथा मूल विषय से सम्बंधित होने चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसे रूप में होने चाहिए कि जिससे हम उनसे या तो सहमत हो सकें या असहमत। वक्तव्य एकत्रित करने का एक तरीका यह है कि जिन व्यक्तियों पर बाद में इस स्केल का उपयोग करना है उनके लिखित मत या भावनाएं अभिवृत्ति की वस्तु के बारे में ले लिए जाएं। अर्थात्, उनसे कहा जाए कि आपको, उदाहरण के लिए, चर्च कैसे लगते हैं? थर्स्टन ने ऐसा ही किया था। दूसरा तरीका यह है कि अभिवृत्ति व्यक्त करने वाले कथन आधुनिक साहित्य से एकत्रित कर लिए जाए।

(२) दूसरा पद है: इन वक्तव्यों का सम्पादन करना। अनेकार्थक वक्तव्यों को निकाल देना चाहिए। विषय से असम्बन्धित वक्तव्य भी हटा देने चाहिए। ऐसे कथन जिनमें दो विरोधी अभिवृत्तियां एक ही साथ व्यक्त हों नहीं रखने चाहिए। उदाहरण के लिए, "छात्र संघ प्रजातंत्रीय व्यवस्था की शिक्षा देता है; परन्तु इनके कारण अनावश्यक रूप से छात्रों का ध्यान अध्ययन से हट जाता है।" इस प्रकार के कथनों को दुनाली कथन[3] कहते हैं। इसके पश्चात् शेष छंटे हुए कथनों को कागज के एक समान आकार के कटे हुए टुकड़ों में छपवा दिए जाएं अथवा, साइक्लोस्टाइल करवा दिए जाएं। थर्स्टन ने प्रत्येक वक्तव्य को पृथक-पृथक कार्ड में छपवाया था। फिर सभी कार्डों को अनेक निर्णायकों को पृथक-पृथक देकर उनसे कहा कि इन कार्डों की ग्यारह-ग्यारह[4] की गड्डियां इस प्रकार बनाइए कि प्रत्येक गड्डी में सबसे अधिक अनुकूल कथन से प्रारम्भ कर सबसे अधिक प्रतिकूल कथन तक क्रम से रखे हुए हों। अर्थात्, सबसे ऊपर सबसे अधिक अनुकूल कथन रखा हो, उसके पश्चात् दूसरे कार्ड में उससे कम अनुकूल कथन, तीसरे कार्ड में और भी कम अनुकूल कथन। इसी प्रकार चल कर मध्य में, अर्थात्, छठा कथन सबसे अधिक तटस्थ हो और

---

1. Neutral
2. Ambiguous
3. *Double barrel* statements.
4. गड्डियां सात भी हो सकती हैं यदि प्रमापनी सात बिन्दुओं की बनानी है।

सबसे अन्तिम कथन सबसे अधिक प्रतिकूल हो।

एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गड्डी बनाते समय जितने कुशल निर्णायकों को रखेंगे उतनी अच्छी प्रमापनी बनेगी। यदि उनको ठीक प्रकार से निर्देश नहीं दिए गए तो गलत प्रमापनी (स्केल) का निर्माण हो सकता है। यह भी बात ध्यान में रखने योग्य है कि निर्णायकों को कथनों की गड्डियाँ अपने स्वयं की सहमतियों-असहमतियों के क्रम से नहीं बनानी हैं। वरन्, कथनों द्वारा अभिव्यक्त अभिवृत्ति की अनुकूलता और प्रतिकूलता की श्रेणी के अनुसार गड्डियाँ बनानी हैं। निर्णायक की स्वयं की अभिवृत्ति का प्रभाव किसी प्रकार भी कथनों को श्रेणीबद्ध करने में नहीं पड़ना चाहिए।

(३) एक प्रश्न यह है कि निर्णायकों की संख्या कितनी हो? थर्स्टन ने ३०० निर्णायकों का चयन किया था। उनका तो अग्रगामी अध्ययन[1] था। परन्तु बाद में हुए अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि केवल २० या २५ बुद्धिमान[2] निर्णायकों द्वारा विश्वसनीय मूल्यांकन प्राप्त किया जा सकता है। फर्गुसन ने निर्णायकों की संख्या निर्धारित करने के लिए एक अध्ययन किया। उन्होंने २०, २५, ५०, ७५, १०० १२५, १५०, १७५ और २०० निर्णायकों का पृथक-पृथक उपयोग किया। अध्ययन के परिणामों से पता लगा कि निर्णायकों की संख्या बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होता।

(४) सभी निर्णायकों द्वारा कथनों को वाञ्छित क्रम के अनुसार गड्डियों में रक्खे जाने के बाद प्रत्येक कथन का औसत प्रमापनी मूल्य[3] निकालना चाहिए।

यह प्रमापनी मूल्य सब निर्णायकों द्वारा दिए गए स्थानों की माध्यिकाएं[4] मात्र हैं।

(५) प्रत्येक कथन के प्रमापनी मूल्यों को निकालने के बाद अनेकार्थक[5] वक्तव्यों का पता लगाया जाता है। यह पता लगाने के लिए प्रथम और अन्तिम चतुर्थकों[6] का अन्तर निकाला जाता है यदि यह अन्तर अधिक है तो वक्तव्य अनेकार्थक है। इस अन्तर को 'Q मूल्य' अथवा 'अनेकार्थकता का गुणांक'[7] कहते हैं। इसे

1. Pioneering.
2. Ferguson, : Personality Measurement, McGraw Hill, 1952, Quoted here from : Kuppuswamy : An Introduction to Social Psychology, Asia publishing House, 1961 p. 200.
3. Average scale Value.
4. Medians.
5. Ambiguous.
6. Quartiles.
7. Coefficient of ambiguity.

स्पष्ट करने के लिए थर्स्टन द्वारा निर्मित अभिवृत्ति-स्केल निर्माण की दत्त सामग्री से एक कथन के बारे में आलेख-चित्र, माध्यिका और निकाले हुए अनेकार्थकता का गुणांक (Q मूल्य) नीचे उद्धृत है[1]।

आलेख—१
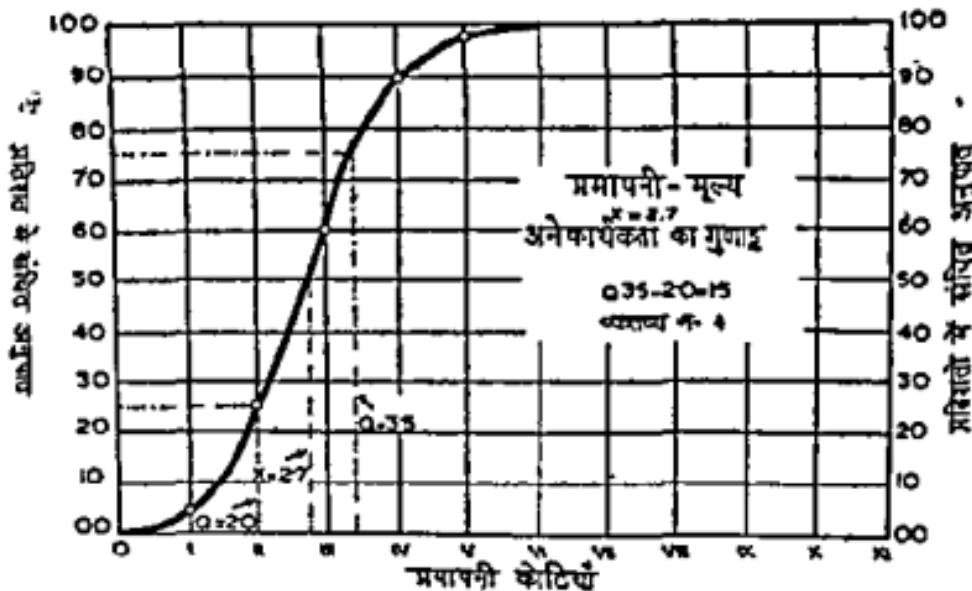
(शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो से साभार)

1. From original data in L.L. Thurstone and E. J. Chave, : 'The Measurement of Attitudes,' pp. 22-35, quoted here from : Young, P. V. and Schmid, C. F. : Scientific Social Surveys and Research, 3rd Edition, Asia Publishing House Bombay, 1956 p. 331.

आलेख—२

प्रतिकूल: मेरा विचार है कि चर्च हर समय धन कमाना चाहता है और मैं इसके नाम सुनते सुनते थक गया हूँ
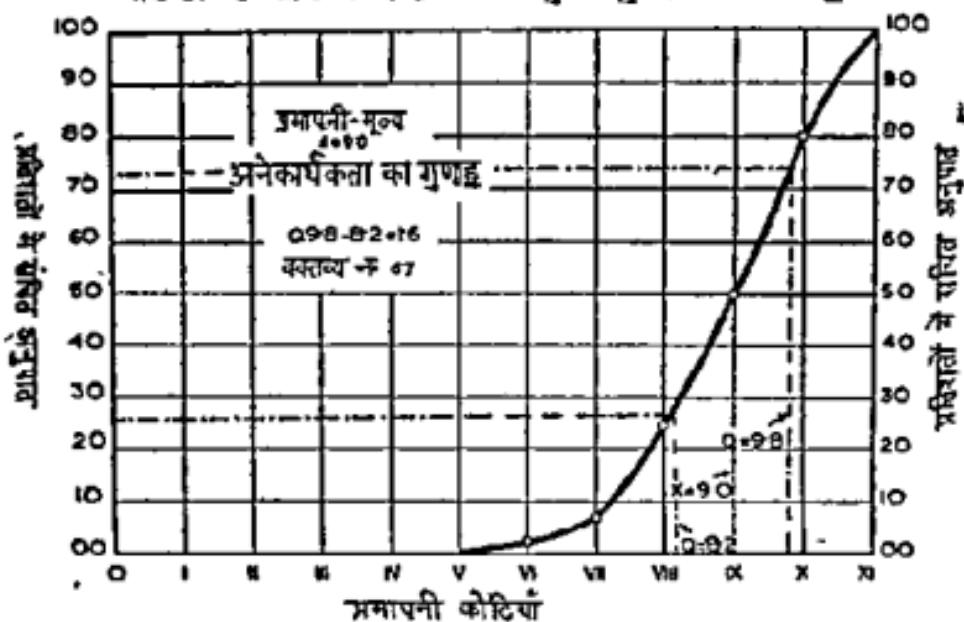
(शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो से साभार)

अनेकार्थक वक्तव्य निकालने के अतिरिक्त प्रत्येक कथन की प्रासंगिकता[1] भी ज्ञात की जाती है। प्रासंगिकता ज्ञात करने के लिए प्रत्येक एकांश के प्रत्युत्तर की तुलना सब अन्य एकांशों के प्रत्युत्तरों से की जाती है। यदि कथन ठीक बने हुए हैं तो उनके प्रत्युत्तरों में संगति होनी चाहिए। यदि बहुत से व्यक्ति १.५ के निकट प्रमापनी मूल्यों वाले वक्तव्यों से अपनी सहमति व्यक्त करते हैं तो उनकी सहमति उन वक्तव्यों से नहीं होगी जिनका प्रमापनी मूल्य ६-० और ८-० के बीच है। यदि किसी एकांश के प्रत्युत्तर इस प्रकार असंगत हैं तो उस एकांश को अभिवृत्ति से असंबंधित जानकर निकाल दिया जाता है।

(६) प्रमापनी के अन्तिम रूप में बीस-पच्चीस कथन होते हैं।[2] कथनों की

---

1. Relevance.
2. कथन ३५ तक भी हो सकते हैं या कुछ अधिक भी हो सकते हैं, परन्तु बहुत अधिक नहीं होने चाहिए क्योंकि प्रत्येक अभिवृत्ति की केवल एक ही वस्तु होती है और एक पर मतों के प्रकारों की संख्या बहुत अधिक नहीं हो सकती। फिर संख्या अधिक होने पर सामान्य उत्तरदाता द्वारा भ्रमित होकर उत्तर देने की सम्भावनायें बनी रहती हैं।

संख्या प्रत्येक बिन्दु पर समान होनी चाहिए। अतः यदि प्रमापनी १ बिन्दु से ५ बिन्दु के श्रेणी क्रम से है और कथनों की कुल संख्या २५ है तो प्रत्येक बिन्दु पर ५ कथन होने चाहिए। कुछ कथन उचित होने पर भी छोड़ने पड़ेंगे। इन कथनों के स्केल मूल्य अत्यधिक अनुकूलता से अत्यधिक प्रतिकूलता तक के क्रम में श्रेणीबद्ध होते हैं। परन्तु परीक्षा के रूप में इन कथनों को उनके स्केल मूल्यों के क्रम में नहीं प्रस्तुत किया जाता वरन्, एक यादृच्छिक[1] क्रम से किया जाता है। परीक्षा देते समय परीक्षार्थी से कहा जाता है कि जिस-जिस कथन से उसकी सहमति हो उस-उस को वह चिह्नित करे। उसका प्राप्तांक उसके द्वारा चिह्नित कथनों के स्केल मूल्यों के योग का औसत होता है। यह प्राप्तांक इन सब चिह्नित कथनों के स्केल मूल्यों की माध्यिका ज्ञात कर भी निकाला जाता है।

सर्वयोगकृत प्रमत-प्रमापनी[2]

थर्स्टन की पद्धति के द्वारा अभिवृत्ति की गहनता का सन्तोषजनक मापन नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि सिनेमा के प्रति किसी व्यक्ति की अत्याधिक प्रतिकूल अभिवृत्ति है तो स्पष्ट है कि वह उन सभी कथनों से सहमति व्यक्त करेगा जो सिनेमा के प्रतिकूल-भाव व्यक्त करते हैं। इनमें से कुछ कथन ऐसे होंगे जिनका प्रमापनी मूल्य बहुत अधिक होगा और कुछ ऐसे होंगे जिनका प्रमापनी मूल्य पर्याप्त कम होगा। स्पष्ट है कि उस व्यक्ति का प्राप्तांक कम प्रतिकूल कथनों के स्केल मूल्यों के कारण वास्तविकता से कम आएगा। इसके अतिरिक्त थर्स्टन पद्धति के अन्तर्गत किसी कथन के प्रति या तो सहमति प्रकट करनी पड़ती है या असहमति। इस प्रकार दो ही विकल्प दिये होते हैं जब कि एक कथन की सहमति और असहमति की कई श्रेणियाँ हो सकती हैं। थर्स्टन पद्धति के इस दोष के कारण लाइकर्ट[3] ने स्केल निर्माण में एक भिन्न प्रणाली का उपयोग किया जिसे योगकृत रेटिंग विधि कहते हैं। इस प्रकार की प्रमापन की रचना में निम्नलिखित पद हैं :

(१) थर्स्टन विधि के समान ही अभिवृत्ति-वस्तु के सम्बन्ध में कथन एकत्रित किये जाते हैं। ये कथन अत्यधिक अनुकूल अभिवृत्ति से लेकर अत्यधिक प्रतिकूल अभिवृत्ति को व्यक्त करते हैं। कथन इस प्रकार के होंगे कि बात या तो पक्ष में कही होगी या विपक्ष में।

(२) इन कथनों में से प्रत्येक को श्रेणीबद्ध वैकल्पिक उत्तरों सहित रखा जाता है। ये उत्तर हो सकते हैं अत्यधिक सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, अत्यधिक असहमत। इनके बदले में अन्य उत्तर रखे जा सकते हैं : लगभग सदा, बहुधा, कभी कभी, बहुत कम, कभी नहीं। अथवा; पूर्ण स्वीकृति, स्वीकृति, अनिश्चित,

1. Random
2. Summated Rating Scale
3. Likert

यदि प्राप्त जानकारी की दृष्टि से देखा जाया तो लाइकर्ट पद्धति अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है क्योंकि यह प्रत्येक कथन के बारे में व्यक्ति के मतों का शुद्धता से मापन करती है। इसके उपयोग के द्वारा प्रत्येक कथन की अन्तर्वस्तु का विश्लेषण कर व्यक्ति की अभिवृत्ति का एक अच्छा चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। इस पद्धति के द्वारा अभिवृत्ति-वस्तु के भिन्न-भिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में व्यक्ति के मतों की जानकारी प्राप्त होती है।

विश्वसनीयता और वैधता की दृष्टि से दोनों ही विधियाँ समान रूप से अच्छी पाई गई हैं। दोनों ही के परिणाम उपयोगी हैं।

संचयी प्रमापनी :

अभिवृत्ति प्रमापनी की इस पद्धति का निर्माण गुट्मैन ने किया। अमेरिका के युद्ध विभाग द्वारा चलाई गई एक अन्वेषण योजना में वे कार्य कर रहे थे जिसका लक्ष्य था अमेरिका के सिपाहियों का मनोबल[1] का मापन करना। किसी भी विशेषक (जैसे मनोबल या अभिवृत्ति) के मापन के लिए उपकरण निर्माण में पहला प्रश्न उठता है कि क्या विशेषक (जैसे, अभिवृत्ति) प्रमापनीय[2] है अथवा नहीं। जिस अभिवृत्ति का हम मापन करने जा रहे हैं उसको प्रमापनी के रूप में तभी रक्खा जा सकता है जबकि प्रमापनी केवल एक आयाम[3] का मापन करे। यदि स्केल के कई आयाम हैं तो मापन में संगति नहीं होगी। कैसे यह पता लगे कि अभिवृत्ति प्रमापनी एक-आयामीय[4] है? वह एक आयामीय तब होगी जबकि जनसंख्या के प्रत्युत्तर संगतिपूर्ण होंगे। प्रत्युत्तर संगतिपूर्ण कब माने जायेंगे? जब जनसंख्या के एक भाग ने किसी एकांश से सहमति व्यक्त की है तो उस भाग के द्वारा उससे कम गहन एकांश से सहमति व्यक्त होनी चाहिए और उससे अधिक गहन सब एकांशों को उसके द्वारा छोड़ दिया जाना चाहिए। इस एक आयामीयता[5] के सम्प्रत्यय[6] को स्पष्ट करने के लिए करलिंजर ने बड़ा अच्छा उदाहरण[7] दिया है। उन्होंने कहा है कि मान लीजिए चार बच्चों से गणित के इस प्रकार के तीन प्रश्न पूछे जाएं —(क) $\frac{२८}{७}$ = ? (ख) ८×४ = ? और (ग) १२+९ = ? एक बालक जो (क) प्रश्न ठीक करेगा वह साधारणतया शेष दो प्रश्न भी ठीक कर लेगा। जो बालक (क) प्रश्न गलत करेगा परन्तु (ख) प्रश्न को सही करेगा वह साधारणतया (ग) को भी सही करेगा। जो बालक (ग) को गलत करेगा वह (क) और (ख) को भी सही नहीं कर सकता। यह बात नीचे सारणी में प्रदर्शित की जा रही है।

---

(1) Morale (2) Scalable (3) Dimension
(4) Unidimensional (5) Unidimensionality (6) Concept
(7) Kerlinger, F. N.: Foundations of Behavioral Research, Hall, Rinehart & Winston Inc; New York, 1964, pp. 485-86.

	क	ख	ग	प्राप्तांक
पहला बालक	√	√	√	३
दूसरा बालक	×	√	√	२
तीसरा बालक	×	×	√	१
चौथा बालक	×	×	×	०

(सही = √, गलत = ×)

सारणी देखने से स्पष्ट है कि एकांशों के प्रत्युत्तरों तथा कुल प्राप्तांकों के मध्य सम्बन्धों का एक प्रतिमान[1] है जिसके कारण यदि किसी बालक के कुल प्राप्तांक ज्ञात हैं तो हम उसके उत्तरों के प्रतिमान की प्रागुक्ति[2] कर सकते हैं। अर्थात्, कठिन उत्तरों के ज्ञान से हम सरल प्रश्नों के उत्तरों की भविष्यवाणी कर सकते हैं। इस प्रकार की प्रमापनी में एकांश[3] तथा व्यक्ति दोनों ही प्रमापनी के अन्तर्गत रखे जाते हैं।

ठीक इसी प्रकार यदि अभिवृत्ति प्रमापनी में अधिक प्रतिकूल से लेकर अधिक अनुकूल एकांशों को क्रम से ठीक रखा गया है तो किसी अधिक प्रतिकूल एकांश को चिह्नित किये जाने पर सभी उससे कम प्रतिकूल एकांश चिह्नित किए जाने चाहिए। अथवा, अधिक अनुकूल एकांशों के चिह्नित किये जाने पर सभी कम अनुकूल एकांशों को चिह्नित किया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो प्रमापनी पूर्ण शुद्ध नहीं है। अर्थात्, अभिवृत्ति के आयाम का शुद्ध मापन नहीं हो रहा है।

व्यवहारिक दृष्टि से पूर्ण एक-आयामीय तथा शुद्ध सचयी प्रमापनी का निर्माण करना कठिन है। परन्तु इस पूर्णता के निकट प्रमापनियाँ बनाई जा सकती हैं। गुट्टमैन ने एकांशों के एक-आयामीय प्रमापनी के निर्धारण के लिए विश्लेषण की एक नई विधि प्रस्तुत की है जिसे स्केलोग्राम कहते हैं। परन्तु प्रश्न उठता है कि किन-किन एक आयामीय एकांशों को छाँटकर अभिवृत्ति परीक्षा का निर्माण किया जाना चाहिए? यह गुट्टमैन ने नहीं बताया है। इस कार्य को एडवर्ड और किलपैट्रिक[4] ने पूर्ण किया है। उन्होंने एक प्रमापनी-प्रभेद-निर्धारण पद्धति[5] निकाली है जिसमें थर्स्टन और लाईकर्ट की पद्धतियों का सम्मिलित उपयोग किया गया है। उसके पद निम्न प्रकार हैं—

(१) अभिवृत्ति अभिव्यक्ति करने वाले बहुत से कथनों का एकत्रीकरण करना, अनेकार्थक, असम्बन्धित तथा उदस्थ कथनों को निकाल देना।

---

(1) Pattern (2) Predict
(3) Item (4) Edwards and Kilpatrick
(5) Selltiz, C; Jahoda, M., Deutsch, M. and Cook, S. W.: Research Methods in Social Relations, Methuen & Co., Ltd., 1966 pp. 375-76.

(२) थर्स्टन की पद्धति के अनुसार निर्णायकों को इन कथनों को ग्यारह-ग्यारह को गड्डियों में अनुकूलता से प्रतिकूलता के क्रम से रखना। प्रत्येक एकांश के बारे में सब निर्णायकों की सहमति का पता लगाना। जिन एकांशों के बारे में मत-भिन्नता अधिक है उन्हें निकाल देना। शेष एकांशों के विषय में निर्णायकों ने जो स्थान प्रमापनी में निर्धारित किए हैं उनकी माध्यिका निकालना। अर्थात्, स्केल मूल्य ज्ञात करना।

(३) लाईकर्ट पद्धति के समान प्रत्येक एकांश के उत्तरों के विकल्पों को क्रम से रखना। फिर प्रमापनी को बड़े समूह से प्रशासित करना। एकांशों के प्रभेद-दर्शक-मूल्य निकालना। जिनका प्रभेद-दर्शक-मूल्य अधिक हो उन्हें छांट लेना। प्रत्येक मध्यान्तर (जैसे ६.०–६.१०) के अन्तर्गत छांटे गये एकांशों की संख्या समान रखना।

(४) एकांशों को उनके प्रमापनी मूल्यों के क्रम के अनुसार रखना। फिर सम्पूर्ण सूची को दो बराबर भागों में विभक्त करना। विषम संख्या वाले एकांशों को एक ओर रखना। और सम संख्या वाले एकांशों को दूसरी ओर। इस प्रकार दो समान बनाये हुए प्रमापनी के रूप तैयार हो जाएंगे। गुट्मैन की यह पद्धति अभिवृत्ति प्रमापनी को शुद्ध, एक-आयामीय बनाने की एक उत्तम विधि है। परन्तु कोई भी एक-आयामीय प्रमापनी सर्वोपयोगी नहीं हो सकती। जो प्रमापनी एक समूह के लिए एक-आयामीय हो सकती है वह मनुष्यों के दूसरे समूह के लिए एक-आयामीय नहीं हो सकती। तीनों प्रकार के स्केलों में से लाईकर्ट का रेटिंग स्केल शैक्षिक तथा सामाजिक अनुसन्धानों के लिए अधिक उपयुक्त है क्योंकि इस स्केल का निर्माण करना तुलनात्मक रूप में सरल है।

प्रमापनी बनाने की तीनों प्रकार की पद्धतियां भिन्न-भिन्न हैं। थर्स्टन पद्धति का आग्रह एकांशों को एक प्रमापनी के अन्तर्गत उचित स्थान दिए जाने पर है, लाईकर्ट पद्धति का आग्रह व्यक्तियों को एक प्रमापनी के अन्तर्गत उचित स्थान दिए जाने पर है, जब कि गुट्मैन पद्धति एकांशों और व्यक्तियों दोनों की प्रमापनीयता को महत्व देती है।

यह स्पष्ट है कि अभी तक कोई भी प्रमापनी ऐसी नहीं बन सकी है जो अभिवृत्ति के तीनों घटकों—संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक—का मापन कर सके। अभिवृत्ति मापन की यह बहुत बड़ी कमी पूर्ण होनी शेष है। थर्स्टन, लाईकर्ट और गुट्मैन की पद्धतियां केवल भावात्मक कथनों का उपयोग करती हैं और शाब्दिक अभिव्यक्तियों तक सीमित हैं। अतः इनके द्वारा अभिवृत्तियों के द्योतक शब्दों द्वारा अभिव्यक्त भावात्मक घटकों का ही अधिक मापन होता है।

१०

प्रतिचयन

प्रतिदर्श किसी भी अनुसन्धान कार्य की आधार शिला है। यह आधार शिला जितनी सुदृढ़ होगी अनुसन्धान के परिणाम उतने ही विश्वसनीय एवं परिशुद्ध होंगे। प्रतिदर्श को तभी उपयुक्त माना जा सकता है जब सम्पूर्ण समष्टि का सही प्रतिनिधित्व करे। प्रतिदर्श सम्पूर्ण समष्टि का वास्तविक प्रतिनिधि है या नहीं इसकी एक कसौटी यह है कि प्रतिदर्श के स्थान पर यदि सम्पूर्ण समष्टि का अध्ययन किया जाय तो परिणामों में सार्थक अन्तर नहीं पड़ना चाहिए। प्रतिदर्श चुनने की यह एक प्रमुख समस्या है कि प्रतिदर्श किस प्रकार चुना जाय ताकि वह समष्टि का ठीक प्रतिबिम्बित कर सके और उसमें कोई पूर्वाग्रह न हों। सांख्यिकी द्वारा हमें ऐसी अनेक विधियां उपलब्ध हुई हैं जिनके द्वारा प्रतिदर्श का ठीक चयन किया जा सकता है। प्रतिदर्श के चयन के प्रक्रम को हम प्रतिचयन कहते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्रतिचयन अनुसन्धान की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। प्रतिचयन की विभिन्न विधियों का इस अध्ययन में वर्णन किया जायेगा। प्रत्येक विधि की अपनी विशेषताएं एवं सीमाएं हैं जिनका भी इस अध्याय में उल्लेख किया गया है ताकि अनुसन्धाता किसी विधि का चयन करते समय इन बिन्दुओं को ध्यान में रख सके। प्रतिचयन संबंधी अन्य समस्याओं की भी इस अध्याय में चर्चा की गई है। अनेक अनुसन्धानों में यह पाया जाता है कि अनुसन्धाता प्रतिचयन वैज्ञानिक ढंग से नहीं करते और इसी कारण उनके शोध-परिणामों को शंकापूर्ण दृष्टि से देखा जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक में प्रतिचयन पर एक सम्पूर्ण अध्याय लिखा गया है।

परिणाम, समूह के समस्त सदस्यों के अध्ययन के आधार पर प्राप्त परिणामों से बहुत भिन्न नहीं होते। अतः अनुसन्धाता प्रतिचयन की विधि को अपना कर अपने समय, शक्ति एवं धन की बचत कर सकता है। यह स्पष्ट है कि जितने छोटे समूह का अध्ययन-करना होगा उतने ही कम समय एवं धन की आवश्यकता होगी।

(२) अधिक गहन अध्ययन की सम्भावना :

प्रतिचयन विधि द्वारा हम सम्पूर्ण समूह का अध्ययन न कर उसके कुछ सदस्यों का अध्ययन करते हैं। अर्थात् हमें छोटे समूह का अध्ययन करना पड़ता है। समूह के छोटे होने से उसके गहन अध्ययन में हम अधिक समय लगा सकते हैं। समस्या के अधिक आयामों का अध्ययन कर सकते हैं। अतएव प्रतिचयन द्वारा प्राप्त परिणाम अधिक सम्पन्न हो सकते हैं।

(३) आंकड़ों के संकलन में अधिक विश्वसनीयता एवं परिशुद्धता :

बहुत बड़े समूह का अध्ययन करने में हम आंकड़ों का संकलन करने में विशेषज्ञों की सहायता नहीं ले सकते। फलस्वरूप जो आंकड़े प्राप्त होंगे वे विश्वसनीय एवं परिशुद्ध नहीं होंगे। यह स्पष्ट है कि शोध परिणामों की सार्थकता आंकड़ों की विश्वसनीयता एवं परिशुद्धता पर निर्भर करती है। प्रतिचयन में क्योंकि हमें छोटे समूह का ही अध्ययन करना होता है हम आंकड़ों के संकलन में विशेषज्ञों की सहायता आसानी से ले सकते हैं। फलस्वरूप हमारे परिणाम भी अधिक विश्वसनीय हो सकते हैं।

प्रतिचयन की सीमितताएं :—

प्रतिचयन के उपरोक्त लाभ तो अवश्य हैं किन्तु यदि हम प्रतिचयन में सतर्कता न बरतें तो परिणाम त्रुटिपूर्ण भी प्राप्त हो सकते हैं।

(१) यदि हम प्रतिदर्श का चुनाव ठीक न करें तो प्रतिदर्श पूर्वाग्रह पूर्ण हो सकता है तथा ऐसे प्रतिदर्श पर आधारित निष्कर्ष भी त्रुटिपूर्ण एवं अविश्वसनीय, होंगे। सरकार द्वारा लागू की गई योजना के सम्बन्ध में जनता की प्रतिक्रिया जानने के लिए यदि हमारे प्रतिदर्श में केवल सरकार के पक्ष के ही व्यक्ति हों तो जो निष्कर्ष प्राप्त होंगे उन्हें जनता की वास्तविक राय नहीं कहा जा सकता।

(२) अनेक बार प्रतिदर्श का चयन तो ठीक यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से किया जाता है किन्तु प्रतिदर्श के कुछ सदस्यों से हम सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाते अथवा कुछ सदस्य प्रश्नावलियों का उत्तर नहीं देते। इस प्रकार प्रतिदर्श की यादृच्छिकता पर प्रभाव पड़ता है। यादृच्छिक प्रतिदर्श के कुछ सदस्यों को यदि हम छोड़ दें तो प्रतिदर्श, यादृच्छिक प्रतिदर्श नहीं रह जाता।

(३) प्रतिदर्श में सदस्यों की संख्या कम होती है, इन सदस्यों को यदि कुछ उपवर्गों में बांट दिया जाए तो प्रत्येक उपवर्ग में सदस्यों की संख्या इतनी कम रह जाने की सम्भावना हो सकती है कि इस संख्या के आधार पर कोई विश्वसनीय निष्कर्ष

नहीं निकाले जा सकते। जैसे १०० शिक्षकों के न्यादर्श को यदि पाच या छ. उपवर्गों में बांटा जाय (स्नातक स्तर तक शिक्षित, स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण, ग्रामीण शहर में रहने वाले, स्त्री, पुरुष, विवाहित, अविवाहित आदि) तो प्रत्येक उपवर्ग में बहुत ही कम शिक्षक रह जावेंगे और इतनी कम सख्या पर कोई सामान्यीकरण स्थापित करना उचित नहीं होगा।

(४) अनेक बार जिस लक्षण को आधार मान कर हम प्रतिदर्श का चयन करना चाहते हैं वह इतना वर्वाचित उपलब्ध होता है कि हमें बड़ा प्रतिदर्श चुनने मे कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। प्रतिभावान छात्रों का अध्ययन करने हेतु हम न्यादर्श चुनने में यह कठिनाई अनुभव कर सकते हैं। क्योंकि जब १००० छात्रों को हम देखेंगे तब उनमें से कठिनाई से २० या ३० वास्तविक प्रतिभावान छात्र उपलब्ध होंगे। इन ३० छात्रों की समष्टि में से प्रतिदर्श चुनना असम्भव बात होगी।

(५) प्रतिदर्श को पूर्ण रूप से समष्टि का उचित प्रतीक बनाने की प्रक्रिया कभी कभी इतनी जटिल हो सकती है कि अनुसन्धाता सम्पूर्ण समष्टि का अध्ययन करने में अधिक सुविधा अनुभव करे।

प्रतिदर्श की इकाई एवं आकार :

प्रतिदर्श का चयन हमें अनुसन्धान कार्य में अनेक बार करना पड़ता है। प्रतिदर्श कितना बड़ा हो तथा उसकी इकाई क्या हो इसके सम्बन्ध मे कोई सामान्य कथन नहीं किया जा सकता। यह दोनों बातें कई कारकों पर निर्भर करती हैं।

प्रतिदर्श की कई इकाइयां हो सकती हैं जैसे विद्यार्थी, माध्यमिक विद्यालय, राजकीय विद्यालय, विज्ञान की पुस्तकें, प्रशिक्षित शिक्षक, परिवार, राज्य मार्ग पर स्थित ग्राम, प्रतिभावान छात्र आदि। प्रतिदर्श की इकाई अध्ययन के उद्देश्य पर निर्भर करेगी। प्रतिभावान छात्रों की पाठ्यक्रम सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करना है तो प्रतिदर्श की इकाई प्रतिभावान छात्र होंगे। यदि माध्यमिक शालाओं में विज्ञान शिक्षण की दशा का अध्ययन करना है तो प्रतिदर्श की इकाई माध्यमिक विद्यालय होंगे। कभी कभी एक ही अनुसन्धान में प्रतिदर्श की दो विभिन्न इकाइयां हो सकती हैं। जैसे द्विपारी विद्यालयों की समस्याओं का अध्ययन करते समय प्रथम हमें कुछ विद्यालयों का चयन करना होगा, फिर कुछ अध्यापकों, कुछ छात्रों तथा कुछ प्रधानाध्यापकों का चुनाव करना होगा। इस प्रकार प्रतिदर्श की इकाइयां अनेक होंगी।

प्रतिदर्श कितना बड़ा हो इसका उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि यह न ज्ञात हो कि अध्ययन के उद्देश्य क्या हैं। अध्ययन मे किस विधि का उपयोग किया जा रहा है अध्ययन परिणामों का अनुप्रयोग कितने व्यापक क्षेत्र पर किया जाने वाला है, जिस समष्टि से प्रतिदर्श का चयन किया जाने वाला है उसकी विषमता कितनी है? या यों कहें कि प्रतिदर्श का आकार उपरोक्त वर्णित अनेकों

कारकों पर निर्भर करता है। जिन अध्ययनों में वैयक्तिक अध्ययन विधि का उपयोग किया जाता है उनमें प्रतिदर्श में दस या इससे भी कम घटक लिए जा सकते हैं जब कि सर्वेक्षण विधि पर आधारित अध्ययनों में प्रतिदर्श का आकार बहुत बड़ा होता है। यदि जिस समष्टि से प्रतिदर्श का चयन किया जा रहा है उसके सदस्यों में विषमता कम हो तो प्रतिदर्श का आकार छोटा हो सकता है। चूंकि, पानी के सब अणु समान होते हैं इसलिए कुछ अणुओं का अध्ययन करने पर ही हम पानी के रसायनिक गुणों का वर्णन कर सकते हैं।

मानव स्वभाव में विषमता होने के कारण अनेकों व्यक्तियों का अध्ययन करने पर भी हम मानव स्वभाव के रहस्य का पता पूर्ण रूपेण नहीं लगा पाए हैं। इसी प्रकार यदि हम अध्ययन परिणामों का अनुप्रयोग सीमित क्षेत्र पर ही करना चाहते हैं तो प्रतिदर्श छोटा होना त्रुटिपूर्ण नहीं होगा। किन्तु यदि हम कोई सामान्य नियम प्रतिपादित करना चाहते हैं तो प्रतिदर्श सम्पूर्ण समष्टि का समुचित प्रतीक होना चाहिए और उसका आकार भी बड़ा होना चाहिए। केवल प्रतिदर्श का आकार बड़ा होना ही उसके औचित्य को सिद्ध नहीं करता। कभी कभी असावधानी से चुने गए १००० सदस्यों की अपेक्षा ठीक विधि से चुने गए १०० सदस्यों का प्रतिदर्श अधिक विश्वसनीय सिद्ध हो सकता है। हमारे सामने ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जिनमें प्रतिदर्श का आकार छोटा होते हुए भी निष्कर्ष बहुत विश्वसनीय प्राप्त हुए हैं, क्योंकि प्रतिदर्श का चयन उपयुक्त विधि से किया गया था।

प्रतिचयन की विभिन्न विधियां :

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है अनुसन्धान-परिणामों की विश्वसनीयता अनुसन्धान के प्रतिदर्श पर बहुत कुछ निर्भर करती है। यदि प्रतिदर्श सम्पूर्ण समष्टि का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहा हो तो परिणामों की अनुप्रयुक्तता भी सीमित ही होगी। प्रतिदर्श का चयन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि चयन पूर्वाग्रह से मुक्त हो। यदि प्रतिचयन अभिनत हुआ तो परिणाम सार्थक नहीं निकल सकेंगे। प्रतिचयन की विधि ऐसी होनी चाहिए जिसमें चुने हुए प्रतिदर्श के बदल देने पर भी अनुसन्धान के परिणामों में विशेष अन्तर न आवे। सांख्यिकी शास्त्र के विशेषज्ञों ने उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रतिचयन की विभिन्न विधियां सुझाई हैं जिनमें से प्रमुख नीचे दी गई हैं :—

यादृच्छिक प्रतिचयन :—

माना कि किसी समष्टि में कुल सदस्यों की संख्या 'स' है इनमें से हमें 'क' सदस्यों का प्रतिदर्श चुनना है तथा कुल समष्टि में से ऐसे 'ख' प्रतिदर्श चुने जा सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में यादृच्छिक प्रतिचयन विधि वह विधि है जिसके द्वारा 'ख' प्रतिदर्शों में से प्रत्येक प्रतिदर्श को चुने जाने की सम्भावना समान हो। उदाहरणार्थ किसी समष्टि में कुल पांच सदस्य 'क, ख, ग, घ, ङ' हैं तथा इनमें से हमें तीन सदस्यों

का एक प्रतिदर्श चुनना है। इस पांच सदस्यों की समष्टि में से हम कुल दस प्रतिदर्शों का चयन कर सकते हैं जो हैं :—

क ख ग, क ख घ, क ख ङ, क ग घ, क ग ङ,

क घ ङ, ख ग घ, ख ग ङ, ख घ ङ, ग घ ङ

यादृच्छिक प्रतिचयन विधि प्रतिदर्श चुनने की वह विधि है जिसके द्वारा उपरोक्त दस प्रतिदर्शों में से प्रत्येक की चुने जाने की सम्भावना समान हो। यादृच्छिक प्रतिचयन तीन विधियों से किया जा सकता है।

(अ) यादृच्छिक-संख्या तालिका द्वारा यादृच्छिक प्रतिचयन :—

सांख्यिकी शास्त्रज्ञों ने कुछ यादृच्छिक संख्या तालिकाएं बना रखी हैं जिनमें फिशर व येट्स, टिप्पेट आदि की तालिकाएं प्रसिद्ध हैं। इस विधि में समष्टि के सब सदस्यों को १ से 'स' तक क्रमांक दे दिये जाते हैं। फिर १ से 'स' के बीच की यादृच्छिक संख्याएं, यादृच्छिक संख्या तालिका से ले ली जाती है। इन संख्या वाले सदस्यों को प्रतिदर्श में सम्मिलित कर लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त प्रतिदर्श यादृच्छिक प्रतिदर्श कहलाता है। इस प्रकार प्राप्त किए हुए प्रतिदर्श में पूर्वाग्रह होने की सम्भावना कम से कम होती है।

(ब) देव-निर्देशन विधि द्वारा यादृच्छिक प्रतिचयन :—

यादृच्छिक प्रतिचयन की इस विधि में समष्टि के सब सदस्यों को १ से 'स' तक क्रमांक दे दिये जाते हैं तथा प्रत्येक सदस्य के क्रमांक को एक कागज की चिट्ठी पर लिख कर गोली बना ली जाती है। समष्टि के सब सदस्यों के क्रमांकों की गोलियों को एक प्याले में रख दिया जाता है। इनमें से एक-एक करके प्रतिदर्श में जितने सदस्य रखने हों, उतनी गोलियां निकाल ली जाती हैं। जिन सदस्यों के क्रमांक इस प्रकार प्राप्त होते हैं उन्हें प्रतिदर्श में सम्मिलित कर लिया जाता है।

(स) प्रत्येक 'क' वें सदस्य को चुन कर यादृच्छिक प्रतिचयन :—

यादृच्छिक प्रतिचयन की इस विधि में समष्टि के सदस्यों को १ से 'स' तक क्रमांक दे दिये जाते हैं तथा इन कुल क्रमांकों में से प्रत्येक 'क' वां क्रमांक न्यादर्श के लिये चुन लिया जाता है। इन क्रमांकों के सदस्यों को प्रतिदर्श में सम्मिलित किया जाता है।

उदाहरणार्थ समष्टि के सदस्यों को १ से १०० तक क्रमांक दिए जा सकते हैं और प्रत्येक पांचवें सदस्य को न्यादर्श में सम्मिलित किया जा सकता है।

परन्तु इस विधि से प्रतिदर्श पूर्ण रूप से यादृच्छिक न होने की सम्भावना हो सकती है। उदाहरणार्थ हमें किसी बस्ती के घरों का अध्ययन करना है और इस हेतु हमने बस्ती के प्रत्येक चौथे मकान को चुना और हर चौथा मकान कोने वाला मकान है। ऐसी परिस्थिति में यह अध्ययन बस्ती के सामान्य मकानों का न होकर बस्ती के कोने वाले मकानों का बन जावेगा। इस परिस्थिति से स्पष्ट हो जायगा कि कभी-कभी

इस विधि से अभिनत प्रतिचयन की सम्भावना हो सकती है।

यादृच्छिक प्रतिचयन की कठिनाइयां :

यद्यपि यादृच्छिक प्रतिचयन द्वारा चयनित प्रतिदर्श अनुसन्धान के लिये सबसे उपयुक्त होता है क्योंकि इसमें कोई पूर्वाग्रह नहीं होते तथापि इस विधि को अपनाने में अनुसन्धाता कई कठिनाइयों अनुभव कर सकता है। यादृच्छिक प्रतिचयन तभी किया जा सकता है जब हमारे पास समष्टि के समस्त सदस्यों की सूची हो। अपूर्ण सूची में से चुना गया प्रतिदर्श सच्चे अर्थ में यादृच्छिक नहीं होगा। दूसरी कठिनाई अनुसन्धाता के सम्मुख यह आ सकती है कि यादृच्छिक प्रतिचयन द्वारा प्राप्त प्रतिदर्श के कुछ सदस्य ऐसे हों जिनसे सम्पर्क स्थापित करना कठिन हो अथवा जो अनुसन्धान कार्य में सहयोग प्रदान करने को तत्पर न हों। ऐसी परिस्थिति में अनुसन्धाता को प्रतिदर्श के लिए अन्य सदस्य चुनने पड़ते हैं तथा प्रतिदर्श पूर्ण रूप से यादृच्छिक नहीं रह जाता।

✓(२) स्तरित प्रतिचयन :

प्रतिदर्श को चुनने की इस विधि के अन्तर्गत प्रतिदर्श सम्पूर्ण समष्टि में से न चुना जाकर समष्टि के विभिन्न स्तरों में से चुना जाता है। इस विधि को तब काम में लिया जाता है जब समष्टि के सदस्यों में बहुत विभिन्नता हो। ऐसी स्थिति में समष्टि को विभिन्न स्तरों या समूहों में बांट दिया जाता है, व प्रत्येक स्तर में से अलग-अलग प्रतिदर्श चुन लिये जाते हैं। अध्ययन का कुल प्रतिदर्श इन उपप्रतिदर्शों के योग के बराबर होता है। इस विधि को और स्पष्ट करते हेतु कुछ उदाहरण देना उपयोगी सिद्ध होगा।

उदाहरण (१) यदि हमें शिक्षकों की व्यवसायिक समस्याओं का अध्ययन करना है तो शिक्षकों की सम्पूर्ण समष्टि को हम ग्रामीण पुरुष शिक्षक, ग्रामीण महिला शिक्षक, शहरवासी पुरुष शिक्षक, शहरवासी महिला शिक्षक आदि स्तरों में विभाजित कर सकते हैं तथा प्रत्येक स्तर में से निर्धारित न्यादर्श का चयन कर सकते हैं।

उदाहरण (२) यदि हमें भारतीय ग्रामों में शिक्षा का विकास, इस समस्या का अध्ययन करना है तो हमें स्तरीय प्रतिचयन विधि अपनानी होगी क्योंकि भारत इतना बड़ा देश है कि इसके अलग-अलग राज्यों की अपनी समस्याएं एवं विशेषताएं हैं। अतः भारत के समस्त ग्रामों में से कोई भी ग्राम लेकर यदि हम निष्कर्ष निकालें तो शायद वह समस्त भारत के लिए लागू नहीं होगा। इसलिये हमें प्रत्येक राज्य में से कुछ ग्रामों का चयन करना होगा।

उदाहरण (३) यदि हमें राजस्थान की माध्यमिक शालाओं में विज्ञान शिक्षण की दशा का अध्ययन करना हो तो हमें समस्त माध्यमिक शालाओं को

स्तरों में बांटना होगा उदाहरणार्थ राजकीय शालाएं, अनुदान प्राप्त शालाएं, पूर्णतया निजी शालाएं तथा प्रत्येक स्तर मे से निर्धारित प्रतिदर्श चुनना होगा।

इस विधि को हमें तब अपनाना चाहिए जब हमें यह ज्ञात हो कि समष्टि के सब सदस्य एक जैसे नहीं हैं। जिन सदस्यो के समान लक्षण हों उन्हें एक स्तर के अन्तर्गत ले लेना चाहिए व इस प्रकार बनाए गए विभिन्न स्तरों में से अलग अलग प्रतिदर्श चुन लेने चाहिए। इस प्रकार कुल न्यादर्श मे समष्टि के सब प्रकार के सदस्यों का प्रतिनिधित्व हो जाता है और निष्कर्ष अधिक सार्थक निकल सकते हैं।

इस विधि मे यदि हम प्रत्येक स्तर मे से न्यादर्श, याद्दच्छिक प्रतिचयन विधि से चुनें तो इस विधि को "स्तरीय याद्दच्छिक प्रतिचयन" विधि कहा जाता है।

स्तरीय प्रतिचयन के लाभ :

इस विधि को अपनाने से अनुसन्धाता को जो लाभ हो सकते हैं उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं।

(१) अधिक सार्थक निष्कर्ष.

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि जब समष्टि में विभिन्न प्रकार के सदस्य हो तो इसविधि से न्यादर्श का चयन करना उपयुक्त होता है क्योंकि ऐसा करने से सब प्रकार के सदस्यों का प्रतिनिधित्व हो जाता है और विभिन्न प्रकार के सदस्यों की विशेषताएं अनुसन्धान निष्कर्ष में समाविष्ट हो जाती है। इस प्रकार निष्कर्षों की सार्थकता अधिक बढ़ जाती है।

(२) प्रशासनिक सुविधा :

विभिन्न स्तरों के न्यादर्शों का अध्ययन करने हेतु हम अलग अलग अध्ययन दल नियुक्त कर सकते हैं जो कि उन्हें दिए गए स्तर का गहन अध्ययन अच्छी तरह कर सकते हैं।

(३) स्तरानुकूल अध्ययन उपकरणों का चयन :

अनेक बार यह देखा जाता है कि हम अध्ययन न्यादर्श के सब सदस्यों के लिए एक ही उपकरण को काम में नहीं ले पाते। स्तरीय प्रतिचयन में हम यह देख सकते हैं कि अमुक स्तर के सदस्यों के लिए कौनसा उपकरण अत्यधिक उपयुक्त सिद्ध होगा। जैसे हम शिक्षकों के लिए प्रश्नावलियां भेज सकते हैं, प्रधानाध्यापकों के कार्य का निरीक्षण कर सकते हैं तथा शिक्षा उप निदेशकों से साक्षात्कार कर सकते हैं।

(३) सोद्देश्य प्रतिचयन :

वैसे तो प्रत्येक ठीक चुना गया प्रतिदर्श, सोद्देश्य प्रतिचयन हो होना चाहिए क्योंकि वह सम्पूर्ण समष्टि के गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। किन्तु सोद्देश्य प्रतिचयन का उपयोग विशेषत एक सीमित विधि के सन्दर्भ में करते हैं। सोद्देश्य प्रतिचयन में हम प्रतिदर्श के सदस्यो को इस प्रकार चुनते हैं कि प्रतिदर्श एवं समष्टि

के ज्ञात गुणों के केन्द्रीय माप एवं प्रमाप विचलन समान हो। प्रतिचयन को अधिक सोद्देश्य बनाने के लिए यह भी देखा जा सकता है कि समष्टि एवं प्रतिदर्श के वितरण-वक्र भी समान हों। प्रादर्श के सदस्यों के सामूहिक लक्षणों का मिलान समष्टि के सामूहिक लक्षणों से इसलिए किया जाता है कि ताकि प्रतिदर्श समष्टि का एक लघु रूप प्रतीत हो सके। इस विधि के लाभ यह हैं कि जहां यादृच्छिक प्रतिचयन सम्भव नहीं हो वहां यह विधि अपनाई जा सकती है। इस विधि में हम सदस्यों के चयन को नियन्त्रित कर सकते हैं। अतः प्रतिदर्श के सदस्यों का सहयोग न मिलने की सम्भावना कम रहती है। किन्तु साथ ही इसकी कुछ सीमाएं भी हैं जिन्हें अनुसन्धाता को ध्यान में रखना चाहिए। यह विधि उसी परिस्थिति में अपनाई जा सकती है जब हमें समष्टि की पूर्ण जानकारी हो। इस विधि में कुछ नियन्त्रण स्थापित करना चाहते हैं जिसमें कठिनाई आ सकती है। आवश्यक नहीं कि समष्टि एवं प्रतिदर्श के सभी गुणों को नियन्त्रित कर समान बनाया जा सके।

(४) युग्म प्रतिचयन .

अनेक बार कुछ अनुसन्धानों में प्रतिदर्श चयन हेतु उपरोक्त विधियों में से एक से अधिक विधियां अपनाई जाती हैं। ऐसी विधि को युग्म प्रतिचयन कहते हैं। उदाहरण के लिए स्तरीय एवं यादृच्छिक पद्धति को मिलाकर स्तरीय-यादृच्छिक प्रतिचयन पद्धति अपनाई जा सकती है जो कि युग्म प्रतिचयन पद्धति है। इस विधि से प्रतिचयन की एक विधि के दोषों की पूर्ति दूसरी विधि के लाभों से हो जाती है।

(५) आनुषंगिक प्रतिचयन :

वैसे देखा जाए तो आनुषंगिक प्रतिचयन विधि प्रतिदर्श को चुनने की कोई वैज्ञानिक विधि नहीं है। अनुसन्धाता जब अपनी सुविधानुसार अथवा किसी विशेष आधार के बिना प्रतिदर्श चुनता है तो उसे आनुषंगिक प्रतिचयन कहा जा सकता है। ऐसे प्रतिचयन पर आधारित परिणामों में अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। अतएव इसे कम से कम अपनाना चाहिए। किन्तु दुर्भाग्यवश देखा गया है कि अनेक अनुसन्धाता इस विधि से प्रतिदर्श का चयन करते हैं। स्नातकोत्तर शोधकार्य में तो अधिकतर प्रतिचयन इसी विधि से किया जाता है।

सारांश

किसी भी अनुसन्धान के परिणामों की विश्वसनीयता अनुसन्धान जिस प्रतिदर्श पर आधारित होता है उस पर निर्भर करती है। प्रतिदर्श का आकार एवं प्रतिचयन की विधि दोनों ही प्रतिदर्श की उपादेयता निर्धारित करते हैं। प्रतिदर्श तभी उपादेय माना जाता है जब वह समष्टि का ठीक ठीक प्रतिनिधित्व करे एवं पूर्वाग्रहों से रहित हो। प्रतिदर्श सही माने में यादृच्छिक हो इसके लिए प्रतिचयन

की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है । यादृच्छिक प्रतिचयन के लिए यादृच्छिक प्रतिचयन, स्तरित प्रतिचयन, सोद्देश्य प्रतिचयन आदि विधियां काम में ली जाती हैं । कौनसी विधि काम में ली जाए, प्रतिदर्श का आकार क्या हो आदि बातें अनेक कारकों पर निर्भर करती हैं । जिनमें अनुसन्धान विधान, अनुसन्धान के उद्देश्य, समष्टि की प्रकृति, उपलब्ध साधन आदि प्रमुख हैं । अन्तिम रूप से एक बार फिर यह दोहराना उपयुक्त होगा कि अनुसन्धान के परिणाम की विश्वसनीयता एवं अनुप्रयुक्तता को बढ़ाने हेतु प्रतिचयन काफी सावधानी से करना चाहिए ।

अभ्यास कार्य

१. प्रतिचयन से आप क्या समझते हैं ? इसका अनुसन्धान में क्या महत्व है ?
२. प्रतिचयन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए ।
३. यादृच्छिक प्रतिचयन में क्या क्या कठिनाइयाँ आती हैं ?

११

दत्त सामग्री का विश्लेषण : पूर्वनियोजन, सांकेतीकरण, दत्त-प्रक्रियाकरण—यन्त्र[1]

भौतिक संसार के समान सामाजिक संसार तथा मनोवैज्ञानिक संसार भी व्यवस्थित है। उनमें क्रमबद्धता है। उदाहरण के लिए, सम्पूर्ण जनसंख्या में बुद्धि का वितरण प्रसामान्य है। यदि हम जन संख्या के एक प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श (रिप्रेजेन्टेटिव सेम्पल) को एक बुद्धि परीक्षा दें और इस परीक्षा के परिणामों का आलेख (ग्राफ) तैयार करें तो बुद्धि-वक्र-रेखा (इन्टेलीजेन्स कर्व) घण्टी के आकार की होगी। अर्थात् प्रसामान्य वितरण वक्ररेखा होगी। यदि सामाजिक संसार में किसी प्रकार की व्यवस्था न होती तो सामाजिक अध्ययनों के दत्तों का कोई विश्लेषण सम्भव नहीं होता। न ही किसी प्रकार के सांख्यिकीय सूत्रों का निर्माण सम्भव होता। उदाहरण स्वरूप सामाजिक समूह की या प्राणियों की एक प्रेक्षित विशेषता है :क्रमशः औसत को ओर जाना। अन्य बातें समान रहें तो लम्बे माता-पिताओं की सन्तान कुछ कम लम्बी होगी। अर्थात्, जन संख्या की औसत लम्बाई के निकट होगी। इसी प्रकार, अन्य बातें समान रहने पर, ठिगने माता पिताओं के बच्चे कुछ

1. Analysis of Data : Preplanning, Coding and data-processing-machine.

लम्बे अर्थात् जनसंख्या की औसत लम्बाई के निकट होंगे। सामाजिक संसार की तथा प्राणी संसार की इस विशेष प्रवृत्ति का पता पहले पहल गाल्टन[1] ने लगाया और इसके आधार पर *सांख्यकीय शास्त्र में प्रागुक्ति सूत्रों का निर्माण किया गया।* अतः अनुसन्धान दत्तों के विश्लेषण का सामान्य उद्देश्य है सामाजिक और मनोवैज्ञानिक तथ्यों का पता लगाना, उनकी प्रकृति का अध्ययन करना और तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का तथा उनको नियमित करने वाले सिद्धान्तों का पता लगाना ताकि प्रागुक्ति सम्भव हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शैक्षिक अनुसन्धानकर्ता शैक्षिक दत्त का वर्गीकरण करता है, उनको तार्किक क्रम से रखता है और परिशुद्ध (प्रेसाइज) निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए उनको गणनात्मक रूप में व्यक्त करता है। फिर गहन विश्लेषण कर व्याख्याएं करता है। विश्लेषण अनुसन्धान के लक्ष्यों की पूर्ति के निमित्त दत्त का उचित वर्गों में विभाजन है। यह कोटिकरण प्रकृति में व्यवस्था और क्रमबद्धता का पता लगाने के लिए किया जाता है।

दत्त संकलन प्रारम्भ करने से पूर्व तथा समस्या के हल करने के लिए विधान की रचना करते समय ही भावी दत्त *विश्लेषण-प्रक्रिया की एक पूर्व योजना बना लेनी* चाहिए। इस पूर्व नियोजन के अभाव में संकलित दत्त में बहुत सी कमियां रह सकती हैं जो आगे दत्त विश्लेषण में कठिनाइयां उपस्थित करेंगी। पूर्व नियोजन में निम्नलिखित तीन बातों के बारे में निर्णय लेना चाहिए।

१. *दत्त संकलन की पद्धति किस प्रकार की होगी : संरचित, अथवा असंरचित अथवा दोनों ?*

संरचित दत्त वह है जिसकी रचना दत्त संकलन पद्धति द्वारा निर्धारित होती है; जैसे बंद प्रश्नों के प्रत्युत्तर जो दिए उत्तरों में से किसी एक को निर्दिष्ट करने के रूप में होते हैं। इसी प्रकार अभिवृत्ति प्रमापनी तथा अन्य मानकीकृत परीक्षाओं के प्रत्युत्तर संरचित हैं। इन संरचित प्रत्युत्तरों का वर्गीकरण, प्राप्तांकीकरण और विश्लेषण बहुत कुछ यांत्रिक होता है। सांख्यकीय विश्लेषण भी अनेक प्रकार से करना सम्भव होता है। दूसरी ओर यदि दत्त सामग्री असंरचित है तो इसका वर्गीकरण जटिल कार्य है। खुले प्रश्नों के उत्तरों, समीक्षात्मक-वृत्तांत-पद्धति[2] द्वारा संकलित वृत्तान्तों और प्रक्षेपण पद्धति[3] के प्रत्युत्तरों के प्रकारों की कोई सीमा नहीं है। अतः दत्त संकलन के उपरांत वर्गीकरण का निश्चित स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है। परन्तु इन पद्धतियों के उपयोग से पहले ही विचार कर कुछ निर्देश निश्चित किए जा सकते हैं जिससे उत्तरों में कुछ एकरूपता हो। उदाहरण के लिए, खुले प्रश्नों की रचना नुकीली की जा सकती है ताकि प्रत्युत्तर एक ही आयाम से संबंधित

1. Galton
2. Crtical incident technaique
3. Projective techniques.

हों। प्रक्षेपण पद्धति का उपयोग करते समय कुछ निश्चित आयामों से संबंधित नुकीले प्रश्न सब व्यक्तियों से पूछे जा सकते हैं। इस पूर्व योजना से उन आयामों के अनुसार प्रत्युत्तरों की कोटियां निर्धारित करने में सुविधा होगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रक्षेपण परीक्षा लेते समय व्यक्ति के अद्वितीय व्यक्तित्व को ध्यान में रख कर प्रश्न पूछे नहीं जाने चाहिए। वे तो पूछे ही जाने चाहिए।

२. दत्त विश्लेषण का प्रकार क्या होना चाहिए ?

परिणामों को विशेषज्ञों द्वारा स्वीकृत किए जाने के लिए पहले यह विचार करना आवश्यक है कि किस प्रकार के विश्लेषणों का क्या प्रभाव पड़ेगा ? नामक दत्त (नॉमिनल डेटा) के सम्बन्ध में साधारणतया कोई आपत्ति नहीं होती। क्योंकि इस प्रकार के गुणात्मक दत्त का एक सुनिश्चित रूप होता है। मुख्य समस्या है कि अंक-गणना-क्रम दत्त, (आर्डिनल डेटा) मध्यान्तर दत्त (इन्टरवेल डेटा) और अनुपातिक दत्त (रेटियो डेटा) में से किस प्रकार का दत्त सकलित किया जाय ? क्योंकि इनका प्रयोग भिन्न-भिन्न विशेषज्ञों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

यह भी पहले से निर्णय करना लाभकारी होगा कि क्या सम्पूर्ण विश्लेषण सांख्यकीय होना चाहिए ? अथवा, समस्या के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ विश्लेषण गुणात्मक भी होना चाहिए ? अथवा, सम्पूर्ण विश्लेषण गुणात्मक ही होना चाहिए ? यदि दत्त को गणनात्मक रूप में व्यक्त करना है तो उपकरण की रचना करते समय इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यवस्था करनी होगी। पहले से ही विचारना चाहिए कि किस सांख्यकीय विधि का उपयोग उचित होगा ? यदि अनुसन्धानकर्ता को दो परिवर्तियों (वेरिएबल्स) के सम्बन्धों का पता लगाना है तो स्पष्ट है कि सांख्यकीय सह-सम्बन्ध निकालना होगा। यह निश्चय करने के बाद दत्त उसी रूप में संकलित किया जाना चाहिए जिससे उसे अंक-गणना-क्रम में रखा जा सके। यदि उसका विचार व्यक्तियों के दो समूहों की प्रतिक्रियाओं के अन्तरों को ज्ञात करने के लिए अनुमानात्मक सांख्यकीय[1] (जैसे, 't' परीक्षा, 'chi वर्ग') का उपयोग करना है तो उसे व्यक्तियों के उत्तरों का वर्गीकरण एक ही प्रकार के आयामों के अनुसार करना होगा क्योंकि आयामों की भिन्नता होने पर 't' परीक्षा के उपयोग के द्वारा व्यक्तियों के समूहों के प्रत्युत्तरों के अन्तरों का पता नहीं लग सकेगा। उसका अर्थ यह है कि दत्त सकलन का उपकरण पूर्व सांकेतीकृत (प्रिकाडेड) होना चाहिए।

३. दत्त विश्लेषण के सन्दर्भ में दत्त संकलन के उपकरणों की रचना कैसी हो ?

बहुधा नव अनुसन्धानकर्ता समस्या के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक दत्त की अन्तर्वस्तु संकलित करने हेतु उपकरण की रचना करने में इतना खो जाता

---

1. Inferential statistics.

है कि उसे यह ध्यान नहीं रहता कि वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने में क्या-क्या कठिनाई उत्पन्न हो सकती है ? सुनिश्चित कोटियों में सम्पूर्ण दत्त को रखे बिना कोई भी विश्लेषण सम्भव नहीं। सभी प्रकार की कोटियों का ध्यान पहले से ही मन में रख कर उपकरण की रचना करनी चाहिए। सांकेतीकरण, जिसका वर्णन आगे किया जायगा, को ध्यान में रख कर यदि दत्त सकलन का उपकरण नहीं बनाया गया तो प्राप्तांकीकरण में, (स्कॉरिंग) सांख्यकीय विश्लेषण करने में और अन्त में अर्थापन करने में अनेक बाधाएं उत्पन्न होगी जो परिणाम को अविश्वसनीय बना सकती हैं। एक बार दत्त एकत्रित होने के पश्चात् पुनः व्यक्तियों को इकट्ठा करना सदा सम्भव नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि प्रश्नावली के अन्त में कक्षा, आयु, तथा लिंग बताने के लिए कोई स्थान नहीं रखा गया है तो बाद में अनुसन्धानकर्ता को यह जानना कठिन हो जायगा कि किस कक्षा के छात्रों ने और किस आयु के बालकों ने, तथा किस लिंग के विद्यार्थियों ने कौन-कौन से प्रत्युत्तर दिए ? उनके उत्तरों की तुलना करना और अनुमान करना असम्भव हो जाएगा। इसी प्रकार यह ध्यान में रखना चाहिए कि दत्त विश्लेषण की सुविधा के लिए प्रत्येक एकांश के क्रमांक पृथक्-पृथक् लिखे हुए है या नहीं तथा उनके उत्तरों के पास संकेताक्षर लिखने का स्थान है या नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक ही आयाम से संबंधित सब एकांश निकट निकट तथा एक ही पृष्ठ में हों ताकि प्रत्युत्तरों के प्राप्तांकीकरण, सांकेतीकरण तथा वर्गीकरण में सुविधा हो। उत्तरों के पास ही दत्त विश्लेषण की आवश्यकता के अनुसार गणना के लिए भी स्थान रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त परिशुद्ध जानकारी प्राप्त करने के लिए सब प्रकार के उत्तरों की व्याख्या होनी चाहिए। मान लीजिए एक प्रश्न है—'क्या आपके विद्यालय में छात्र संघ के कार्य क्रमों का आयोजन छात्र संघ के पदाधिकारियों की राय से प्रजातन्त्रीय ढंग से होता है ?" यदि दो ही समाविष्ट उत्तर रखे गए हैं "हां" या, "नहीं" तो बहुत से छात्र, जिन्हें इस तथ्य के बारे में जानकारी नहीं है, "नहीं" को चिह्नित कर देंगे ; अथवा उत्तर ही नहीं देंगे। उत्तर न देने के परिणाम स्वरूप इस एकांश के प्रतिशत पर प्रभाव पड़ेगा। यदि एक और वैकल्पिक उत्तर "मैं नहीं जानता" रख दिया जाए तो वस्तुस्थिति का अधिक पता लगेगा। इसके अतिरिक्त ऐसे भी छात्र और अध्यापक हो सकते हैं कि जो जानते हुए भी इस प्रश्न का उत्तर न दें। यह उत्तर न देने वालों की भिन्न कोटि है। अतः एक और विकल्प "उत्तर नहीं देना चाहता" होना चाहिए।

४. अनुसन्धान के परिणामों की सीमाओं की पूर्व कल्पना करना :

नियोजित दत्त सकलन, उपकरणों के उपयोग, तथा प्रतिदर्श की दृष्टि से कौन-कौन सी सीमाएं हो सकती हैं जो सामान्यीकरण को व्यापक बनाने में बाधक होती हैं ? अथवा, प्रमाणिक निष्कर्षों पर पहुंचने में बाधक होती हैं ? प्रतिनिध्यात्मक

प्रतिदर्श के सब व्यक्ति उत्तर नहीं देते। जो देते हैं उनमें से कुछ उपकरणों के सब एकांशों का उत्तर नहीं देते। उत्तर देने और न देने के कारण भिन्न-भिन्न होते हैं जिन पर अनुसन्धानकर्ता का नियन्त्रण नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्रतिदर्श की कुछ सीमाएं होती हैं। उदाहरण स्वरूप एक अनुसन्धान कर्ता का विषय था एक नगर के माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा के बाहर की क्रियाओं का अध्यापकों तथा नवीं और दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा मूल्यांकन। उस नगर के विद्यालयों का सर्वेक्षण करने से पता लगा कि विद्यालयों की प्रकृतियों में विभिन्नताएं बहुत हैं; जैसे, सरकारी विद्यालय हैं, निजी विद्यालय हैं, ऐसे विद्यालय हैं जहां नवीं, दसवीं कक्षा में छात्रों की संख्या एक हजार से ऊपर है। दूसरी ओर ऐसे भी विद्यालय हैं जहां नवीं, दसवीं में छात्रों की संख्या पचपन से अधिक नहीं है। एक विद्यालय है जो धार्मिक संस्था है। एक विद्यालय ऐसा है जिसका शिविर-जीवन तथा इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं पर अधिक विश्वास है। इस विद्यालय के अतिरिक्त अन्य किसी विद्यालय में शिविर सम्बन्धी क्रियाएं नहीं होतीं। कुछ विद्यालय केवल छात्रों के ही हैं। कुल नगर में १२ विद्यालय हैं। ऊपर वर्णित वर्गों के अनुसार किसी वर्ग में दो से अधिक विद्यालय नहीं आते। कुछ वर्गों में एक ही विद्यालय आता है। अब बताइए कि प्रतिदर्श में प्रत्युत्तरों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष कैसे निकाला जाए? अनेक सामाजिक अथवा शैक्षिक अनुसन्धानों में ऐसी सीमाएं स्वाभाविक हैं। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि सामान्यीकरण करना सम्भव नहीं। इस स्थिति से बचने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को दत्त संकलन यंत्रों में उन तत्त्वों का समावेश कर लेना चाहिए जिनका समावेश इसी प्रकार के अन्य अनुसन्धानों में हुआ है ताकि उनके परिणामों को इसके परिणामों से अन्तर्गठित कर इस अनुसन्धान को महत्त्वपूर्ण बनाया जा सके।

कोटियों का निर्धारण :

दत्त विश्लेषण में पहला कार्य है कोटियों का निर्धारण। कोटिकरण का अर्थ है कि दत्त सामग्री को भागों तथा उप-भागों में बांटना। इन कोटियों का निर्धारण वर्गीकरण के कुछ निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार होना चाहिए। इन सिद्धान्तों से पता लगना चाहिए कि दत्त सामग्री के किस अंग को किस कोटि में रखा जाए। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं:—

(१) अनुसन्धान समस्या के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अथवा प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण के लिए कोटियाँ बननी चाहिए।

(२) प्रत्येक कोटि वर्गीकरण के केवल एक ही सिद्धान्त के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए।

(३) प्रत्येक कोटि स्वतन्त्र और एक दूसरे से पृथक होनी चाहिए।

(४) प्रत्येक कोटि स्वयं में पूर्ण होनी चाहिए।

(१) प्रथम सिद्धान्त की महत्ता स्वयं स्पष्ट है। यदि अनुसन्धान समस्या के समाधान के लिए कोटिकरण नहीं किया गया है तो परिणाम अप्रासंगिक होंगे। यदि अनुसन्धान की समस्या है : "कॉलेज छात्रों द्वारा अपनाए गए वाञ्छनीय जीवन-मूल्यों का उनकी ज्ञानात्मक उपलब्धि पर प्रभाव" तो स्पष्ट है कि इस समस्या की एक प्राक्कल्पना होगी "वांछनीय जीवन-मूल्यों के कारण ज्ञानात्मक उपलब्धि बढ़ती है।" दूसरी प्राक्कल्पना होगी : 'वांछनीय जीवन-मूल्यों के अभाव में ज्ञानात्मक उपलब्धि कम होती है।" इस प्राक्कल्पना के परीक्षण के लिए एक सरल तरीका यह है कि उन छात्रों का चयन किया जाए जिन्होंने वांछनीय जीवन-मूल्यों को कम या अधिक मात्रा में अपनाया है तथा उनका भी चयन किया जाए जिन्होंने नहीं अपनाया है। प्रतिचयन में जन संख्या का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। फिर उनकी उपलब्धि के अंक लिए जा सकते हैं। यदि दत्त विश्लेषण सतत मापांकों के रूप में हो तो इस विश्लेषण का ढाचा निम्नलिखित प्रकार का होगा:—

जीवन मूल्य मापाङ्क
उपलब्धियाँ
सम्बन्ध

यदि अनुसन्धान का शीर्षक "वाञ्छनीय जीवन-मूल्य, आर्थिक-सामाजिक स्तर, कालेज स्तर पर ज्ञानात्मक उपलब्धि और समजन के मध्य संबंध" है तो कोई भी अनुसन्धान कर्त्ता वांछनीय जीवन-मूल्य और आर्थिक-सामाजिक स्तर को एक आयाम के अन्तर्गत अथवा एक कोटि में नहीं रखेगा। ऐसा करने का अर्थ होगा कोटि-निर्धारण के उपर्युक्त प्रथम सिद्धात का उल्लंघन। यह बहुत सरल सा उदाहरण है। वास्तव में तो दत्तों के पृथक पृथक आयामों का निर्धारण एक जटिल कार्य है। उपर्युक्त अनुसन्धान शीर्षक में वर्णित परिवर्तियों के अनुसार दत्त विश्लेषण का ढाचा निम्नलिखित प्रकार का होगा।

चित्र

ख	ग	घ
$क_1$		
$क_2$		
$क_3$		
$क_4$		
:		
:		
:		

जीवन मूल्य = क
आर्थिक-सामाजिक स्तर = ख
ज्ञानात्मक उपलब्धि = ग
समन्जन = घ

$क_1$, $क_2$, $क_3$..........जीवन-मूल्य प्राप्तांक हैं। इन प्राप्तांकों को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के आर्थिक-सामाजिक स्तर प्राप्तांक, ज्ञानात्मक उपलब्धि प्राप्तांक और समन्जन प्राप्तांक इनके आगे क्रमशः ख, ग और घ के नीचे चित्र में लिखे हैं।

इस प्रकार के विश्लेषण में "टी" परीक्षा आदि का उपयोग कर विश्लेषण बारीकी से किया जा सकता है। परन्तु यदि अनुसन्धानकर्ता इन दो समूहों की कालेज में उपस्थिति की तुलना करे तो यह तुलना अप्रासंगिक होगी। अथवा इन छात्रों की कॉलेज में उपस्थिति के आधार पर उनका कोटि निर्धारण करे और फिर उपलब्धि पर प्रभाव देखे तो यह कोटिकरण अप्रासंगिक होगा।

(२) द्वितीय सिद्धान्त का परिपालन अशुद्ध परिणामों पर पहुंचने के लिए अत्यावश्यक है। नव अनुसन्धानकर्ताओं से बहुधा यह भूल हो जाती है। भ्रम से वे भिन्न-भिन्न आयामों को एक कोटि में रख देते हैं।

(३) *प्रत्येक कोटि का अन्य कोटियों से पृथक होने का अर्थ है कि दत्त का एक* एकाश (आइटम) केवल एक ही कोटि में रक्खा जाना चाहिये। अर्थात्, दत्त विश्लेषण के ढांचे में उसे केवल एक ही खाने के अन्दर रक्खा जाना चाहिये। हर व्यक्ति के प्राप्तांक पृथक-पृथक आयामों के अनुसार पृथक-पृथक खानों में रखे होने चाहिए। यह तभी सम्भव है जब कि प्रत्येक परिवर्ती की व्याख्या स्पष्ट शब्दों में हो। कोई भी परिवर्ती अनेकार्थक नहीं होनी चाहिए। यदि एकार्थक है तो एक ही खाना होना चाहिये। बहुधा इस नियम का पालन करना कठिन हो जाता है। परिवर्ती के एक आयामीय होने की स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये। उदाहरण के लिए, सामाजिक

जीवन-मूल्य कोटि ले लीजिये। सामाजिक जीवन-मूल्य के कई आयाम हैं[1] अर्थात्, कई उपकोटियां हैं; जैसे, सामाजिक कार्यों, व्यावसायिक कार्यों, दूसरे के प्रति सम्बन्धों, सामाजिक मनोरंजनों, आदि से सम्बन्धित जीवन मूल्य।

(४) चतुर्थ सिद्धान्त का अर्थ है कि प्रत्येक कोटि से संबन्धित सब प्रकार के प्रत्युत्तरों को स्थान दिए जाने की व्यवस्था कर ली गई है। अर्थात्, किसी भी व्यक्ति और किसी भी प्रत्युत्तर को अछूता नहीं रखा गया है। कुछ ऐसी कोटियां हैं जिनके द्वारा इस सिद्धान्त की परिपूर्ति हो जाती है, जैसे; यौन कोटि ले लीजिए। छात्रा और छात्राओं का वर्गीकरण सरल है। परन्तु सामाजिक जीवन-मूल्य नामक कोटि ले लीजिये। सब प्रकार के सामाजिक जीवन-मूल्यों की सूची बनाने के लिए सर्वेक्षण करना होगा और फिर सब प्रकार के उत्तरों के लिए भी पूर्व जांच करनी होगी।

सांकेतीकरण :

दत्त विश्लेषण के लिए कोटियों के निर्धारण के पश्चात् प्रत्येक कोटि का एक सांकेतिक नाम रखना चाहिए। यदि दत्त सामग्री बहुत ही संक्षिप्त है तो विश्लेषण के लिए सांकेतिक नाम की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। परन्तु साधारणतया छोटे से छोटे अनुसन्धान में भी दत्त संख्या काफी रहती है तथा जटिल रूप में रहती है। अतः बिना सांकेतिक नामों के सारिणीकरण सम्भव नहीं है। सांकेतीकरण वह संक्रिया है जिसके द्वारा दत्त के प्रत्येक एकांश को एक सांकेतिक नाम देकर उसकी प्रकृति के अनुकूल एक कोटि में रखा जाता है। इस प्रकार से उस कोटि में रखे गए सांकेतिक नामों को गिन कर दत्त के अन्तर्गत उस वर्ग की कुल संख्या का पता लगता है। सांकेतिक नाम एक प्रतीक है जो एक या अधिक अक्षर के रूप में हो सकता है अथवा एक या अधिक अंकों के रूप में भी हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि कुछ वक्तव्यों के सम्बन्ध में लोगों के मतों को तीन वर्गों में यथा-अनुकूल, तटस्थ, प्रतिकूल, रखना है तो प्रतीक या सांकेतिक नाम क्रमशः "अ" "त" और "प्र" हो सकते हैं। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण लीजिए। एक महत्वपूर्ण प्रेक्षणात्मक अध्ययन[1] में मुक्त क्रीड़ा घण्टे में नर्सरी विद्यालय को बच्चों के क्रीडा व्यवहार में सामाजिक भाग—ग्रहण नामक परिवर्ती को निम्नलिखित छः उपकोटियों में बांटा गया था —

प्राप्तांङ्क	संकेतक	उपकोटि[2]
—३	न	किसी क्रीड़ा में न लगा हुआ व्यवहार

---

1. Mussen, C. Handbook of Research Methods in Child Development, John Wiley & Sons, N.Y., 1960 p.94. यह पार्टन द्वारा 1931 में किया गया।
2. Unoccupied behaviour Solitary Occupied behaviour On looker behaviour parallel play merely associative play trily Cooperative play.

मापांक	सांकेतक	उपकोटि
—२	अ	अकेले ही क्रीडा में लगा व्यवहार
—१	द	द्रष्टा व्यवहार
१	स	समानान्तर खेल
२	के	केवल सहचर्यात्मक खेल
३	सह	सच्चा सहयोगी खेल

इस कोटि के अन्तर्गत प्रत्येक उपकोटि का सांकेतिक नाम अथवा अंक नाम ऊपर बांयी ओर दिया गया है। प्रेक्षण किए हुए बालकों के भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवहार के भिन्न एकांशों को उन उपकोटियों के सांकेतिक नामों के अनुसार लिखा जा सकता है।

कुछ दत्तों मे संकेतीकरण की क्रिया व्यक्तियों के द्वारा उत्तर देते समय हो जाती है क्योंकि उपकरण में ही प्रत्युत्तर के निश्चित वर्ग बने रहते हैं। इस प्रकार के उपकरणों के पूर्व-सांकेतीकृत (प्रीकोडेड) उपकरण कहते हैं। जैसे: प्रत्येक प्रश्न के आगे उत्तरों के वर्ग बने हों और "स" (सत्य), "अ" (असत्य) अथवा "अ" (अनुकूल), "त" (तटस्थ), "प्र" (प्रतिकूल), लिखा हुआ हो। उत्तर देने वाले को अपने मत के अनुसार किसी एक प्रतीक को चिह्नित करना होता है। अच्छा तो यही है कि पहले से ही इस प्रकार के वर्गीकरण और सांकेतीकरण की व्यवस्था हो। परन्तु साक्षात्कार प्रेक्षणात्मक अध्ययन, केस इतिहास, प्रक्षेपण विधियों, खुले प्रश्नों आदि के द्वारा एकत्रित दत्त सामग्री में यह व्यवस्था सदा सम्भव नहीं है। इन दत्तों का गुणात्मक सांकेतीकरण अधिक होता है और संख्यात्मक कम। उचित सांकेतीकरण के लिए निम्नलिखित दो नियम ध्यान में रखने चाहिए।

(१) दत्त संकलन का उद्देश्य उत्तरदाताओं को स्पष्ट हो जाना चाहिए। फिर यह देखना चाहिए कि उनके उत्तरों अथवा प्रेक्षित व्यवहारों का इस लक्ष्य से क्या सम्बन्ध है। मान लीजिए एक खुला प्रश्न है: "अध्यापकों के कौन-कौन से व्यवहारों को आप पसन्द नहीं करेंगे?" और दूसरा खुला प्रश्न है कि "अध्यापक के जिन जिन व्यवहारों को आपने देखा है उनमें से कौनसा व्यवहार आप को पसन्द नहीं आया?" अब यदि दोनों ही प्रकार के प्रश्नों के उत्तर आते हैं: "अध्यापकों द्वारा छात्रों को अपशब्द कहना" "छात्रों के गृह कार्य को न देखना", "छात्रों के प्रश्नों का उत्तर न देना", "असत्य बोलना", "चरित्र हीन होना"। यदि दोनों प्रश्नों को बारीकी से देखा जाय तो दूसरे प्रश्न का उत्तर अध्यापक के उन व्यवहारों को, जो छात्र ने स्वयं प्रेक्षित किया है, के आधार पर देना है जब कि प्रथम प्रश्न के द्वारा वे उत्तर भी दिए जा सकते हैं जिनको छात्र कल्पना कर सकता है परन्तु जो उसने स्वयं प्रेक्षित नहीं किया है। यदि कल्पना के आधार पर भिन्न मनोरचनाओं से छात्र उत्तर देंगे तो उत्तरों के प्रकारों की कोई सीमा न होगी। अतः प्रश्न

की रचना उत्तर देने वालों के द्वारा प्रेषित तथ्यों तक सीमित रहनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उत्तरों का प्रश्न के उद्देश्य के सन्दर्भ में ही मूल्यांकन करना चाहिए। जो प्रश्न उद्देश्य से सम्बन्धित हों उन्हें विश्लेषण के अन्तर्गत सम्मिलित करना चाहिए; भले ही उत्तर का स्वरूप कैसा ही हो। उदाहरण के लिए किसी छात्र का एक वाक्य हो सकता है : "विचित्र बात है कि अध्यापक कक्षा में बैठे अधिक रहते हैं।" वाक्य से पता लगता है कि छात्र को यह व्यवहार पसन्द नहीं, यद्यपि इस वाक्य में पसन्द शब्द का उपयोग नहीं हुआ है।

(२) वर्गों को सूचित करने वाले चिह्नों की सूचिया तैयार कर लेनी चाहिए। इसके लिए सब से पहले सम्पूर्ण दत्त सामग्री को बारीकी से पढ़ते जाना चाहिए और चिह्न पृथक कागज में लिखते जाना चाहिए। इन चिह्नों को लिखने से भिन्न-भिन्न वर्ग मस्तिष्क में उभर आयेंगे। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ग का वस्तुनिष्ठ अर्थापन करना चाहिए ताकि सांकेतीकरण में भ्रम न हो। अर्थापन करने के लिए कोटि करण के उपर्युक्त चारों सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए। दत्त सामग्री का बार-बार अवलोकन कर यह देख लेना चाहिए कि जो आदेश सांकेतीकरण के लिए निर्धारित करते हैं उनके अन्तर्गत सभी प्रायुत्तरों अथवा व्यवहारों को रखा जा सकता है या नहीं?

सांकेतीकरण में अनेक कारणों से कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। एक कारण अवबोध की कमी हो सकती है। यदि हाई स्कूल के छात्रों से पूछा जाए कि "क्या आपका छात्र-संघ प्रजातन्त्रीय ढंग से निर्णय लेता है" तो हो सकता है कई छात्र ठीक से उत्तर न दे सकें क्योंकि वे प्रजातन्त्रीय ढंग का अर्थ ठीक से समझते नहीं हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर अपूर्ण भी हो सकते हैं। लिखावट खराब हो सकती है। और उत्तरों में असंगति हो सकती है। एक प्रश्न के उत्तर में छात्र लिख सकता है "छात्र संघ के कार्य करने का ढंग प्रजातंत्रीय नहीं है" दूसरे स्थान पर वही छात्र उत्तर दे सकता है कि "विद्यालय के अध्यापक वर्ग छात्र संघ के पदाधिकारियों से परामर्श लेकर कार्यक्रम निर्धारित करते हैं।"

सांकेतकों का चयन :

बड़े पैमाने में किए जाने वाले अनुसन्धानों में सांकेतकों की नियुक्ति अनिवार्य हो जाती है। सांकेतकों के सांकेतीकरण पर दत्त का प्रयुद्ध विश्लेषण और उसका उचित अर्थापन निर्भर करता है। अतः सांकेतकों का चयन करने में अनेक सावधानियाँ रखनी चाहिए। सांकेतक ऐसा संवेदनशील व्यक्ति होना चाहिए जो शब्दों के अर्थों के गूढ़ अन्तरों को पहचान सके। उसको अनुसन्धान विषयों के मूल संप्रत्यय स्पष्ट होने चाहिए क्योंकि तभी वह उद्देश्य के अनुकूल सांकेतीकरण कर सकेगा। यह तभी सम्भव है जब कि वह बुद्धिमान हो। सांकेतीकरण एक यांत्रिक कार्य है जिसे बार-बार दोहराना पड़ता है। यह उबानेवाला है। अतः सांकेतक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो शीघ्र ऊबे नहीं।

सांकेतकों का प्रशिक्षण :

सांकेतकों का प्रशिक्षण निम्नलिखित सोपानों में होना चाहिए.—

(१) अनुसन्धान के उद्देश्य अच्छी प्रकार समझा देने चाहिए। उन्हें अच्छी प्रकार प्रेरित करने के लिए अनुसन्धान कार्य के पीछे अनुसन्धान कर्ताओं की प्रेरणाओं से अवगत करा देना चाहिए।

(२) दत्त सामग्री की सभी कोटियों तथा सांकेतिक नामों को अच्छी प्रकार सोदाहरण समझा देना चाहिए। उन्हें प्रत्येक कोटि और सांकेतिक नाम के पीछे तार्किकता समझ में आ जानी चाहिए।

(३) सांकेतकों को सांकेतीकरण का अभ्यास कराना चाहिए। इस अभ्यास से उनकी त्रुटियों का पता लगेगा और सांकेतिक नामों को समझने की कमियां दूर हो जायेंगी। यह भी पता लगेगा कि भिन्न-भिन्न सांकेतक सांकेतीकरण एक ही प्रकार की मनोरचना से कर रहे हैं अथवा नहीं ? आवश्यकता पड़ने पर सामूहिक चर्चा की जानी चाहिए।

(४) जब यह निर्णय हो जाये कि वे सांकेतिक नाम एक ही मनोरचना के आधार पर दे रहे हैं तो अन्तर्सांकेतक विश्वसनीयता[1] का मापन कर लेना चाहिए। विश्वसनीयता बहुत अधिक आने पर (.९ से कम नहीं) मुख्य दत्त सामग्री का इन सांकेतकों द्वारा सांकेतीकरण आरम्भ किया जा सकता है।

दत्त-प्रक्रियाकरण-यन्त्र :

अनुसन्धान कर्ताओं के हित में एक चमत्कारिक आविष्कार हुआ है: वैद्युत-अंकीय-परिगणक-यन्त्रों[2] का निर्माण। इस यन्त्र की प्रमुख विशेषता यह है कि गणना की वे क्रियाएं जो सहस्रों बार दोहरायी जाती है तथा जिनमें भिन्न-भिन्न सांख्यकीय सूत्रों का उपयोग किया जाता है इस यन्त्र के द्वारा बड़ी तीव्र गति से प्रशुद्ध[3] की जा सकती है। दत्त विश्लेषण में सांख्यकीय और गणितीय गणना यांत्रिक कार्य है तथा हाथ के द्वारा करने में त्रुटियां हो जाती हैं। दत्त विश्लेषण के इस उबाने वाले कार्य को अब वैद्युत-परिगणना-यन्त्र कर देते हैं। समय की कितनी बचत होती है यह एक वास्तविक उदाहरण से विदित हो जायगा। एक अनुसन्धानकर्त्ता को १६४ व्यक्तियों द्वारा पचास एकांशों की दो अभिवृत्ति प्रमापनियों के प्रत्युत्तरों का विश्लेषण करना था। उनके औसत, मानक-विचलन[4] और अन्तर्संहसम्बंध[5] निकालने थे इस अन्तर्संह-सम्बंध निकालने के लिए १२२५ सह-सम्बन्ध निकालने आवश्यक थे। इनके अतिरिक्त ९ कारकों का कारक-विश्लेषण करना था। कारक-विश्लेषण बहुत जटिल सांख्यकीय

---

1. Inter-Coder-Reliability.
2. Electronic-digital-computer-machine.
3. Accurate
4. Standard deviation.
5. Inter correlations.

पद्धति है जिसको गणनायन्त्र[1] की सहायता से करने में दो सप्ताह का समय लगना स्वाभाविक है। इस कारक-विश्लेषण तथा उपरिलिखित सभी सांख्यकीय विश्लेषण परिगणना यन्त्र द्वारा तीन मिनिट में कर लिए गए। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि लम्बे गणना कार्यों में मनुष्य द्वारा त्रुटियां सम्भव है। परन्तु इस परिगणना यन्त्र द्वारा सौ वर्षों में एक बार भी गलती नहीं हो सकती। एक और लाभ यह है कि एक ही प्रकार की गणना करने के विभिन्न तरीके इस यन्त्र में विद्यमान है जिससे विभिन्न तरीकों से एक समान परिणामों पर पहुंचा जा सकता है। इस यन्त्र के द्वारा दत्त विश्लेषण करवाने में व्यय भी कम लगता है। ऊपर से देखने में व्यय ज्यादा प्रतीत होता है परन्तु वास्तव मे होता कम है। उदाहरण के लिए एक घण्टे के गणना श्रम का दाम १२०० डालर है परन्तु एक घण्टा इस मशीन के लिए बहुत लम्बा समय है। इस प्रकार एक मिनट का व्यय २० डालर पड़ता है।[2] विदेशों में विशेष कर अमेरिका में लगभग प्रत्येक शैक्षिक संस्था परिगणना यन्त्र को सरलता से प्राप्त कर सकती है। दिल्ली, कानपुर, बम्बई आदि प्रान्तों में परिगणना यन्त्र है। इनकी सेवाएं कोई भी अनुसन्धानकर्त्ता ले सकता है।

शिक्षा और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में इन यन्त्रों से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि जिन सांख्यकीय विश्लेषणों को पहले अनुसन्धानकर्त्ता सामर्थ्य के बाहर समझ कर छोड़ देते थे उन्हें इस यन्त्र की सहायता से करने लगे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में निकलने वाली अनुसन्धान की आधुनिक पत्रिकाओं में कठिनाई से ही कोई लेख मिलेगा जिसमें कारक-विश्लेषण का उपयोग न किया गया है।

प्रत्येक अनुसन्धानकर्त्ता को इन गणना यन्त्रों की भाषा को समझना आवश्यक है। इन यन्त्रों से जटिल कार्य करवाने के लिए यन्त्र निर्माताओं ने यन्त्र की भाषा का आविष्कार किया। किसी यन्त्र से कार्य करवाने के लिए उसकी भाषा में बोलना आवश्यक है। अर्थात् मशीन को आज्ञा दे सकना चाहिए। फॉर्ट्रेन[3] एक ऐसी माध्यमिक भाषा है जिसके द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता और यन्त्र विशेषज्ञ एक दूसरे को समझ सकते हैं और यन्त्र को उसी की भाषा में आदेश दे सकते हैं। इस भाषा के आविष्कार से पूर्व अनुसन्धानकर्त्ता को या तो सम्पूर्ण यन्त्र की भाषा को समझना पड़ता था या ऐसे पेशेवर व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती थी जो उसकी भाषा का अनुवाद मशीन के लिए कर दे। परन्तु पेशेवर व्यक्ति अनुसन्धान समस्या को नहीं समझते इसलिए गलतियां हो जाती थीं।

(1 & 2) Kerlinger, F. N. : Foundations of Behavioral Research Educational and Psychological Inquiry, Holt, Rinehart & Winston, Inc, New York, 1964, pp. 703-704

3. Fortran (Formula Translation)

प्रत्येक अनुसन्धानकर्त्ता को आधुनिक वैद्युत-दत्त-प्रक्रियाकरण की प्रविधियों और यन्त्रों की प्राथमिक जानकारी आवश्यक है ताकि वह अपने अनुसन्धान के आयोजन करने में उपलब्ध लाभ उठा सके। वर्तमान अध्याय के इस भाग का उद्देश्य केवल इस परिगणना यन्त्र का परिचय मात्र देना है।

परिगणना व्यवस्था (कम्प्यूटर सिस्टम) :

परिगणना यन्त्र बहुत सरल प्रकार के छोटे २ भी हैं और जटिल प्रकार के बड़े भी हैं जिनके द्वारा करोड़ों की संख्या में गणनायें की जाती हैं। जिस प्रकार एक कार ड्राइवर को कार के यन्त्र की रचना की जानकारी नहीं होती परन्तु वह कार चला सकता है उसी प्रकार अनुसन्धानकर्त्ता परिगणना यन्त्र का उपयोग कर सकते हैं चाहे उन्हें उसकी रचना की जानकारी न हो। हम रेडियो के यन्त्र की रचना नहीं जानते परन्तु रेडियो हम चला सकते हैं और उसकी रचना की मोटी बात जान सकते हैं। ठीक उसी प्रकार दत्त विश्लेषण करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को परिगणना यन्त्र की रचना की जानकारी होनी आवश्यक नहीं है।

परिगणक व्यवस्था के तीन अंग हैं. अन्दर डालने/बाहर भेजने की प्रणाली,[1] केन्द्रीय प्रक्रियाकरण एकक[2], और स्मृति एकक[3]। भिन्न-भिन्न परिगणक यन्त्रों में इन तीन अंगों की रचना भिन्न-भिन्न हो सकती है। कुछ की रचना सरल है, कुछ की जटिल। परन्तु सभी परिगणक यन्त्रों के इन आधारभूत तीन अंगों की कार्य प्रणाली समान है।

अन्दर डालने/बाहर भेजने की प्रणालियां :

ये वे प्रणालियां हैं जिनके द्वारा परिगणक को समाचार दिए जाते हैं। इस प्रकार की कुछ प्रणालियां हैं : कार्ड पठन एवं छिद्रकरण एकक,[4] मुद्रक, कागज और चुम्बक के टेप,[5] चुम्बकीय तश्तरियां।[6]

सामान्यतः दत्त सामग्री पंच कार्डों में परिगणक के पास लायी जाती है। पृष्ठ-पर पंच कार्ड का चित्र तथा पंच कार्ड में दत्त सामग्री संकलित करने की विधि बता दी गई है। फिर पंच कार्डों से दत्त सामग्री चुम्बकीय टेपों या चुम्बकीय तश्तरियों में स्थानान्तरित कर दी जाती है। परिगणक यन्त्र के जिस अंग द्वारा यह कार्य होता है उसे अन्दर डालने की प्रणाली कहते हैं।

---

1. Input/Output device.
2. Central processing unit.
3. Memory unit.
4. Card reading and punching unit.
5. Paper and magnetic tape.
6. Magnetic discs.

तदुपरान्त केन्द्रीय प्रक्रियाकरण एकक द्वारा दत्त प्रक्रियाकरण होता है। फिर प्रक्रियाकरण के परिणामों को परिगणक द्वारा दूसरी बाहर भेजने वाली तवतरियों (टेपों) में स्थानांतरित किया जाता है। फिर इस बाहर भेजने वाले टेप में सकलित परिणामों को या तो कागजों पर छाप दिया जाता है और या फिर पंच कार्डों में परिवर्तित कर दिया जाता है। परिगणना यन्त्र के जिस अंग द्वारा यह कार्य होता है उसे बाहर भेजने वाली प्रणाली कहते हैं।

केन्द्रीय प्रक्रियाकरण एकक :

परिगणना यन्त्र का यह मुख्य अंग है। वस्तुतः परिगणना इसी अंग द्वारा होती है। इस केन्द्रीय एकक के दो भाग हैं : गणितीय एवं तार्किक अनुभाग[1] और नियन्त्रण अनुभाग।[2] जोड़, घटाना, गुणा, भाग आदि सब गणितीय एवं तार्किक कार्य प्रथम अनुभाग द्वारा होता है। नियन्त्रण अनुभाग का कार्य समन्वय का है। इसका नियन्त्रण अन्दर डालने/बाहर भेजने की प्रणाली, गणितीय-तार्किक अनुभाग और स्मृति एकक पर रहता है। इस नियन्त्रण के द्वारा परिगणक की प्रत्येक क्रिया क्रमबद्ध रूप से होती है। अर्थात् गणितीय-तार्किक अनुभाग के द्वारा पूर्ण की गई क्रियाओं को स्मृति एकक में भेजना, साथ ही अन्दर डालने और बाहर भेजने की प्रणाली को सक्रिय करना ताकि नवीन आदेश गणितीय-तार्किक अनुभाग तक पहुंचे, स्मृति एकक में संगृहित दत्त विशेष को गणितीय-तार्किक अनुभाग में गणना हेतु भेजना, साथ ही स्मृति एकक में एकत्रित परिणामों को लेकर अन्दर डालने/बाहर भेजने की प्रणाली तक पहुंचाना और उन्हें सक्रिय करना आदि कार्य नियंत्रण अनुभाग द्वारा होते हैं। नियंत्रण अनुभाग सम्पूर्ण क्रियाओं के उचित क्रमों का निर्धारण करता है।

स्मृति एकक :

परिगणक का वह भाग है जहां आवश्यकतानुसार जानकारी संगृहित रहती है। दत्त सामग्री, कार्यक्रम और गणनाओं के परिणाम इस भाग में संगृहित रहते हैं। स्मृति एकक के अन्दर निश्चित स्थान में दत्त सामग्री के संगृहित होने पर ही मुख्य गणना कार्य होता है।

यन्त्र की अपनी बुद्धि नहीं होती। न ही उसमें चेतना होती है। इसीलिए वह मानव भाषा समझ नहीं पाता है। यंत्र छोटी-छोटी क्रियाओं को दोहरा मात्र सकता है। दोहरा तो वह असंख्य बार सकता है। इस विशेषता को ध्यान में रख कर स्मृति एकक में सम्पूर्ण दत्त सामग्री का संग्रह, साधारणतया द्विनाम-अंकन[3]

---

1. Arithmetic and logical section.
2. Control section.
3. Binary notation

द्वारा किया जाता है। ये द्विनाम अंक हैं : "०" और "१"। एक से अधिक संख्या लिखने में इन दो अंकों को क्रमशः बायीं ओर करते जाते हैं यथा—

अंक गणना (गिनती)	द्विनाम अंकन रूप
०	०
१	१
२	१०
३	११
४	१०१
५	११०

अनुसन्धानकर्त्ता को अपनी दत्त सामग्री को द्विनाम अंकन के रूप में परिगणक के पास लाने की आवश्यकता नहीं है। साधारण अंक गणना के रूप में वह दत्त ला सकता है। यह दत्त जब परिगणक में डाला जाता है तो एक स्वचालित यवि-विधि द्वारा दत्त द्विनाम-अंकन-रूप में परिवर्तित हो जाता है।

स्मृति एकक में लाखों की संख्या में जानकारी संगृहित की जा सकती है। यह जानकारी कार्यक्रमों के रूप में रहती है जिनका वर्णन आगे किया गया है।

कार्यक्रम करण (प्रोग्रेमिङ्ग) :

कार्यक्रम परिगणक द्वारा किसी समस्या को हल करने के लिए छोटे-छोटे पदों में क्रमबद्ध रूप में लिखे हुए सभी आदेश है। ये आदेश उसी क्रम से लिखे रहते हैं जिस क्रम से परिगणक की क्रियाएं होती हैं। कुल जितनी क्रियाएं परिगणक किसी समस्या को हल करने के लिए करता है उतने ही तथा उसी प्रकार के आदेश परिगणक को देकर उसके स्मृति कक्ष में उन्हें संगृहित कर लिया जाता है। इस प्रकार क्रमबद्ध रूप में आदेशों को लिखना कार्यक्रमकरण कहलाता है।

मशीन तो छोटी-छोटी क्रियाएं एक बार में एक-एक के क्रम से कर सकती है। अतः मशीन की भाषा में कार्यक्रम तैयार करना परिश्रम का कार्य है। उदाहरण के लिए एक समीकरण $C=B+A$ को हल करने के लिए परिगणक को आदेश सात तार्किक पदों में दिए जाते हैं[1]। कार्यक्रम तैयार करने में परिश्रम कम करने के लिए यन्त्र भाषा[2] के स्थान पर एक गौण कार्यक्रम का निर्माण किया गया है जिसमें आदेश संक्षेप में गणितीय संकेतों (यथा, −, +, =) तथा संक्षिप्त शब्दों (यथा,

1. TOBIAS, S : Electronic Data Processing, Chap 23 in The Research Process in Education (by David J. Fox) Holt, Rinehart and Winston, Inc., NewYork, P. 689.
2. Machine language : वह भाषा है जो किसी परिगणना को करने के लिए यान्त्रिक क्रियाओं के नामों के रूप में है।

"करो", "यदि", "पढ़ो") में रहते हैं। इस स्रोत-कार्यक्रम को वस्तु–कार्यक्रम (यन्त्र की भाषा में कार्यक्रम) में परिवर्तित करने के लिए फॉर्ट्रन[1] नामक भाषा का आविष्कार हुआ है। परिवर्तन का यह कार्य परिगणक स्वयम् कर लेता है।

अनुसन्धानकर्ता की सुविधा के लिए अनेक बने बनाए कार्यक्रम परिगणक केन्द्रों में उपलब्ध हैं। सह-सम्बन्ध, एकांश-विश्लेषण, कारक विश्लेषण आदि के कार्यक्रम उपलब्ध हैं।

अन्य उपकरण :

परिगणक यन्त्र से संबंधित अन्य अनेक उपकरण हैं। उनमें से कुछ हैं: पंच मशीन, पंच कार्ड पुनरुत्पादक यन्त्र[2], कार्ड सॉर्टिंग यन्त्र[3], आदि। पंच मशीन का कार्य है पच कार्ड मे दत्त को रखने के लिए उचित स्थानों (अंकों) में छेद करना। ऐसे पंच कार्ड कहीं खो गए तो पुनः श्रम करने तथा पुनः समय लगाने से बचने के लिए पंचकार्ड पुनरुत्पादन यन्त्र हैं जिससे एक-एक पंच कार्ड में संकलित दत्त सामग्री की कई प्रतियां बनाली जाती हैं। अर्थात्, अनेक वैसे ही छेद किए हुए पंच कार्ड बना लिए जाते हैं। कार्ड सॉर्टिंग यन्त्र के द्वारा दत्त की कोटियों के अनुसार कार्डों की गड्डियां बना ली जाती हैं। इससे दत्त का कोटीकरण हो जाता है।

पंच कार्ड :

पंच कार्ड मे लम्बवत् (ऊपर से नीचे) ० से लेकर ९ अंक ८० बार लिखे होते हैं जैसा कि नीचे चित्र मे दिखाया गया है। प्रत्येक कार्ड में अंकों की सीधी रेखा, जिसमे एक-एक अंक ८० बार लिखा है, मे एक ही परिवर्ती से संबंधित जानकारी रखी रहती है। जानकारी छेदों के रूप में रहती है। उदाहरण के लिए चित्र–में छेद काले किए स्थानों से प्रदर्शित किए गए हैं। पच कार्ड १ से लेकर ९ अंक तक के लिए, + और — चिह्न के लिए, तथा A लेकर Z तक वर्णमाला के अक्षरों के लिए निश्चित स्थान कार्ड में रहते हैं। इस अंक, अक्षर या अन्य चिह्न के नियत स्थान पर छेदों को देखने से पता लग जाता है कि क्या जानकारी कार्ड में रखी गई है। उदाहरण के लिए लम्बवत् प्रथम अंकों की रेखाएं ० से ९ तक के अंकों के द्योतक हैं। कार्ड मे देखिए २३ कैसे लिखा है? एक छेद ७८वें लम्बवत् खाने में २ पर है फिर ७९वें लम्बवत् खाने में ३ पर छेद है। कार्ड में A से Z तक के अक्षरों के द्योतक २० से ४५ तक के खाने हैं।

---

1. Formula Translation (Fortran)
2. Punch Card reproducing machine.
3, Card sorting machine.

पंच कार्ड

सारांश

सामाजिक संसार तथा मनोवैज्ञानिक संसार व्यवस्थित है। क्रमबद्ध है। यही कारण है कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक तथ्य निश्चित सिद्धान्तों द्वारा नियमित होते हैं। यदि ऐसा न होता तो सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों के तथ्यों का विश्लेषण सम्भव न होता। उचित विश्लेषण के लिए पूर्व नियोजन आवश्यक है। जहां तक सम्भव हो दत्त संकलन पद्धति ऐसी रखनी चाहिए कि जिसके द्वारा एकत्रित दत्त कोटियों अथवा वर्गों में विभाजित किया जा सके। दत्त संकलन की पद्धति के प्रकार का नियोजन दत्त विश्लेषण के उद्देश्यों और कठिनाइयों को ध्यान में रख कर करना चाहिए अन्यथा उचित विश्लेषण न हो पाएगा। दत्त संकलन के उपकरणों की रचना दत्त के साकेती करण को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त अनुसन्धानों के परिणामों की क्या सीमाएं होंगी इसका पूर्वानुमान पूर्व नियोजन का अंग होना चाहिए अन्यथा बाद में सामान्यीकरण करने में कठिनाई होगी। दत्त विश्लेषण कोटियों के निर्धारण से प्रारम्भ होता है। अनुसन्धान का विश्लेषण कोटि निर्धारण से प्रारम्भ होता है। अनुसन्धान कर्ता को कोटि निर्धारण के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर कोटि करण करना चाहिए ताकि परिणाम विश्वसनीय हों। कोटि करण के पश्चात् साकेतीकरण करने से विश्लेषण करने में सुविधा होती है। उचित साकेतीकरण तभी सम्भव है जबकि उत्तरदाताओं ने प्रत्युत्तर एक ही प्रकार की मनोरचनाओं से दिए हैं और दत्त को वर्गों में विभाजित कर वस्तुनिष्ठ अर्थापन किया गया है। विशाल स्तर पर किए जाने वाले अनुसन्धानों में साकेतीकरण के लिए साकेतकों की नियुक्ति की आवश्यकता हो सकती है। नियुक्ति के पश्चात् उनका उचित प्रशिक्षण होना चाहिए। विशाल स्तर पर किए जाने वाले अनुसन्धान कार्य को लेने के लिए यह भी आवश्यक है कि दत्त-प्रक्रियाकरण यंत्र के उपयोग की प्रारम्भिक जानकारी हो ताकि विशालदत्त का विश्लेषण कम समय में तथा अशुद्ध रूप में अनुसन्धानकर्ता करवा सके।

अभ्यास-कार्य

१. किसी अनुसन्धान शीर्षक का उल्लेख कर बताइए कि आप उस अनुसन्धान कार्य में दत्त संकलन का पूर्व नियोजन किस प्रकार करेंगे? जो २ करेंगे वह सब लिखिए।

२ आपने अपने अनुसन्धान के दत्त का विश्लेषण करने के लिए कोटिकरण के

समय वर्गीकरण के सिद्धान्तों का किस प्रकार अनुप्रयोग किया ? सोदाहरण उत्तर दीजिए ।

३. अपने अनुसन्धान दत्त के अनेक उदाहरण देकर बताइए कि सांकेतीकरण के समय किन २ बातों को आपने किस प्रकार ध्यान में रखा ।

४. यदि आपको एक बड़े पैमाने के अनुसन्धान कार्य में दत्त प्रक्रिया करण यंत्र की सेवाएं क्रय करनी हैं तो आपको कौन कौन सी जानकारियां होनी चाहिए।

१२

उपकरणों की वैधता एवं विश्वसनीयता

अनुसन्धान कार्य में अनुसन्धान उपकरणों का चयन करते समय सर्व प्रथम हमें यह देख लेना चाहिए कि उपकरण वैध एवं विश्वसनीय हैं अथवा नहीं। किसी भी उपकरण में इन दो गुणों के अभाव में उस उपकरण द्वारा प्राप्त दत्त सामग्री को अनुसन्धान का आधार नहीं बनाया जा सकता। यदि कोई थर्मामीटर बहुत सुन्दर है किन्तु तापक्रम ठीक नहीं नापता तो क्या हम उसे प्रयोग में लेंगे ? अथवा यदि कोई थर्मा मीटर एक बार तापक्रम नापने पर कुछ तापक्रम बताता है व दूसरी बार नापने पर दूसरा तापक्रम बताता है तो क्या ऐसे थर्मामीटर को विश्वास के साथ काम में लिया जा सकता है ? उपरोक्त परिस्थिति मे हम कहेंगे कि थर्मामीटर वैध एवं विश्वसनीय नहीं है। उपकरण की वैधता से हमारा आशय यह है कि क्या उपकरण उस गुण का ठीक मापन कर रहा है जिसके मापन के लिए उसका निर्माण किया गया है। यदि कोई बुद्धि परीक्षण व्यक्ति की बुद्धि का सही मापन न कर किसी अन्य गुण का मापन करता है तो हम कहेंगे कि यह बुद्धि परीक्षण वैध नहीं है। इसी प्रकार यदि कोई अभिवृत्ति परीक्षा अभिवृत्ति का मापन न कर किसी अन्य गुण का मापन करती है तो उसे वैध नहीं कहा जा सकता। अनेक बार हम परीक्षण तो विज्ञान के ज्ञान का करना चाहते हैं किन्तु प्रश्न इतनी कठिन भाषा में लिखे होते हैं कि वह विज्ञान का परीक्षण न हो कर भाषा का परीक्षण बन जाता है। ऐसी स्थिति

में परीक्षण वैध नहीं कहा जा सकता। कदाचित उपरोक्त उदाहरणों से वैधता का संप्रत्यय स्पष्ट हो गया होगा।

उपकरणों की विश्वसनीयता से हमारा तात्पर्य यह है कि क्या उपकरण द्वारा प्राप्त परिणाम परिशुद्ध हैं? क्या उपकरण से प्राप्त परिणामों में संगतता है— अर्थात् यदि भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही उपकरण से किसी गुण का मापन करें और मापन के परिणामों में भिन्नता हो तो हम कहेंगे कि उपकरण विश्वसनीय नहीं है। अथवा एक ही उपकरण द्वारा एक गुण का मापन कई बार किया जावे और मापन के परिणामों में भिन्नता हो तो भी उपकरण को अविश्वसनीय कहा जावेगा।

इन दोनों संप्रत्ययों का विषद् विवेचन उपयोगी सिद्ध हो सकता है क्योंकि किसी भी अनुसन्धान उपकरण के ये दो महत्वपूर्ण गुण हैं।

वैधता :

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं वैधता हमें यह बताती है कि जिस गुण के मापन के उद्देश्य से उपकरण बनाया गया है उस गुण का मापन उपकरण ठीक-ठीक कर रहा है या नहीं। भौतिक गुणों के मापन करने वाले उपकरणों में तो इस बात का पता आसानी से लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ एक भौतिक तुला की वैधता का आसानी से पता लगाया जा सकता है। किन्तु मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में यह इतना सरल नहीं है। हम बुद्धि परीक्षणों में यह मान्यता लेकर चलते हैं कि चित्रों के भागों को जमाने के व्यवहार से व्यक्ति के बुद्धि स्तर का पता चल सकता है। अब हमें इस बात की जांच करनी पड़ती है कि क्या वास्तव में चित्र जोड़ना बुद्धि का मापन कर सकता है। इसी प्रकार अभिवृत्ति परीक्षण में हम कुछ कथनों पर दिए गए उत्तरों के आधार पर अभिवृत्ति का पता लगाने का प्रयास करते हैं। वैधता का पता लगाने के लिए हमें यह सिद्ध करना होगा कि क्या दिए गए कथन वास्तव में संबंधित अभिवृत्ति का मापन करते हैं। कोई उपकरण उस गुण का मापन कर रहा है या नहीं जिसके लिए उसे बनाया गया है, यह पता लगाने के प्रक्रम को वैधता निर्धारण कहते हैं। वैधता कई प्रकार से ज्ञात की जा सकती है और इन विभिन्न विधियों के आधार पर ही वैधता के विभिन्न प्रकार हमारे सम्मुख आते हैं। इनमें से मुख्य तीन प्रकार हैं।

(१) अन्तर्वस्तु वैधता, (२) कसौटी संबंधित वैधता, (३) निर्मिती वैधता।

(१) अन्तर्वस्तु वैधता : (कंटेंट वेलिडिटी)

इस प्रकार की वैधता के अन्तर्गत हम किसी परीक्षण की अन्तर्वस्तु के आधार पर यह पता लगाने का प्रयास करते हैं कि यह परीक्षण कहां तक पूर्व निर्धारित उद्देश्यों का परीक्षण करता है। जैसे यदि कोई विज्ञान का उपलब्धि परीक्षण है तो अन्तर्वस्तु वैधता ज्ञात करने के लिए हम यह ज्ञात करने का प्रयास करेंगे कि इस परीक्षण के द्वारा कहां तक विज्ञान की सूचनाओं, सम्प्रत्ययों, अवबोधों,

कुशलताओं आदि का ठीक परीक्षण करते हैं। अर्थात् अन्तर्वस्तु वैधता ज्ञात करने के लिए अनिवार्य है कि परीक्षण जिन उद्देश्यों को जांचने के लिए बनाया गया है वे स्पष्ट होने चाहिये। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं अन्तर्वस्तु वैधता ज्ञात करने के लिए हम यह देखते हैं कि परीक्षण बनाने के पूर्व जो परीक्षण योजना की (Blue Print) तैयार की गयी है उससे परीक्षण की अन्तर्वस्तु मेल खाती है या नहीं ? किसी भी विषय के प्रमुख बिन्दुओं का परीक्षण यदि किसी टेस्ट द्वारा नहीं होगा तो उस टेस्ट की अन्तर्वस्तु वैधता कम होगी। अनेक बार हम परीक्षणों में केवल उन्हीं पक्षों का समावेश करते हैं जिन पर वस्तुनिष्ठ प्रश्न आसानी से बन जाते हैं और ऐसा करने में विषय के अनेक महत्वपूर्ण बिन्दु अछूते रह जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में परीक्षण की अन्तर्वस्तु वैधता कम हो जाती है। अन्तर्वस्तु वैधता बढ़ाने हेतु हमें यह भी देख लेना चाहिए कि निर्धारित कारकों के अतिरिक्त कारकों का प्रभाव तो परीक्षण के परिणामों पर नहीं पड़ रहा है। जैसे गणित के उपलब्धि परीक्षण में हम प्रश्नों की भाषा इतनी कठिन बना दें कि गणित जानने वाला विद्यार्थी भी भाषा की कठिनाई के कारण अच्छे अंक न प्राप्त कर सके तो ऐसी स्थिति में परीक्षण की अन्तर्वस्तु वैधता उच्च स्तर की नहीं मानी जायगी।

(२) कसौटी संबंधित वैधता अथवा इंद्रियानुभविक वैधता

(काइटेरियन अथवा इम्पिरिकल वेलिडिटी)

इस वैधता में हम यह देखते हैं कि परीक्षण के प्राप्तांकों का किसी अन्य बाहरी कसौटी से कितना सह सम्बन्ध है। यदि हम विज्ञान के विद्यार्थियों के चयन हेतु कोई परीक्षण बनाते हैं तो इस परीक्षण पर प्राप्त अंक किसी अन्य बाहरी कसौटी से मेल खाते हैं या नहीं यह हमें देखना होगा। जैसे हम इस परीक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए कुछ विद्यार्थियों को यह परीक्षण दे सकते हैं और उनके विज्ञान के अंकों के साथ परीक्षण पर प्राप्त अंकों का सह सम्बन्ध ज्ञात कर सकते हैं। यदि सह सम्बन्ध ऊंचा है तो हम कह सकते हैं कि इन्द्रियानुभविक वैधता ऊंची है।

उपरोक्त उदाहरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं। (१) हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि परीक्षण के आधार पर हम क्या प्रागुक्ति करना चाहते हैं। और (२) जिस क्षेत्र में हम प्रागुक्ति करना चाहते हैं उस क्षेत्र में सफलता की कसौटी क्या है ? उपरोक्त दो बातें यदि हमारे सामने स्पष्ट हों तो किसी भी परीक्षण की इन्द्रियानुभविक वैधता, परीक्षण एवं कसौटी के अंकों का सह सम्बन्ध ज्ञात कर, निकाली जा सकती है।

एक ही परीक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए हम एक से अधिक कसौटियों का भी प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ किसी उपलब्धि परीक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए हम शिक्षकों के निर्धारण, शालेय अंक, किसी अन्य उपलब्धि परीक्षण पर प्राप्त अंक आदि कसौटियों को आवश्यकतानुसार काम में ले सकते हैं।

यद्यपि इन्द्रियानुभविक वैधता का उपयोग सर्वाधिक होता है किन्तु इसे ज्ञात करने में जो सबसे बड़ी कठिनाई आती है वह है उपयुक्त कसौटी चुनने की। उदाहरणार्थ यदि हमें शिक्षण अभिक्षमता पर बनाए हुए परीक्षण की इन्द्रियानुभविक वैधता ज्ञात करनी है तो हमारे सम्मुख यह कठिनाई उपस्थित हो सकती है कि शिक्षक की सफलता की हम क्या कसौटी मानें ? कई बार सफलता केवल व्यक्तिगत क्षमता पर ही निर्भर न कर अन्य बाहरी कारकों पर भी निर्भर करती है। एक शिक्षक में व्यक्तिगत क्षमता होते हुए भी अनुपयुक्त वातावरण के कारण या साधनों के अभाव के कारण अथवा विद्यार्थियों के निम्न स्तर के कारण उसे सफलता न मिले। इसलिए अनेक बार इस प्रकार की वैधता ज्ञात करने के लिए कसौटी का चयन करना कठिन हो जाता है।

वैधता ज्ञात करने हेतु सामान्यतया काम में लिए जाने वाले कसौटी माप :

वैसे तो प्रत्येक परीक्षण के लिए हमें यह निर्धारित करना होगा कि उसकी वैधता किस कसौटी माप के आधार पर ज्ञात की जाय। किन्तु सामान्यतया और अधिकतर जो कसौटी-माप वैधता निर्धारण हेतु काम में लिए जाते हैं वे निम्न हैं।

(१) आयु विभेदन :

कुछ परीक्षणों की वैधता ज्ञात करने हेतु यह देखा जाता है कि आयु के साथ परीक्षण पर प्राप्त अंकों में अन्तर आता है या नहीं। यदि हर आयु के व्यक्ति परीक्षण पर समान अंक प्राप्त करते हैं तो उसे वैध नहीं माना जाता।

(२) शालेय उपलब्धि :

बुद्धि परीक्षणों की वैधता ज्ञात करने हेतु इनके परिणामों का सह सम्बन्ध शालेय अंकों से, अध्यापक निर्धारणों आदि से ज्ञात किया जाता है।

(३) प्रशिक्षण में निष्पादन :

अभिक्षमता परीक्षणों की वैधता निर्धारण हेतु अनेक बार इन परीक्षणों पर प्राप्त अंकों का सह सम्बन्ध प्रशिक्षण में निष्पादन से ज्ञात किया जाता है।

(४) व्यवसाय में निष्पादन :

अभिक्षमता परीक्षणों तथा व्यवसाय चयन परीक्षणों की वैधता निर्धारण करने हेतु इन परीक्षणों के अंकों का सह सम्बन्ध व्यक्तियों के व्यवसायिक जीवन के निष्पादन से निकाला जाता है।

(५) अन्य परीक्षणों से सह सम्बन्ध :

कभी-कभी नए परीक्षण पर प्राप्त प्राप्तांकों का सह सम्बन्ध उसी निर्मिती के मापन हेतु बनाए गए किसी अन्य वैध परीक्षण के प्राप्तांकों से ज्ञात किया जाता है। यदि सह सम्बन्ध ऊंचा होता है तो हम नए परीक्षण को भी वैध मान लेते हैं।

निर्मिती वैधता (कॉन्स्ट्रक्ट वैलिडिटी) :

कुछ परीक्षणों में हमें यह नहीं देखना होता है कि परीक्षण कितनी सही

प्रयुक्ति कर सकता है अथवा परीक्षण की अन्तर्वस्तु ठीक है या नहीं। हमारी रुचि इसमें होती है कि परीक्षण किसी महत्वपूर्ण मानवीय निर्मिती की सही जाँच कर रहा है या नहीं। निर्मिती से हमारा तात्पर्य मानव के उस पक्ष से है जो देखा नहीं जा सकता किन्तु जिसका कि मानव व्यवहारों के आधार पर पता लगाया जा सकता है। बुद्धि, अभिरुचि, मनोवृत्ति आदि इन निर्मितियों को देखा नहीं जा सकता किन्तु इनका मानव व्यवहार से सम्बन्ध अवश्य स्थापित किया जा सकता है और इन निर्मितियों का मापन भी सबंधित मानव व्यवहारों के आधार पर ही किया जाता है। जैसे कोहस ब्लाक डिजाइन टेस्ट में डिजाइन रचना करने के व्यवहार को बुद्धि मापन का आधार बनाया गया है। और क्योंकि इस परीक्षण द्वारा किया गया बुद्धि का मापन अन्य बुद्धि परीक्षणों द्वारा किए गए मापन से मेल खाता है अतः हम कोहस ब्लाक डिजाइन टेस्ट की वैधता निर्धारण करने के साथ-साथ इस सिद्धान्त का भी पुष्टिकरण करते हैं कि डिजाइन रचना करने का व्यवहार बुद्धि से संबंधित है। अत. निर्मिती वैधता ज्ञात करने के प्रक्रम में हम उपकरण की वैधता तो ज्ञात करते ही हैं साथ-साथ हम कुछ सैद्धान्तिक अभ्युपगमों का भी सत्यापन करते हैं।

विश्वसनीयता :

(विश्वसनीयता उपकरण का वह गुण है जो हमें यह बताता है कि उपकरण कितनी संघनता के साथ मापन कर सकता है। अर्थात् उपकरण द्वारा अनेक बार मापन किए जाने पर मापन परिणामों में समानता रहती है अथवा नहीं। इसी प्रकार भिन्न व्यक्तियों द्वारा उपकरण से मापन करने पर परिणाम वही आते हैं या नहीं। जिस सीमा तक परिणामों में समरूपता पाई जावेगी उस सीमा तक उपकरण विश्वसनीय माना जावेगा। मनोविज्ञान एवं मानवीय उपकरणों की विश्वसनीयता कभी भी शत प्रतिशत नहीं हो सकती जैसा कि भौतिक शास्त्र में काम में आने वाले उपकरणों में सम्भव है। विश्वसनीयता का अभिप्राय यह है कि दो पूर्णतया समान परिस्थितियों में किए गए मापन के परिणाम एक होने चाहिए। अर्थात् विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए यह आवश्यक है कि मापन दो पूर्ण रूपेण समान परिस्थितियों में किया जाय) (भौतिक शास्त्र में तो यह सम्भव है कि एक लोहे के टुकड़े का वजन एक बार ज्ञात कर पुन पूर्णतया उन्हीं परिस्थितियों में वजन किया जाय और देखा जाय कि परिणाम समान है या नहीं। किन्तु मानव-शास्त्र में यह सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि मानव मापन में दो परिस्थितियाँ कभी भी पूर्ण तया समान नहीं हो सकतीं। इसका कारण यह है कि एक मापन के समय हम जो व्यक्ति देखते हैं उसका स्वरूप इतना परिवर्तन शील है कि पुनः दुबारा मापन के समय उनमें अनेकों शारीरिक मानसिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन हो जाते हैं। और इसी कारण चाहे दिखने में परिस्थिति समान हो वस्तुतः दो परिस्थितियों में अन्तर अवश्य होता है।) जब परिस्थितियां ही पूर्णरूपेण समान नहीं हैं तो उपकरण

पूर्ण तया विश्वसनीय है या नहीं यह पता लगाने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमें मापन उपकरण को अधिक से अधिक विश्वसनीय बनाने का प्रयास करना चाहिए। उपकरण की विश्वसनीयता समष्टी के साथ बदल सकती है। अतः उपकरण के प्रमाणीकरण में कौनसी समष्टी को आधार बनाया गया है यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए। ताकि उपकरण को उसी समष्टी अथवा वैसी ही समष्टी के लिए उपयोग में लिया जा सके।

विश्वसनीयता के भी कई प्रकार हैं जिनमें से प्रमुख निम्न अनुच्छेदों में दिए जा रहे हैं:— Methods

(क) परीक्षण-पुनः परीक्षण विश्वसनीयता :

इस विश्वसनीयता के अन्तर्गत हम एक समुदाय के किसी गुण का मापन एक बार करते हैं तथा कुछ समय पश्चात् उसी उपकरण से पुनः उसी समुदाय के उसी गुण का मापन करते हैं। दो मापनों से प्राप्त प्राप्तांकों के बीच सह सम्बन्ध ज्ञात कर लिया जाता है। यदि सह सम्बन्ध उच्च हो तो उपकरण अधिक विश्वसनीय माना जाता है। इस विश्वसनीयता का आधार यह प्रत्यय है कि एक ही उपकरण द्वारा अनेक बार मापन करने पर परिणामों में भिन्नता नहीं आनी चाहिए। इस प्रकार विश्वसनीयता ज्ञात करने की कुछ सीमाएं हैं:—

(१) एक बार एक परीक्षण से परिचित हो जाने पर पुनः जब परीक्षण दिया जायगा तो अभ्यास का प्रभाव द्वितीय प्राप्तांकों पर अवश्य पड़ेगा।

(२) यदि दो परीक्षणों के बीच अन्तर कम हो तो केवल स्मृति के आधार पर समान उत्तर दिए जा सकते हैं जिसके फलस्वरूप अपने आप दो परीक्षणों से प्राप्त प्राप्तांकों के बीच उच्च सह सम्बन्ध दृष्टिगोचर हो सकता है, चाहे उपकरण विश्वसनीय हो या नहीं।

(३) कुछ परिस्थितियों में तो पुनर्परीक्षण के समय परीक्षण के प्रश्नों का स्वरूप ही बदल जाता है। उदाहरणार्थ यदि किसी परीक्षण में तर्क सम्बन्धी कुछ समस्याएं हैं। यदि एक बार व्यक्ति उन समस्याओं को हल कर लेता है तो पुनः उसी परीक्षण के दिए जाने पर वे तर्क सम्बन्धी समस्याएं नहीं रह जातीं।

अतः उन्हीं परीक्षणों के लिए इस विश्वसनीयता का प्रयोग किया जाना चाहिए जिनमें पुनर्परीक्षण से कोई अन्तर पड़ने की सम्भावना न हो।

(ख) अन्तर्परीक्षक विश्वसनीयता :

परीक्षण में जब निबंधात्मक प्रश्न हों या जब अंकन में व्यक्तिनिष्ठता की अधिक सम्भावना हो तो इस विश्वसनीयता का प्रयोग किया जाता है। रोशा का व्यक्तित्व परीक्षण, गुड इनफ का बुद्धि परीक्षण इसके उपयुक्त उदाहरण हैं। इनमें गणक को अपनी सूझबूझ का प्रयोग करना पड़ता है। अतः यह पता लगाना आवश्यक हो

जाता है कि परीक्षक के बदलने से प्राप्तांकों में किस सीमा तक अन्तर आता है। अन्तर्गणक विश्वसनीयता हमें इसी तथ्य का आभास कराती है। इस विश्वसनीयता के ज्ञात करने के लिए एक ही परीक्षण का अंकन दो भिन्न व्यक्तियों द्वारा कराया जाता है और दोनों व्यक्तियों द्वारा किए गए अंकन से प्राप्त प्राप्तांकों के बीच सह सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है जो कि विश्वसनीयता का द्योतक माना जाता है।

(घ) समानान्तर परीक्षण विश्वसनीयता :

(Equivalent form Reliability)

इस विधि में हम एक परीक्षण के दो समानान्तर पत्र बनाते हैं—अर्थात् एक पत्र में जिस प्रकार के प्रश्न होते हैं ठीक उन्हीं प्रश्नों के समानान्तर प्रश्नोंवाला एक दूसरा पत्र तैयार किया जाता है। एक बार किसी समूह को एक पत्र देकर प्राप्तांक [illegible] समूह को समानान्तर पत्र देकर उस [illegible] बीच सह सम्बन्ध ज्ञात कर

[illegible]

(Split half Reliability)

इस विधि मे हम सम्पूर्ण परीक्षण को दो भागों मे विभक्त कर देते हैं। विभक्ती के दो तरीके हो सकते हैं—

(अ) प्रथम पचास प्रतिशत प्रश्न एक भाग में तथा अन्तिम पचास प्रतिशत प्रश्न दूसरे भाग में।

अथवा

(ब) सम प्रश्न संख्या वाले प्रश्न एक भाग में (जैसे प्रश्न सं० २, ४, ६, ८.... आदि) तथा विषम प्रश्न सं० वाले प्रश्न दूसरे भाग मे (जैसे प्रश्न सं० १, ३, ५, ७ आदि)।

सम्पूर्ण परीक्षण को दो भागो मे विभक्त करने के पश्चात् प्रथम तथा द्वितीय भाग में कुछ व्यक्तियों के प्राप्तांक ज्ञात कर लिए जाते हैं। तथा प्रथम भाग के प्राप्तांकों एवं द्वितीय भाग के प्राप्तांकों के बीच सह सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है जो कि विश्वसनीयता का द्योतक होता है।

उपरोक्त वर्णित, विश्वसनीयता के विभिन्न प्रकारों में से उद्देश्य, परीक्षण के स्वरूप, समष्टी आदि बातों को ध्यान में रखते हुए कोई भी एक प्रकार अपनाया जा सकता है।

हम कोई भी विधि अपनाएं विश्वसनीयता का उल्लेख करते समय हमें किस समष्टी पर विश्वसनीयता ज्ञात की गई है यह अवश्य इंगित कर देना चाहिए।

सारांश

किसी भी अनुसन्धान उपकरण के दो गुण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। एक तो [illegible] नीयता मानी जाती है।

अभ्यास-कार्य

१. विश्वसनीयता एवं वैधता के सम्प्रत्ययों को स्पष्ट कीजिए ?
२. विभिन्न प्रकार की विश्वसनीयताओं का अर्थ स्पष्ट कीजिए एवं उन्हें ज्ञात करने की विधियों की चर्चा कीजिए।
३. विभिन्न प्रकार की वैधताओं के संप्रत्ययों को स्पष्ट कीजिए।
४. वैधता निर्धारण हेतु सामान्यतया काम में ली जाने वाली कसौटियों का उल्लेख कीजिए।

१३

अनुसन्धान-प्रतिवेदन

अनुसन्धान कार्य के परिणामों को यदि सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाय तो उसका महत्व बढ़ जाता है। अनुसन्धान प्रतिवेदन में निष्कर्षों का प्रस्तुतीकरण तर्कयुक्त स्पष्ट एवं वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिए। अच्छे शोध भी यदि अवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किए जाय तो उनके परिणामों की ओर वाचक एक शंका भरी दृष्टि से देखता है। अनुसन्धान प्रतिवेदन की भाषा सरल नपी तुली यथा तथ्य एवं वैज्ञानिक होनी चाहिए ताकि वाचक अनुसन्धान के परिणामों को सरलता एवं स्पष्टता से समझ सके। अनावश्यक विशेषणों के प्रयोग एवं साहित्यिक प्रवाह में कभी-कभी तथ्यों के बह जाने की सम्भावना हो जाती है। अतः अनुसन्धान के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करते समय हमे इस बात की अत्यन्त सतर्कता बरतने की आवश्यकता रहती है कि हमारी लेखनी से वही बात निकले जिसके पूर्ण प्रमाण अनुसन्धान कार्य में उपलब्ध हों। अत्यन्त नपी-तुली भाषा के प्रयोग से हमारा आशय यह नहीं कि अनुसन्धान प्रतिवेदन एक निरा रूक्ष लेख बन जाय। वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं साहित्य की सुन्दर, शैली दोनों ही बनाए रखना अनुसन्धाता के लिए एक चुनौती है।

वैसे तो अनुसन्धान प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एकक शैली हो सकती है। यहां अनुसन्धान प्रतिवेदन की रूप-रेखा प्रस्तुत करने से हमारा तात्पर्य यह कभी नहीं है कि इस प्रक्रम को हम एक यन्त्रवत कार्य बना देना चाहते हैं।

प्रत्येक अनुसन्धाता को यह पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह अपने अनुसन्धान का प्रतिवेदन प्रस्तुत करने में अपनी सृजनात्मकता का पूर्ण उपयोग करे। यहां तो हम अनुसन्धान प्रतिवेदन के कुछ प्रमुख पक्षों पर प्रकाश डालना चाहते हैं ताकि एक नए अनुसन्धाता को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने मे मार्ग दर्शन मिल सके।

अनुसन्धान-प्रतिवेदन की शैली :

जैसा कि उपरोक्त अनुच्छेद में कहा जा चुका है कि अनुसन्धान की शैली में वैज्ञानिक यथा तथ्यता तथा साहित्य की रोचकता का समन्वय होना चाहिए। न तो हमें साहित्य के प्रवाह में तथ्यों की ओर दुर्लक्ष्य करना चाहिए न ही केवल वैज्ञानिक यथा तथ्यता की ओर ध्यान देकर प्रतिवेदन को पूर्ण रूपेण अरुचिकर बना देना चाहिए। आवश्यक नहीं कि केवल कठिन भाषा के प्रयोग से ही प्रतिवेदन रोचक एवं उच्च कोटि का बन जाएगा। सरल भाषा भी रोचक हो सकती है। कठिन भाषा के प्रयोग से वाचक को परिणामों को समझने में कठिनाई हो सकती है और यदि वाचक अनुसन्धान के परिणामों को ही न समझ सके तो केवल साहित्यिक भाषा किस काम की? अनुसन्धान प्रतिवेदन की शैली की दूसरी विशेषता यह है कि उसमे अस्पष्टता न हो। अनेक बार हम कहना कुछ चाहते हैं और हमारे लेख से कुछ और ही अभिप्राय निकलता है।

अनुसन्धान प्रतिवेदन का एक गुण यह भी है कि हमारे कथन तर्क सगत हों न कि व्यक्तिगत रुचियों, पूर्वाग्रहों आदि पर आधारित हों। एक वैज्ञानिक वही बात कहता है जिसे कि पर्याप्त प्रमाणों से प्रमाणित किया जा सके। क्योंकि अनुसन्धान प्रक्रम भी एक वैज्ञानिक प्रक्रम है इसलिए निराधार निष्कर्षों का इसमें कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

अनुसन्धाता को प्रतिवेदन मे अनावश्यक उच्च कोटि के विशेषणों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ यह कहना अनुसन्धान शिष्टाचार के विरुद्ध है कि "ऐसा अनुसन्धान आज तक किसी ने नहीं किया" अथवा "यह विधि सर्वोत्कृष्ट विधि है" आदि। अनुसन्धाता प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय सब तथ्य ठीक-ठीक प्रस्तुत करते हुए भी विनम्रता को अपना सकता है।

अनुसन्धान प्रतिवेदन में अनुसन्धाता को सामान्यतया "प्रथम पुरुष" प्रस्तुतीकरण टालना चाहिए। जैसे यह लिखना ठीक नहीं माना जाता कि "मैंने यह उपकरण बनाया" अथवा मैंने अमुक व्यक्तियों से साक्षात्कार किया आदि। सामान्यतया अनुसन्धान भाषा मे हम यह लिखते है कि "अमुक उपकरण इस प्रकार बनाया गया" अथवा "अनुसन्धाता ने क्षेत्र के प्रमुख व्यक्तियों से साक्षात्कार किया" आदि।

कई बार अनुसन्धान के विद्यार्थियों के सम्मुख एक सामान्य समस्या यह रहती है कि प्रतिवेदन मे भूतकाल अपनाया जाय अथवा भविष्यकाल। इसके सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता है कि सामान्यतया प्रतिवेदन भूतकाल में लिखा

जाता है। जैसे अनुसन्धान के न्यादर्श में ३०० छात्र सम्मिलित किए गए। इन छात्रों को दस विद्यालयों में से छांटा गया। आदि।

कभी-कभी वर्तमान काल का भी उपयोग किया जा सकता है जैसे यह अनुसन्धान राजस्थान के दस उच्चतर माध्यमिक शालाओं के छात्रों पर आधारित है। ऐसा लिखना भी गलत नहीं होगा। किन्तु यह तो निश्चित है कि प्रतिवेदन कभी भी भविष्य काल में प्रस्तुत नहीं किया जाता। अनुसन्धान की रूप रेखा बनाते समय अवश्य भविष्यकाल का प्रयोग किया जा सकता है। चाहे हम वर्तमान काल में प्रतिवेदन प्रस्तुत करें अथवा भूतकाल में, एक यह नियम हम सामने रख सकते हैं कि कम से कम एक अनुच्छेद में एक ही काल का प्रयोग किया जाय।

अनुसन्धान-प्रतिवेदन का प्रारूप :

जैसा कि हम लिख चुके हैं कि अनुसन्धान प्रतिवेदन का कोई अनम्य प्रारूप नहीं निर्धारित किया जा सकता। अनुसन्धाता को यह अधिकार है कि वह अपनी सृजनात्मकता का उपयोग कर प्रतिवेदन का प्रारूप निर्धारित करे। यहां तो केवल एक अनुसन्धान प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु एक मोटी रूप-रेखा प्रस्तुत की जा रही है। प्रतिवेदन को हम तीन प्रमुख भागों में बांट सकते हैं।

प्रथम भाग :—परिचयात्मक :

इस भाग में हम समस्या की पृष्ठभूमि समस्या कथन, समस्या के उद्देश्य, समस्या का औचित्य, आधारभूत मान्यताएं, तकनीकी शब्दों का स्पष्टीकरण, सम्बन्धित साहित्य का उल्लेख, अनुसन्धान का न्यादर्श, अनुसन्धान योजना आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाल सकते हैं।

द्वितीय भाग :

यह भाग प्रतिवेदन का मूल एवं महत्वपूर्ण कलेवर माना जा सकता है। इसके अन्तर्गत हम दत्त सामग्री संकलन की विधियां एवं इस हेतु काम में आने वाली प्रविधियां एवं उपकरणों का उल्लेख कर सकते हैं। इस भाग में हम दत्त सामग्री का विश्लेषण भी प्रस्तुत करते हैं।

तृतीय भाग :

उपरोक्त भाग में किए गए दत्त सामग्री के विश्लेषण के आधार पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष इस भाग में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। साथ ही इन निष्कर्षों के विभिन्न क्षेत्रों में अभिप्रेत अर्थ क्या हो सकते हैं इसका भी उल्लेख किया जा सकता है। इसी भाग में अनुसन्धाता समस्या के अन्य आयामों का भी उल्लेख कर सकता है जो कि अनुसन्धान का विषय हो सकते हैं।

सारिणियां एवं चित्र :

जहां परिमाणात्मक आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकालने होते हैं वहां सारिणीयों अथवा रेखा चित्रों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। सरिणियों एवं

चित्रों से दत्त सामग्री को प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी विशेष प्रवृत्ति का वर्णन करने के स्थान पर यदि उसे चित्र द्वारा प्रस्तुत किया जाए तो वाचक उसे तुरन्त ग्रहण कर लेता है। आंकड़ों को प्रस्तुत करने के लिए रेखाचित्रों स्तम्भ-चित्रों, वृत्त चित्रों आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

चित्रों एवं सारिणियों के सम्बन्ध में हमें दो प्रमुख बातें याद रखनी चाहिए प्रथम तो प्रत्येक सारिणी एवं चित्र का शीर्षक होना चाहिए। तथा प्रत्येक सारिणी एवं चित्र का क्रमांक होना चाहिए। इन क्रमांकों एवं शीर्षकों के आधार पर शोध प्रतिवेदन में प्रस्तुत किए गए चित्रों एवं सारिणियों की अलग से सूची प्रारम्भ में प्रस्तुत की जा सकती है।

सारिणियों के क्रमांक एवं शीर्षक सारिणी के ऊपर लिखे जाते हैं तथा चित्रों के शीर्षक एवं क्रमांक चित्र के नीचे लिखे जाते हैं।

उद्धरण :

शोध प्रतिवेदन तथा अन्य किसी लेख में लेखक को अनेक सन्दर्भों का उपयोग करना पड़ता है तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा दिए गए विचारों को उद्धरित करना पड़ता है। शोध आचार संहिता का एक नियम यह है कि किसी भी सन्दर्भ को काम में लेने पर उसका स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। यदि सन्दर्भ साहित्य से केवल एक या दो वाक्य लिए जाए तो उन्हें मूल कलेवर के साथ ही उल्टे अर्ध विराम में लिख देना चाहिए। किन्तु उद्धरण लम्बा हो तो उसे मूल कलेवर के के साथ न मिला कर अलग से लिखना चाहिए। मूलसामग्री के लिए निर्धारित हाशिए से कुछ स्थान छोड़ कर उद्धरण प्रारम्भ करना चाहिए। मूल सामग्री का टंकण यदि डबल स्पेसिंग में किया गया हो तो उद्धरण को सिंगल स्पेसिंग में टंकित करना चाहिए।

जहां उद्धरण समाप्त हो वहां क्रमांक लगाकर पृष्ठ के नीचे भाग में उसी क्रमांक को लिखते हुए उद्धरण के सन्दर्भ का पूरा ब्यौरा देना चाहिए। सन्दर्भ साहित्य को लिखने की विधि का उल्लेख हम आगे के अनुच्छेद में करेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं पाद टिप्पणियां :

अनुसन्धान प्रतिवेदन में जिन सन्दर्भ-ग्रन्थों से उद्धरण लिए गए हों अथवा जिनकी सहायता ली गई हो उन ग्रन्थों की सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि प्रतिवेदन के अन्त में अवश्य दी जानी चाहिए। उद्धरण जिन ग्रन्थों से लिए गए हों उनका उल्लेख उसी पृष्ठ पर पाद टिप्पणियों के रूप में होना चाहिए। सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची एवं पाद टिप्पणियां लिखने की भी एक सर्वमान्य विधि है जिसका उल्लेख यहां करना उपयोगी सिद्ध होगा।

पुस्तकें :

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में पुस्तक का उल्लेख करते समय जो क्रम अपनाया जाता

है वह इस प्रकार है—लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, प्रकाशन का स्थान, प्रकाशक का नाम तथा प्रकाशन का वर्ष। लेखक का नाम लिखने का भी एक विशेष क्रम रहता है। सर्व प्रथम अन्तिम नाम, फिर प्रथम नाम और अन्त में मध्य नाम दिया जाता है। विलियम एच किलपैट्रिक यदि लेखक का नाम है तो सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में उसे किलपैट्रिक विलियम एच लिखा जावेगा। एक पुस्तक का उल्लेख सन्दर्भ साहित्य में किस प्रकार किया जावेगा, यह नीचे दिए उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगा।

ह्विटनी, फ्रेड्रिक एल, द एलिमेन्ट्स आफ रिसर्च बम्बई,
एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९६१ पृष्ठ ५३९।

यदि पुस्तक के एक से अधिक संस्करण निकले हों तो पुस्तक के शीर्षक के तुरन्त संस्करण भी लिख देना चाहिए जैसे दूसरा संस्करण, छठा संस्करण, आठवां संस्करण आदि।

कुछ अनुसन्धान यह स्पष्ट करने के लिए कि सन्दर्भ साहित्य एक सम्पूर्ण पुस्तक है अथवा छोटी सी Brochure, अन्त में पृष्ठ संख्या भी लिख देते हैं। जैसा कि उपरोक्त उदाहरण में लिखा गया है।

(१) पाद टिप्पणियों में पुस्तक का उल्लेख करने का बाकी तरीका वही रहता है केवल लेखक का नाम सामान्य रूप से लिखा जाता है। तथा अन्त में पुस्तक की पृष्ठ सं० न देकर जिस पृष्ठ से उद्धरण लिया गया है उस पृष्ठ की संख्या लिख दी जाती है। जैसे उपरोक्त उदाहरण में दी गई पुस्तक के १४७वें पृष्ठ से हमने कोई उद्धरण लिया हो और उसका पाद टिप्पणी में उल्लेख करना हो तो हम निम्न प्रकार से करेंगे। उदाहरण के लिए प्रतिवेदन के किसी पृष्ठ पर यह दूसरा उद्धरण है।

२ फ्रेड्रिक एल. ह्विटनी. द एलिमेन्ट्स आफ रिसर्च.
बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९६१ पृष्ठ १४७

(२) एक से अधिक लेखक होने पर सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में प्रथम लेखक का नाम तो उल्टा लिखना चाहिए और बाकी लेखकों के नाम सामान्य रूप से लिख सकते हैं। जैसे लिथ्रोनोर्ड, वान थी. एवं एलविन सी यूरिच तीन से अधिक लेखक होने पर प्रथम लेखक का नाम लिख कर आगे एवं अन्य लिख सकते हैं। जैसे थार्नडाइक, एडवर्ड एल एवं अन्य।

(३) यदि पुस्तक किसी लेखक द्वारा न लिखी जाकर संस्था द्वारा लिखी गई हो तो उसे निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। एन. एस. एस. ई. रीडिंग इन एलिमेन्टरी स्कूल अड़तालीसवीं इयर बुक, द्वितीय भाग शिकेगो, द यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, १९४९

(४) यदि पुस्तक किसी लेखक के नाम से प्रकाशित न होकर सम्पादक के नाम से प्रकाशित हुई हो तो लेखक के नाम के स्थान पर सम्पादक का नाम लिखा

प्रयोग तब करना चाहिए जब एक लेखक द्वारा लिखी गई एक से अधिक पुस्तकों का उल्लेख पहले किया गया हो।

(३) यदि पूर्व उल्लेखित पुस्तक के उसी पृष्ठ के सन्दर्भ से उद्धरण लिया गया हो तो Loc cit अथवा तत्स्थान सन्दर्भित शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ वेस्ट, तत्स्थान सन्दर्भित।
इसका अर्थ यह है कि वेस्ट की पुस्तक के उसी पृष्ठ से उद्धरण लिया गया है जिस पृष्ठ से पूर्व सन्दर्भित उद्धरण लिया गया था।

सारांश

•

अनुसन्धान कार्य समाप्त करने के पश्चात जब तक उसके परिणामों को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जाता तब तक अनुसन्धान की उपादेयता सीमित ही रहती है। अनुसन्धान प्रतिवेदन सरल, नपी तुली, यथा तथ एवं वैज्ञानिक भाषा में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि अनुसन्धान प्रतिवेदन रूक्षभाषा में होना चाहिए। साहित्यिक पुट उस हद तक वाञ्छनीय होगा जिस हद तक उसके द्वारा तथ्यों पर आघात नहीं होता। साहित्यिक एवं वैज्ञानिक शैली के सुन्दर समन्वय से प्रतिवेदन अच्छा बन सकता है। अनुसन्धान कार्य में काम में लिए गए संदर्भ-साहित्य का उचित ढंग से यथा स्थान उल्लेख करना अनुसन्धानकर्त्ताओं की आचार संहिता में समाविष्ट है। इसके तरीकों का उल्लेख इस अध्याय में किया गया है।

अभ्यास-कार्य

१. अनुसन्धान प्रतिवेदन की शैली की क्या विशेषताएं होनी चाहिए।
२. अनुसन्धान प्रतिवेदन में उद्धरणों को किस प्रकार देना चाहिए?
३. सन्दर्भ सूची एवं पाद टिप्पणियों को लिखने के नियमों का उल्लेख कीजिए।
४. किसी एक समस्या को लेकर अनुसन्धान कार्य की रूपरेखा बनाइए।

अन्तर्सांकेतिक विश्वसनीयता	Inter-coder reliability
अन्तर्सह सम्बन्ध	Inter-correlation
अभिन्न	Invariant
अवरोधित	Inhibited
अभिनति युक्त	Biased
अभिवृत्ति प्रमापनियां	Attitude scales
अभिवृत्ति सातत्यक	Attitude continuum
अभिक्षमता	Aptitude
अनेकार्थक	Ambiguous
अप्रकृत	Abnormal
अमूर्त	Abstract
अतिरक्षित	Over protected
अग्रगामी	Pioneering
अधिस्नातक स्तर	Post-graduate level
अनुपातिक दत्त	Ratio Data
अनुक्रम	Sequence
अनुभाग	Section
अल्पकालीन	Short-term
अन्दर डालने-बाहर भेजने की प्रणाली	Input-output device
अभिनत	Biased
अभ्युपगम	Postulate
अनियन्त्रित	Uncontrolled
अनुबन्धन	Conditioning
अनुसन्धान	Research
अनुसन्धान विधियां	Research Methods
अन्तर्गणक विश्वसनीयता	Inter-Scorer reliability
अन्तर्वस्तु वैधता	Content validity
अन्योन्यक्रिया	Interaction
आयुर्विज्ञान	Medical Science
आलेख	Graph
एक-आयामीय	Unidimensional
एक-आयामीयता	Unidimensionality
आयाम	Dimension
आनुषंगिक प्रतिचयन	Incidental Sampling

कोटिकरण	Categorisation
कोश	Cell
क्रमावर्तित	Rotated
क्रम-गणना क्रम दत्त	Ordinal data
पृष्ठोन्मुख अवरोधात्मक क्रिया	Retroactive inhibition
कार्यक्रमकरण	Programing
कार्यक्रमित अनुदेशन	Programmed instruction
क्रियात्मक घटक	Conative component
क्रियाप्रसूत अनुबन्धन	Operant conditioning
खगोल विज्ञान	Astronomy
खण्डात्मक अध्ययन	Cross sectional study
गतिशील	Dynamic
गम्भीर चिन्तन	Reflective thinking
गणितीय-निगमनात्मक सिद्धान्तवाद	Mathematico-deductive theory
गौण स्त्रोत	Secondary source
घटन	Occurance
घटकों	Component
चर	Variables
चरितार्थ	Applicability
चिकित्सा	Therapy
चुम्बकीय तश्तरियाँ	Magnetic discs
टिकट संकलन विज्ञान	Philately
टिप्पणी	Note
तटस्थ	Neutral
तदात्मीकरण	Identification
तत्परता	Readiness
तिरस्कृत	Rejected
तैथिक क्रमानुसार प्रस्तुतीकरण	Chronological presentation
दत्तकार्य पद्धति	Assignment method
दत्तसामग्री	Data
दत्त संकलन	Data collection
दशा	State
द्विकारक	Two factor
द्वितीय स्त्रोत	Secondary source

प्रक्षेपण पद्धति	Projective technique
प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श	Representative sample
प्रत्युत्तर	Response
प्रमापनी	Scale
प्रमापनीय	Scalable
प्रत्यक्षीकरण	Perception
प्रस्थिति	Status
प्रशासन	Administration
प्रत्यक्ष	Direct
प्रतिमान	Pattern
क्रिया प्रसूत	Operant
प्रसामान्य वितरण वक्ररेखा	Normal distribution curve
प्रसामान्य	Normal
प्रशुद्ध	Accurate
प्रक्रम, प्रक्रिया	Process
प्रतिचयन	Sampling
प्रतिदर्श	Sample
प्रतिवेदन	Report
प्राक् परीक्षण	Pre-testing
प्रागुक्ति	Prediction
प्राथमिक स्रोत	Primary source
प्रविधि	Technique
प्राणी शास्त्र	Zoology
प्राक्कल्पना	Hypothesis
प्रासंगिकता	Relevance
प्राप्तांक	Score
प्राप्तांकीकरण	Scoring
प्राक्काल्पनिक तथा वास्तविक प्रश्न	Hypothetical and real question
प्राक्काल्पनिक निर्मितियाँ	Hypothetical constructs
प्राथमिक स्रोत	Primary source
प्रायोगिक स्थिति	Experimental situation
पुरा परिस्थिति विज्ञान	Paleocology
पुनरावृत्ति प्रतिचयन	Repeated sampling
पुनरावलोकन	Review

मुद्राशास्त्र	Numismatics
मुद्रक	Printer
यन्त्र की भाषा	Machine language
यथातथ्य	Exactness
यादृच्छिक प्रतिचयन	Random Sampling
यादृच्छिक प्रतिदर्श	Random Sample
यादृच्छिक संख्या तालिका	Table of Random numbers
यादृच्छिक करण	Randomisation
यादृच्छिक क्रम	Random
युग्मज	Zygote
युग्म प्रतिचयन	Double Sampling
रसायन शास्त्र	Chemistry
राजनीति शास्त्र	Political Science
रोल अन्तर्द्वन्द	Role conflict
रोशा परीक्षा	Rorschach test
लम्बात्मक पद्धति	Longitudinal study
लेख्य	Document
लोक प्रिय	Star
वरण	Choice
वस्तुकार्यक्रम	Object programme
वर्गीकरण	Classification
वंश विज्ञान	Genealogy
विभक्तार्ध विश्वसनीयता	Split half reliability
विश्वसनीयता	Reliability
विषयनिष्ठ	Subjective
विन्यास	Set
विषय	Subject

(जिन पर अनुसन्धान किया जाय वे मनुष्य प्राणी अथवा भौतिक वस्तुएं) पाठ्यक्रम के विषय।

विकासात्मक स्तर	Developmental level
विसामान्य व्यवहार	Deviant behaviour
विधान	Design

समाश्रयण समीकरण	Multiple regression equation
समाश्रयण	Regression
सजग, संवेदनशील	Sensitive
समाज शास्त्र	Sociology
साक्षात्कार	Interview
साहित्य	Literature
समूह का समूह से मिलान	Group to group matching
सह परिवर्तन का विश्लेषण	Analysis of covariance
सम्बद्धवाद	Connectionism
समन्वय	Coordination
सह-यमज-नियंत्रण-विधान	Cotwin control design
सत्यापन	Verification
सामान्यीकरण	Generalisation
सामान्य स्तर	Norm
सापेक्षिक	Relative
सामाजिक भाग ग्रहण	Social participation
सामान्य व्यक्ति	Common man
सारिणीकरण	Tabulation
सातत्यक	Continum
सामान्य बुद्धि	Common sense
सिद्धान्तवाद	Theory
स्थिर	Constant
सुरक्षात्मक क्रियाविधि	Defence mechanism
सूचना	Information
सैनिक विज्ञान	Military Science
सोद्देश्य प्रतिचयन	Purposive sampling
सैद्धान्तिक	Theoreteical
सक्रियात्मक परिभाषा	Operational definition
संक्रिया	Operation
सांकेतक	Coder
संज्ञानात्मक क्षेत्रीय सिद्धान्तवाद	Cognitive field theories
सज्ञानात्मक घटक	Cognitive component
समिश्र प्राप्तांक	Camposite score
सरचित	Structured

सन्दर्भ	Reference
संप्रत्यय	Concept
संकेताक्षर	Code letter
सांख्यिकीय समन्वय	*Statistical adjustment*
संसूचक	Suggestive
संरचना	Structure
संपुष्टि	Confirmation
संगति	Consistency
संगतिपूर्ण	Consistent
संनिधि अनुबन्धन	Contiguous conditioning
स्ववृत्ति	Disposition
स्मृति एकक	Memory unit
स्वसंप्रत्यय	Self concept
स्रोत कार्यक्रम	Source program
सृजनात्मक	Creative
स्तरित प्रतिचयन	Stratified Sampling
स्तरीय यादृच्छिक प्रतिचयन	Stratified Random sampling
क्षेत्रीय अध्ययन	Field studies
ज्ञेय	Phenomenon
द्योतक	Indicator

शब्दावली

(ख)

A

Abnormal	अप्रकृत
Abstract	अमूर्त
Achievement	उपलब्धि
Accurate	अशुद्ध
Administration	प्रशासन
Ambiguous	अनेकार्थक
Analysis of covariance	सह-परिवर्तन का विश्लेषण
Aptitude	अभिक्षमता
Approach	उपागम
Applicability	चरितार्थता
Affective Component	भावात्मक घटक
Attitude continuum	अभिवृत्ति सातत्यक
Attitude scales	अभिवृत्ति प्रमापनियां

B

Biased	अभिनतियुक्त

Binary notation	द्विनाम अंकन

C

Categorisation	कोटिकरण
Case method	केस विधि
Card reading and punching unit	कार्ड-पठन और छिद्रकरण एकक
Central tendency	केन्द्रीय प्रवृत्ति
Cell	कोश
Central processing unit	केन्द्रीय प्रक्रियाकरण एकक
Classification	वर्गीकरण
Classroom interaction analysis	कक्षा में अन्तर्क्रिया का विश्लेषण
Classical conditioning	क्लासिकल अनुबंध
Clinical psychology	मनोचिकित्सा शास्त्र
Coders	सांकेतकों
Code letters	सकेताक्षर
Cognitive component	संज्ञानात्मक घटक
Cognitive field theories	संज्ञानात्मक क्षेत्रीय सिद्धान्तवाद
Component	घटक
Composite score	संमिश्र प्राप्तांक
Common man	सामान्य व्यक्ति
Commonsense	सामान्य बुद्धि
Conative component	क्रियात्मक घटक
Concept	संप्रत्यय
Conditioning	अनुबन्धन
Confirmation	संपुष्टि
Connectionism	सम्बद्धवाद
Consistency	संगति
Consistent	संगतिपूर्ण
Constant	स्थिर
Content	अन्तर्वस्तु
Content validity	अन्तर्वस्तु वैधता
Contiguous conditioning	संनिधि अनुबन्धन
Continuum	सातत्यक

Controlled inquiry	नियंत्रित पूछताछ
Control section	नियंत्रण अनुभाग
Coordination	समन्वय
Co-twin control design	सहयमज नियंत्रण विधान
Covert	प्रच्छन्न
Creative	सृजनात्मक
Critical incident technique	निर्णायक वृत्तांत पद्धति
Cross sectional study	खण्डात्मक अध्ययन पद्धति

D

Data collection	दत्त संकलन
Developmental level	विकासात्मक स्तर
Deviant behaviour	विसामान्य व्यवहार
Deductive	निगमनात्मक
Defence mechanism	सुरक्षात्मक क्रियाविधि
Delimitation	परिसीमन
Dependent variable	निर्भर परिवर्ती
Design	विधान
Determinism	नियतत्ववाद
Diagnostic	निदानात्मक
Diagnosis	निदान
Direct	प्रत्यक्ष
Direct	निर्देशित
Disposition	स्ववृत्ति
Dimension	आयाम
Document	लेख्य
Dynamic	गतिशील

E

Educational guidance	शैक्षिक निर्देशन
Ego strength	अहम् की शक्ति
Electronic digital Computer machine	वैद्युत अकीय परिगणक यन्त्र

Encyclopaedia	विश्वकोष
✓ Exact	निश्चित
Experimental Situation	प्रायोगिक स्थिति
Explanation	व्याख्या

F

Factor	कारक
Feeling	भावना
Fixed alternative question	निश्चित विकल्प वाले प्रश्न
Field studies	क्षेत्रीय अध्ययन
Follow-up-study	अनुवर्ती अध्ययन
Funnel technique	फनेल पद्धति

G

Gap	व्यवधान
Generalisation	सामान्यीकरण
Graph	पालेख
Graduate scale	श्रेणी-क्रम-बद्ध मापनी
Group to group matching	समूह का समूह से मिलान

H

Heredity	वंशानुक्रम
Humanities	मानविकी
Hypothesis	प्राक्कल्पना
Hypothetical and real question	प्राक्काल्पनिक तथा वास्तविक प्रश्न
Hypothetical constructs	प्राक्काल्पनिक निर्मितियाँ

I

Identical twins	समान यमज
Identification	तदात्मीकरण
Indicator	द्योतक
Individual	व्यष्टि
Inhibited	अवरोधित

Interviewee	साक्षात्कारी
Interview	साक्षात्कार
Interviewer	साक्षात्कारक
Inverse	विलोम
Intervening variable	मध्यवर्ती परिवर्ती
Independent variable	स्वतन्त्र परिवर्ती
Inquiry	पूछताछ
Invariant	अभिन्न
Input-output device	अन्दर डालने-बाहर भेजने की प्रणाली
Inter correlation	अन्तर्सह-सम्बन्ध
Interval data	मध्यान्तर दत्त
Inter-coder reliability	अन्तर्सांकेतिक विश्वसनीयता
Intelligence curve	बुद्धि वक्र रेखा
Interpretation	अर्थापन, निर्वचन
Inferential statistics	अनुमानात्मक सांख्यिकीय
Integration	अन्तर्गठन
Item	एकांश
J	
Judges	मत विशेषज्ञो
L	
Longitudinal study	लम्बात्मक पद्धति
Long term	दीर्घकालीन
M	
Magnitude	परिमाण
Magnetic discs	चुम्बकीय तश्तरियां
Maturation	परिपक्वीकरण
Mathematico deductive theory	गणितीय निगमनात्मक सिद्धान्तवाद
Machine language	यन्त्र की भाषा
Medical science	आयुर्विज्ञान
Memory unit	स्मृति एकक

Morale	मनोबल
Multiple regression equation	समाश्रयण समीकरण
Multivariate analyis	बहु-परिवर्ती मूल्य विश्लेषण
Multiple group design	बहु-समूह विधान
Multiple factors	बहु-कारकी
Multiple choice items	बहु विकल्पी एकांशों

N

Neutral	तटस्थ
Nominal data	नामक दत्त
Note	टिप्पणी
Norm	सामान्य स्तर
Normal distribution curve	प्रसामान्य वितरण वक्र रेखा
Normal	प्रसामान्य

O

Object programme	वस्तु कार्यक्रम
Observation	प्रेक्षण
Observed	प्रेक्षित
Occurance	घटन
Operant conditioning	क्रिया प्रसूत अनुबन्धन
Operant	क्रिया प्रसूत
Operational definition	सक्रियात्मक परिभाषा
Operation	सक्रिया
Order	व्यवस्था
Ordinal data	अंक गणना क्रम दत्त
Over protected	अतिरक्षित
Ovum	अण्डाणु

P

Participation	भाग-ग्रहण
Passive Definition	निष्क्रिय परिभाषा
Pattern	प्रतिमान

Personal and impersonal question	व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत प्रश्न
Person to person matching	व्यक्ति का व्यक्ति से मिलान
Perspective	परिप्रेक्ष्य
Perception	प्रत्यक्षीकरण
Phenomenon	ज्ञेय
Pilot study	उपक्रम अध्ययन
Pioneering	अग्रगामी
Post-test-design	उत्तर परीक्षा विधान
Post-graduate level	अधिस्नातक स्तर
Practical	व्यावहारिक
Pretest	पूर्व परीक्षण
Prediction	प्रागुक्ति
Primary source	प्राथमिक स्रोत
Printer	मुद्रक
Precise	परिशुद्ध
Precoded	पूर्व सांकेतीकृत
Procedure	प्रविधि
Programming	कार्यक्रमकरण
Programmed	कार्यक्रमित
Process	प्रक्रम, प्रक्रिया
Projective technique	प्रक्षेपण पद्धति

R

Random	यादृच्छिक-क्रम
Randomisation	यादृच्छिककरण
Rank order matching	अंक-क्रम-मिलान
Ratio data	अनुपातिक दत्त
Readiness	तत्परता
Rejected	निरस्कृत
Rejection	निरस्कार
Relative	सापेक्षिक
Reflective thinking	गम्भीर चिन्तन
Regression equation	समाश्रयण समीकरण
Relevance	प्रासंगिकता

Representative sample	प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श
Repeated sampling	पुनरावृत्ति प्रतिचयन
Response	प्रत्युत्तर
Retroactive inhibition	पृष्ठोन्मुख अवरोधात्मक क्रिया
Review	पुनरावलोकन
Rotated	क्रमावर्तित
Rorschach test	रोशा परीक्षा
Role conflict	रोल अन्तर्द्वन्द्व

S

Scale	प्रमापनी
Scalable	प्रमापनीय
Score	प्राप्तांक
Scoring	प्राप्तांकीकरण
Secondary Source	द्वितीय स्रोत
Self-concept	स्वसप्रत्यय
Sensitive	सजग, संवेदनशील
Secondary source	द्वितीय स्रोत
Section	अनुभाग
set	विन्यास
Sequence	अनुक्रम
Short term	अल्पकालीन
Single-group design	एकमेव समूह विधान
Seciometry	समाजमिति
Sociology	समाजशास्त्र
Social participation	सामाजिक भाग-ग्रहण
Source programme	स्रोत कार्यक्रम
Specific question	विशिष्ट प्रश्न
Speculation	परिकल्पना
Sperm	शुक्राणु
Standardisation	मानकीकरण
Standardised	मानकीकृत
Standard deviation	मानक विचलन

Standard score	मानक प्राप्तांक
Structured	संरचित
Statistical adjustment	सांख्यकीय समन्जन
Status	प्रस्थिति
State	दशा
Stimulus	उद्दीपक
Structure	संरचना
Stratified sampling	स्तरबद्ध प्रतिचयन
Subjective	विषयनिष्ठ
Subject	विषय (जिन पर अनुसन्धान किया जाए वे मनुष्य, अन्य प्राणी अथवा भौतिक वस्तु), पाठ्य-क्रम के विषय
Suggestive	ससूचक
Super ego	पराअहम
System	व्यवस्था
Systematisation	व्यवस्थितीकरण
Systematised	व्यवस्थित
Symbol	प्रतीक

T

Tabulation	सारिणीकरण
Teacher effectiveness	अध्यापक प्रभावशालीपन
Teacher Educator	अध्यापक शिक्षक
Theory	सिद्धान्तवाद
Therapy	चिकित्सा
Theoretical	सैद्धान्तिक
Tool	उपकरण
Topic	शीर्षक
Treatment	उपचार
Tryout	पूर्वजांच, परख

U

Understanding	अवबोध

Uniform	एकरूप
Unidimension	एक-आयाम
Unidimensional	एक-आयामीय
Unidimensionality	एक-आयामीयता
Unique	अद्वितीय
Unverified	असत्यापित
Unstructured	असरचित

V

Variable	परिवर्ती
Vary	परिवर्तन
Verification	सत्यापन
Vocational guidance	व्यावसायिक निर्देशन
Volume	अंक

Z

Zygote	युग्मज

ग्रन्थ-सूची

Bibliography

1. Almack, J. C. : Research and Thesis Writing; Houghton Miffin Co., London, 1930.
2. Barr, A.S., Dairs, R.A., and Johnson, P.O. : Educational Research Appraisal, J.B. Lippicott. Co., New York, 1953
3. Best, J.W. : Research in Education, Prentice-Hall, New York, 1959
4. Brown, C.W. and Ghiselli, E. F. : Scientific Method in Psychology, Mc Graw Hill Book Co New York, 1955
5. Dewey, J : How We Think; Boston; Heath, 1933
6. Fox, D. J. : The Research Process in Education, Holt Rinehart and Winston, New York, 1969
7. Good, C. V : Introduction to Educational Research, Appleton-Century-Crofts, Inc., New York, 1959
8. Good, C. V. and Scates, D. E. : Methods of Research, Appleton-Century-Crofts, Inc., New York, 1954
9. Good, C. V., Barr, A S. and Scates., D. E. : Methodology of Educational Research, Appleton-Century-Crofts, Inc, New York, 1941

10. Goode, W. J. and Hatt, P. K. : Methods in Social Research; Mc Graw Hill Book Co. New York, 1952
11. Kerlinger, F. N. : Foundation of Behavioral Research : Educational and Psychological Inquiry; Holt, Rinehart and Winston, Inc., New York, 1964
12. Monley, G J. : The Science of Educational Research, Eurasia Publishing House, New Delhi-I, 1963
13. Nagel, E. : The Structure of Science : Problems in the Logic of Scientific Explanation; Routledge and Kegan Paul; London, 1961
14. Parten Midred : Surveys, Polls and Samples; Harper and Row, New York, 1965
15. Sukhia, S. P. and Mehrotra, P. V. : Elements of Educational Research; Allied Publishers, New Delhi, 1963.
16. Seltz, C., Jahoda, M., Deutsch, M. and Cook, S. W. : *Research Methods in Social Relations*, Revised. One-Volume Edition; Methuen & Co , 1965
17. Skinner, B F. : The Behavior of Organism, Appleton-Century-Crofts; New York, 1938
18. Smith, H. L. : Educational Research, Principles and Practices; 1944
19. Rummel J. Francis : An Introduction to Research Procedures in Education; New York, 1958
20. Traverse, R. H. W : An Introduction to Educational Research; Mac Millan Co. New York, 1964
21. Whitney, F. L. : The *Elements of Research*; Asia Publishing House, New York, 1961

शब्दावली

(अ)

अग्रदर्शी	Forward-looking
अतिक्रमी	Intruder
अतिरिक्त-निर्देशन सेवा	Referral Service
अधिकार-पत्र	Bill of Rights
अधिशेष	Surplus
अनियन्त्रित प्रेक्षण	Un controlled Observation
अनुकूलन	Adaptation
अनुगमन	Follow Up
अनुमिति	Corollary
अनुरक्षण	Maintenance
अनुशस्ति	Sanction
अनुस्थापन	Orientation
अनुस्थापन वार्ताएं	Orientation Talks
अनुज्ञात्मक	Permissive
अभिग्रहण	Assumption
अभिदर्शन	Exposure
अभिदर्शित	Exposed

अभिनति	Bias
अभिनिर्धारण दत्त	Identification data
अभिप्रेत अर्थ	Implications
अभिमुख-संवाद	Interview
अभिरुचि	Interest
अभिवृत्ति	Attitude
अभिवृत्ति-मापनी	Attitude Scale
अभिक्षमता	Aptitude
अभिज्ञान	Identity
अभ्युपगम	Assumption
अ-मानकीकृत	Non-Standardized
अपप्रकार्य	Malfunctioning
अ-शाब्दिक	Non-Verbal
असंरचित साक्षात्कार	Unstructured Interview
अहंमान	Dominance Feeling
अंकन	Scoring
अंशकालिक	Part-Time
अन्तर्ग्रस्त	Involve
अन्तर्वस्तु	Content
अन्तर्संचरण	Inter-Communication
अन्योन्य क्रिया	Interaction
अर्धप्रक्षेपी प्रविधियां	Semi-Perjective Techniques

आ

आपद	Hazards
आत्मसिद्धि	Self-realization
आत्म विवरणात्मक	Self-reporting
आयात	Import
आशंसन	Appreciation
आशावाद	Optimism

ए

एक-एक-सम्बन्ध	One-to-one Relationship

एकाकी — Isolate
एकात्मक — Unitary
अनन्य — Unique

उ

उपलब्धि-परीक्षण — Achievement Test
उपसिद्धान्त — Corollary
उपाख्यानवृत्त — Anecdotal Record
उपप्रमेय — Corollary

क

कार्मिक — Personnel
कार्य-कृत्यक — Job-Tasks

ग

गुट — Cliques

च

चिह्नांकन सूची — Check List

त

तकनीशन — Technician
तात्विक — Metaphysical
ताथ्यिक — Factual
तिरस्कृत — Rejected

द

द्वंद्व — Conflicts

न

निदानात्मक परीक्षण — Diagnostic Test

नियम पुस्तिका	Manual
नियोजन कार्यालय	Employment Exchange
निराशावाद	Passimism
निर्देश-तंत्र	Frame of reference
निर्धारण मापनी	Rating Scale
निर्भ्रम	Unequivocal
नियन्त्रित प्रेक्षण	Controlled Observation
निर्वचन	Interpretation

प

परस्पर व्यापिता	Overlapping
परास	Range
परीक्षण	Test

प्र

प्रकार्यात्मक	Functional
प्रबुद्ध	Enlightened
प्रावस्थाकरण	Phasing
प्रविधि	Technique
प्रश्नावली	Questionnaire
प्रशान्तता	Serenity
प्रशासन	Administration
प्रक्षेपण	Projection
प्रक्षेपीविधियां	Projective Techniques
प्राप्तांक	Scores

पु

पुस्तकाध्यक्ष	Librarian

पू

पूर्णकालिक	Full Time
पूर्व परीक्षण	Tryout

ब

बुद्धि-वैभव	Talent

भ

भाग-मग्राही प्रेक्षण	Non Participant Observation
भागग्राही	Participant
भागग्राही प्रेक्षण	Participant Observation

म

मणिभप्राञ्जलता	Crystal Clarity
मार्ग-दर्शन	Refrral
मानकीकृत	Standardised
मिसीन्दीकरण	Filling
मूर्त	Concrete

स

सत्तावादी	Authoritarian
समआयुसाथी	Peer Group
समानुपाती	Proportionate
समसामूही	Peer Group
समाजमितिक स्तर	Sociometric Status
समाजमिति	Sociometry
समादर-सूची	Honours List
समेकित	Consolidated
स्वरक	Tone
स्वयं आग्रह	Volunteer
स्व-वास्तवीकरण	Self-actualization
सर्वाधिकारी	Totalitarian
सहकालिक	Simultaneous
साधन	Tools
साधन सम्पन्नता	Resourcefulness

शीलगुण	Traits
शुभाशायी	Well-Intentioned

क्ष

क्षतिभय	Risk
क्षेत्रकार्य	Field Work